कालिदास की बिम्ब-योजना

कालिदास की बिम्ब-योजना

डा० (सुश्री) अमलेश गुप्ता
राजकीय महाविद्यालय
अजमेर
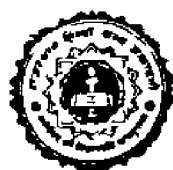
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1984

KALIDAS KI BIMB YOJNA

भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य में
उपलब्ध कराये गये कागज पर मुद्रित

मूल्य : 30.00

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर–302 004

मुद्रक :
एज्युकेशनल प्रिण्टर्स
मिर्जा जी का रास्ता,
जयपुर–302 003

प्राक्कथन

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी अपने जीवन-काल के दस वर्ष पूरे कर चुकी है। 15 जुलाई 1983 को इस संस्था ने ग्यारहवें वर्ष मे प्रवेश किया है। इस अल्पावधि मे संस्था ने विभिन्न भाषाओं के लगभग 300 मानक ग्रंथो का हिंदी मे प्रकाशन कर मातृभाषा के माध्यम मे विश्वविद्यालय के छात्रो व विषय विशेष के पाठको के समक्ष भाषा वैविध्यता की कठिनाई दूर करने मे अपना अकिंचन योगदान दिया है।

अकादमी के कई प्रकाशन द्वितीय व तृतीय आवृत्तियों मे छप चुके हैं। इसके लिए हम सुयोग्य पाठकों व लेखको के अत्यन्त ऋणी हैं।

प्रकाशन जगत मे मानक ग्रन्थो का कम मूल्य पर प्रकाशन एक ऐसा प्रयत्न है जिससे विश्वविद्यालय स्तर एव विषय विशेष के विशेषज्ञो के ग्रन्थ आसानी से हिन्दी मे उपलब्ध हो सकें। प्रयत्न यह रहा है कि अकादमी शोध ग्रन्थो का प्रकाशन अधिकाधिक करे इससे लेखक एव पाठक दोनो ही लाभान्वित हो सकें तथा प्रामाणिक विषय वस्तु पाठको को सुलभ होती रहे। लेखक को भी नव सृजन के लिए उत्साह व प्रेरणा मिलती रहे जिसस प्रकाशन के अभाव मे महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियाँ अप्रकाशित ही नही रह जायें। वास्तव मे हिन्दी ग्रन्थ अकादमी इसे अपना उत्तरदायित्व समझती रही है कि दुलभ विषय ग्रन्थो का ही प्रकाशन किया जाय। हमे यह कहते गर्व होता है कि अकादमी द्वारा प्रकाशित कतिपय ग्रन्थ केन्द्र एव अन्य राज्यो के बोर्ड व संस्थानो द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं और इनके विद्वान लेखक सम्मानित हुए है।

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय की अनुप्रेरणा व सहयोग हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को स्वरूप ग्रहण करने से लेकर योजनाबद्ध प्रकाशन कार्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। राज्य सरकार ने इस अकादमी को आरम्भ से ही पूरा-पूरा सहयोग देकर पल्लवित किया है।

अकादमी अपने भावी कार्यक्रमो में राजस्थान से सम्बन्धित दुर्लभ ग्रन्थो के प्रकाशन-कार्य को प्रमुखता देने जा रही है जिससे विलुप्त कडिया जुड सकें। यह भी प्रयत्न है कि तकनीकी एव आधुनिकतम विषय वस्तु के ग्रन्थ योजनाबद्ध प्रकाशित हो जिससे सम्पूर्ण विषय-वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने मे छात्रो को किसी तरह का अभाव अनुभव नही हो।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कालिदास की महती बिम्बयोजना का एक व्यवस्थित और सुचिन्तित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लॉंगाइनस से लेकर टी. एस. इलियट एवं आचार्य भरत से 'अज्ञेय' तक का दीर्घ अनुभव-मीमान्त इस ग्रन्थ में समाविष्ट है। प्रस्तुत बिम्ब विश्लेषण हमें काव्यवस्तु के मूल तक पहुँचा देता है। लगता है—हम कालिदास के कवि-मानस का साक्षात्कार कर रहे हैं। आशा है—साहित्य के प्रत्येक सुधी पाठक को यह प्रबन्ध आह्लादित करेगा।

अकादमी प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका डा० (सुश्री) अमलेश गुप्ता तथा समीक्षक डा० मूलचन्द पाठक के प्रति प्रदत्त सहयोग हेतु आभारी है।

शिवचरण माथुर
मुख्यमंत्री, राजस्थान सरकार
एवं
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

(डा०) पुरुषोत्तम नागर
निदेशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

दो शब्द

आज का जीवन चिन्तन ही नहीं, अपितु प्रत्येक बौद्धिक भावात्मक संस्थान नवागत पाश्चात्य सम्पर्क से प्रभावित हुआ है। साहित्यालोलन के क्षेत्र में पाश्चात्यालोचना अधिकाधिक प्रभावित कर रही है। अनुसंधान के बढ़ते हुए क्षेत्र के साथ आलोचना के विभिन्न देशी विदेशी स्वरूप अध्येता का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। आज के पाठक के लिये अरस्तू, कालरिज और क्रोचे प्राय उतने ही निकट हैं, जितने भरत, अभिनवगुप्त और पंडितराज जगन्नाथ। आलोचना के मानदण्ड बदलते रहते हैं। परम्परागत काव्य सिद्धान्तों की अवहेलना न करते हुए भी एक नवीन युग के समीक्षक को, समयानुकूल नये सत्यों को ग्रहण करना पड़ता है। अब समय आ गया है कि नये दृष्टिकोण एवं नये मूल्यों के आधार पर प्राचीन कवियों की समीक्षा कर उन्हें पुनः पंक्तिबद्ध किया जाये।

पाश्चात्यालोचना में 'काव्य बिम्ब' (पोइटिक इमेज) को आलोचना की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी के रूप में स्वीकार किया गया है। अनेक आलोचकों ने 'बिम्ब' को काव्य की आत्मा माना है। वस्तुतः बिम्ब प्रत्येक युग व देश की कविता का एक शाश्वत तत्त्व है।

महान् कवियों की रचनाओं का विभिन्न देशों के साहित्यिक मानदण्डों के अनुसार अध्ययन बड़ा रोचक एवं आह्लादकारी विषय है। कालिदास विश्व-कवि हैं। किसी भी संस्कृत-विद्यार्थी की, उनके काव्य के प्रति, अनुसंधित्सा सहज-सम्भाव्य है। कालिदास के विषय में अद्यावधि जो कार्य हुआ है, वह भारतीय आलोचना-पद्धति के अनुसार है। उनकी सूक्तियों, सुन्दर कल्पनाओं व उपमाओं के संग्रह या संकलन-रूप भी प्रकाशित हुए हैं। पाश्चात्य सिद्धान्त, विशेषकर बिम्ब-विधान के आधार पर उनके काव्यों का शास्त्रीय विश्लेषण अभी तक नहीं हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन इसी अभाव की पूर्ति का प्रयास है।

इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम बिम्ब सिद्धान्त का स्वरूप स्पष्ट करते हुए भारतीय काव्यशास्त्र से उसके सम्बन्ध पर विचार किया गया है। तदनन्तर स्रोतों, संवेदनाओं, भावों एवं शिल्प साधनों के आधार पर कालिदास की बिम्ब-योजना का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्र पावक में कालिदास की रचनाओं की अग्नि परीक्षा करके उनका पुनर्मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान्, डा. ब्रह्मानन्द शर्मा (भूतपूर्व निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर) के निर्देशन में लिखा गया है। आदरणीय डा० साहब के विद्वतापूर्ण एवं प्रेरणाप्रद मार्ग-दर्शन के लिये मैं उनकी सर्वथा कृतज्ञ हूँ।

अन्त में, मैं उन सभी मित्रों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिनसे मुझे समय-समय पर सहयोग मिलता रहा।

अमलेश गुप्ता
एम. ए. (संस्कृत व हिन्दी)
संस्कृत-प्राध्यापिका,
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

संकेत-सूची

र० रघुवंश

कु० कुमारसंभव

पू०मे० पूर्वमेघ

उ०मे० उत्तरमेघ

ऋ० ऋतुसंहार

अ०शा० अभिज्ञानशाकुन्तल

मा० मालविकाग्निमित्र

वि० विक्रमोर्वशीयम्

विषय–सूची

1
बिम्ब-परिकल्पना

साहित्यालोचन के क्षेत्र में बिम्ब शब्द अपेक्षाकृत नया है यह अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का पर्याय है और वर्तमान युग में पश्चिमी काव्य-शास्त्र की देन है । अत बिम्ब-सम्बन्धी विवेचन अंग्रेजी के 'इमेज' का ही विवेचन है। पश्चिम का आधुनिक काव्य शास्त्र 'इमेज' को काव्य का मूल उपकरण मानता है, न केवल उपकरण ही, अपितु वह बिम्ब-रचना को ही काव्य-कला की कसौटी मानता है। पाश्चात्यालोचना में काव्यात्मक बिम्ब का अत्यन्त गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया गया है। हिन्दी के आधुनिक आलोचना-साहित्य पर अंग्रेजी आलोचना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, फलत अंग्रेजी का 'इमेज' आज भारतीय आलोचना में जाने-माने शब्द 'बिम्ब' के नाम से प्रवेश कर गया है। काव्य-बिम्ब पर अनेक आलोचकों के ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

बिम्ब का अर्थ

बिम्ब का अर्थ समझने के लिये 'इमेज' को समझना आवश्यक है। कोश के अनुसार 'इमेज' का अर्थ है-"किसी वस्तु का मनश्चित्र या मानसी प्रतिकृति"[1] और 'कल्पना अथवा स्मृति में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति'।[2]

मनोविज्ञान में बिम्ब शब्द से 'मानसिक पुनर्निर्माण' का अर्थ लिया जाता है। 'मनोवैज्ञानिक-बिम्ब को स्पष्ट करते हुए विश्वकोष में लिखा है,' बिम्ब वे सजग स्मृतियाँ है, जो मूल प्रेरक अवधारणा की अनुपस्थिति में किसी पूर्व अवधारणा को समग्र अथवा आंशिक रूप में पुनर्प्रस्तुत करती हैं।' पुनश्च 'बिम्ब निर्माण पूर्णत मानसिक व्यापार है और बिम्ब मस्तिष्क की आँखों से देखी जाने वाली वस्तु है।'[3]

---

1 'शॉर्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी'

2 'चैम्बर्स ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी डिक्शनरी'

3 Images are conscious memories which reproduce a previous perception, in whole or in part, in the absence of the original stimulus to the perception and "The term 'image' is—for a purely mental idea, being observed by the eye of mind' Ency Brittanica (Vol 12 Page 103)

संस्कृत (हिन्दी) बिम्ब शब्द का अर्थ कोशो में इस प्रकार किया गया है। छाया, प्रतिच्छाया चन्द्रमा या सूर्य का मण्डल, अवस आदि।

इस प्रकार 'इमेज' के अर्थ में बिम्ब का प्रयोग सर्वथा उपयुक्त है और 'इमेज' का सही भाव बिम्ब में निहित है।

काव्य-बिम्ब की परिभाषा, क्षेत्र

काव्य में बिम्ब-विधान का अर्थ है सम्मूर्तन व्यापार। इसलिये इसे रूपयोजना, चित्र-विधान आदि शब्दो से भी उल्लिखित किया जाता है। अंग्रेजी आलोचना में श्री सिसिल डे लेविस की पुस्तक 'दी पोइटिक इमेज' काव्य-बिम्ब के सम्बन्ध मे प्रामाणिक रचना मानी जाती है। उनकी परिभाषा के अनुसार 'काव्य-बिम्ब अन्ततोगत्वा शब्दो मे आबद्ध एक ऐसा ऐन्द्रिय-चित्र है, जो कुछ अंशों तक रूपकात्मक होता है, और जिसके सम्बन्ध में कोई मानवीय भाव अनुस्यूत रहता है। किन्तु साथ ही, जो किसी विशिष्ट काव्यात्मक सवेदना से सप्रेरित हो पाठक तक उसी भाव को संप्रेषित करता है।[4]

इस प्रकार बिम्ब एक प्रकार का शब्द-चित्र है जिसके द्वारा कवि अपने भावों एव विचारो को उदाहृत, सुस्पष्ट एवं अलंकृत करता है। कवि के मन में भाव एवं विचार अमूर्त रूप मे निवास करते हैं, उन्हे इन्द्रियगम्य रूप में पुनः प्रस्तुत कर देना बिम्ब-विधान कहलाता है। जो वस्तु सामने नहीं है उसे इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य बना देना बिम्ब का काम है।[5] इसलिए जार्ज व्हेली ने कहा है–'बिम्ब किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निर्मिति है।'[6] हिन्दी के आलोचक डॉ. भगीरथ मिश्र[7] एवं डॉ. केदारनाथ सिंह[8] ने भी काव्य-बिम्ब में चित्रात्मकता एवं इन्द्रियगम्यता

---

4. "The poetic image is a more or less, sensuous picture in words, to some degree metaphorical, with an undernote of some human emotion in its context but also charged with and releasing into the reader a special poetic emotion or passion." ('The Poetic Image', P. 19)

5 "The sensory appeal in poetry, which, we have been considering, are usually referred to, as images, an image being understood to be the mental or imagined representation of anything not actually present to the senses".
—James R. Kreuzer 'Elements of Poetry'

6. 'Poetic Process' page 145.

7. 'काव्यशास्त्र', पृ. 244

8 'आधुनिक हिन्दी कविता मे बिम्ब-विधान' पृ. 23

को आवश्यक बनाया है। डॉ नगेन्द्र के अनुसार—'काव्य विम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।'[9] लॉंगिनस बिम्ब को कल्पना चित्र मानते हैं। विम्ब से उनका तात्पर्य है, 'जो कुछ वर्णन हम कर रहे हैं, उसे साक्षात् देख रहे हैं और अपने श्रोताओं के आगे भी प्रत्यक्ष कर रहे हैं।'[10] इस प्रकार अनुभूति की यथातथ्य अभिव्यक्ति बिम्ब है। सुश्री कैरोलियन स्पर्जियन के शेक्सपीयर सम्बन्धी बिम्ब विश्लेषण की बड़ी धाक है। उन्होंने बिम्ब की परिभाषा करते हुए कहा है, बिम्ब कवि द्वारा अपने विचार को उदाहृत, सुस्पष्ट एवं अलंकृत करने के लिए प्रयुक्त एक लघु शब्द चित्र है। यह किसी अन्य वस्तु के साथ वाच्य या प्रतीयमान साम्य या उपमा द्वारा प्रस्तुत किया गया, एक वर्णन या विचार है। कवि ने अपने वर्ण्य विषय को जिस ढंग से देखा, सोचा या अनुभव किया है, बिम्ब, उसकी समग्रता, गहनता या विशदता के कुछ अंश को अपने द्वारा उद्बुद्ध भावों एवं अनुषंगों के माध्यम से हम (पाठक) तक संप्रेषित करता है।"[11]

"बिम्ब एक दृश्य-चित्र, संवेदना की एक प्रतिकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना जो किसी की प्रतीक हो, एक अलंकार अथवा तुलना के लिये प्रस्तुत एक दुहरी इकाई भी हो सकता है।"[12]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि काव्य में बिम्ब विधान वह व्यापार है जिसके द्वारा कवि अपनी संवेदना व संवेद्य भावों को तदनुकूल ऐन्द्रिय अनुभूति के

---

9 'काव्य बिम्ब', पृ 5

10 'काव्य में उदात्त तत्व'—अनु डा नगेन्द्र, पृ 69

11 " an image is the little word picture used by a poet to illustrate, illuminate and embellish his thougnt It is a description or an idea, which by comparison or analogy stated or understood, with something else, transmits to us through the emotions and associations it arouses, something of the wholeness, the depth and richness, of the way the writer views, conceives or has felt what he is telling us "
—"Shakespear's Imagery & What it tells us ', page 9

12 ' a visual image, a copy of sensation or it may-be an ideal, any event in mind, which represents something, or it may be a figure of speech, a double unit involving comparision" Coleridge, quoted by I A Richards, 'Coleridge on Imagination', page 34

रूप में पाठक तक संक्रमित करता है। उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में बिम्ब के कतिपय लक्षण सहज ही निर्धारित किये जा सकते हैं। यथा—

(1) बिम्ब एक प्रकार का शब्द-चित्र है।

(2) बिम्ब के मूल में राग तत्त्व की अवस्थिति अनिवार्य है।

(3) बिम्ब का माध्य शब्द-अर्थ (भाषा) है।

(4) रूपकात्मकता बिम्ब में अनिवार्य नहीं, वह सम्मूर्तन का प्रमुख उपकरण है।

(5) ऐन्द्रिय संवेदना उत्पन्न करना बिम्ब का व्यापार है।

(6) बिम्ब मूर्त और अमूर्त (पदार्थ या गुण) दोनों का हो सकता है, किन्तु वह स्वयं मूर्तरूप होता है। अचाक्षुष भले ही हो, अगोचर नहीं होता।

बिम्ब का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। रूपविधान के जितने प्रकार हो सकते हैं, सब बिम्ब के क्षेत्र में जाते हैं। किसी पदार्थ के रूप, गुण, क्रिया आदि का यथातथ्य चित्रण, लक्षणा-व्यंजना द्वारा किसी भाव की चित्रात्मक अभिव्यक्ति, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, समासोक्ति आदि सादृश्यमूलक अलंकारों द्वारा लाए गए चित्र, मुहावरे, लोककथा, क्रिया-विशेषण द्वारा प्रस्तुत मूर्त-अभिधान, मानवीकरण व प्रतीक आदि का समावेश बिम्ब में हो सकता है, यदि वे भावगर्भित हों। कतिपय अति बिम्ब-वादी जन'[13] बिम्ब में मात्र ऐन्द्रियता पर बल देते हैं, भाव की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते, किन्तु भाव तो काव्य-मात्र के लिये आवश्यक है, अतः काव्य-बिम्ब में भाव-सत्ता आवश्यक है। कुछ विद्वान सादृश्य के रूप में लाए गए अप्रस्तुत विधान को बिम्ब मानने के पक्ष में नहीं हैं। वे प्रस्तुत रूप में लाए गए स्वभावगत चित्रों को ही विशुद्ध बिम्ब मानते हैं।[14] यह विचार भी संकुचित है, क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से तुलना के लिये लाए गए पदार्थ भी बिम्ब-सृजन में समर्थ होते हैं और परोक्ष रूप से भावों को तीव्रता प्रदान करने में सहायक होते हैं। वास्तव में बिम्ब कवि की अनुभूतियों एवं भावों का मूर्त प्रकाशन है जिसमें ऐन्द्रियता अपेक्षित है। इस सम्मूर्तन-प्रक्रिया में अप्रस्तुत योजना न आवश्यक है न अनावश्यक, न रूपक-विधान उपेक्ष्य है न अनिवार्यतः ग्राह्य। अनुभूति के स्वच्छन्द प्रवाह में जो भी दृश्य, वस्तु या भाव सामने आते हैं, उन्हें इन्द्रिय-ग्राह्य रूप में अभिव्यक्त कर देना ही बिम्ब-विधान है।

महत्त्व

काव्य की भाषा में बिम्ब का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाषा के इतिहास पर

---

13. देखें—'प्रसाद काव्य में बिम्ब-योजना।' डा. राम कृष्ण अग्रवाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979, पृष्ठ 44

14. देखें—पृष्ठ 30 व 49

दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि असंख्य शब्द प्रारम्भ में किसी न किसी बिम्ब से युक्त थे। कुछ शब्दों में उनका मूल आलंकारिक रूप आज भी देखा जा सकता है। जैसे 'प्रवीण' वीणावादन में दक्ष, तथा 'कुशल' कुश लाने वाले को कहते थे। काफी समय तक ये शब्द अपने चित्रात्मक रूप को साथ वहन करते रहे होंगे। धीरे-धीरे इनका यह बिम्बाधायक मौलिक रूप समाप्त हो गया और अशरीरी, सूचनात्मक चिह्न मात्र रह गये। एक पश्चिमी विचारक के अनुसार तो हमारी तीन चौथाई भाषा का निर्माण इन्हीं घिसे पिटे रूपकों के आधार पर हुआ है। सभी शब्द अपने मौलिक रूप में ऐन्द्रिय तथा मूर्त होते हैं जो कालान्तर में घिस कर अमूर्त हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भाषा अपने काव्यात्मक रूप को छोड़कर निरन्तर गद्य की ओर बढ़ती जाती है।[15]

सामान्य प्रयोग के ये शब्द काव्य के लिये अधिक उपयोगी नहीं रहते अतः कवि को अपनी कल्पना द्वारा शब्दों को नए बिम्बों में गर्भित करना पड़ता है। बिम्बवाद के पिता 'ह्यूम' ने कहा है—"कविता रोजमर्रा" की भाषा नहीं है अपितु दृश्य अथवा मूर्तभाषा है।[16] डा शशिभूषणदास गुप्त के अनुसार प्राचीन भारतीय आलंकारिकों की 'सालंकार भाषा' का गंभीर अर्थ भी यही था। भामह ने इसी असाधारण भाषा को वक्रोक्ति कहा है और शब्द अर्थ की सहितता भी यही है।[17] किसी किसी वैयाकरण का विश्वास है कि आरम्भ में भाष् धातु (बोलना) भास धातु (प्रकट करना) के साथ ही युक्त थी[18]। डा गुप्त ने भाषा की इस बिम्ब-विधायक शक्ति को 'चित्र धर्म' संज्ञा दी है। इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है—"बाहर की किसी वस्तु या घटना के स्मृतिधृत स्फुट-अस्फुट चित्र को मन के पर्दे में जगाकर उसकी सहायता से वक्तव्य की अभिव्यक्ति करने के धर्म को ही मैंने भाषा का चित्र-धर्म' कहा है।

जब हम अपने मानसिक या आध्यात्मिक जगत के सम्बन्ध में कोई बात कहने जाते हैं, तो हमें बहिर्जगत् की वस्तु या घटना की प्रतिच्छवि का सहारा लेना पड़ता है। भाषा में निहित यह जो बहिर्जगत् की प्रतिच्छवि है, वही भाषा का चित्र-धर्म है।[19]"

कविता में अर्थालंकार, बिम्ब के इस महत्त्व को ही प्रकारान्तर से पुष्ट करते हैं। श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं का बिम्ब-प्रधान होना बिम्ब के महत्त्व की मौन

15. डा केदारनाथसिंह 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान,' पृ 4
16. T B Hulme 'Speculation, p 135
17. 'उपमा कालिदासस्य' पृ 6
18. वही, पृ 5
19. वही, पृ 18–19

स्वीकृति है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने स्पष्ट शब्दों में बिम्ब के महत्त्व को स्वीकारा है—"काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है," काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्तभावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं तथा 'कविता में कही बात चित्र रूप में हमारे सामने आनी चाहिये'।[20] बिम्ब-विधान की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं—'काव्य की कोई उक्ति कान में पड़ते समय जब काव्यवस्तु के साथ वक्ता या बोद्धव्य पात्र की कोई मूर्त भावना भी लगी रहती है, तभी पूरी तन्मयता प्राप्त होती है'।[21] अपनी कवि जनोचित भाषा में पद्मश्री सुमित्रानन्दन पन्त काव्य में सम्मूर्तन की आवश्यकता बताते हुए लिखते हैं—"कविता के लिये चित्रभाषा की आवश्यकता होती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिये जो बोलते हों। सेब की तरह जिनकी रस-मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के आगे चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हों'.।[22] पन्तजी के उपर्युक्त कथन में बिम्ब के रचनात्मक स्वरूप, संवेदना के मिश्रण और तीव्र संवेगात्मकता की व्याख्या का प्रयास लक्षित होता है।

कवि की दृष्टि से भी बिम्ब-विधान का विशेष महत्त्व है। काव्य-निर्माण शब्द के माध्यम से होता है। शब्द से पूर्व अर्थ, अनुभूति के रूप में कवि के हृदय में रहता है। कवि जिस वस्तु या भाव की अनुभूति करता है, उसे, उसी रूप में पाठक को भी कराना चाहता है। इसके लिये कवि के हृदय की आन्तरिक अनुभूति एवं बाह्य अभिव्यक्ति में साम्य होना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कवि अपने ऐन्द्रिय संवेदन की मानसिक प्रक्रिया से अनेक संवेदनाओं को ग्रहण करता है। जैसे दृष्टि-संवेदना, ध्वनि-संवेदना, घ्राण-संवेदना आदि। ये क्रियाएँ शरीर के विभिन्न अवयवों के सहारे अमूर्त रूप में होती रहती हैं। यह कवि की व्यक्तिगत वस्तु है। कवि को अपनी व्यष्टिगत अनुभूति को समष्टिगत अनुभूति के रूप में परिणत करना होता है जिससे दूसरे, उसके हृदय की भावनाओं को उसी की भाँति अनुभव कर सकें। अज्ञेय ने कवि का शाश्वत धर्म यही माना है।

> 'हमें किसी कल्पित अजरता का मोह नहीं
> आज के विविक्त अद्वितीय इस क्षण को
> हम पूरा जी लें, पी लें, आत्मसात् कर लें
> उसकी विविक्त अद्वितीयता

---

20. 'चिन्तामणि' भाग 2, पृ. 43-44
21. 'रसमीमांसा' पृ. 310
22. 'पल्लव' भूमिका, पृ. 17

आपको, क्रमपि को, क ख ग को
अपनी-सी पहचनवा सकें
रसमय करके दिखा सकें
शाश्वत हमारे लिये यही है।' (इन्द्रधनु रौंदे हुए)
[नयी कविता, एक सम्भाव्य भूमिका, पृ 44]

जिस अभिव्यंजना-प्रणाली द्वारा कवि अपनी अनुभूति दूसरों को 'अपनी-सी पहचनवा सके' एवं 'रसमय करके दिखा सके' उस बिम्ब-योजना का निस्सन्देह कवि के लिये महत्त्व है।

डा ब्रह्मानन्द शर्मा ने काव्य म सादृश्य पर विचार करते हुए अनुभूति और अभिव्यक्ति के सम्बन्ध और सम्मूतन के महत्त्व का विस्तार से विवेचन किया है। वे लिखते हैं, आन्तरिक अनुभूति कवि की व्यक्तिगत वस्तु है। वह सहृदयो के आस्वादन का विषय नहीं बन सकती। आवश्यक है कि वह कवि की व्यक्तिगत चेतना तक सीमित न रह अपितु सहृदयो के आस्वादन का विषय बन। अभिव्यंजना की सफलता इसी म है कि यह अनुभूति का ही एक बाह्य रूप हो कालिदास के निम्नलिखित श्लोक का यही आशय है—

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी
मुनि कुशेध्माहरणाय यात ।
निषादविद्धाण्डज दर्शनोत्थ
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक ॥"[23]

डॉ शर्मा न अभिव्यक्ति की सफलता के लिये अप्रस्तुत-विधान का महत्त्व प्रतिपादित किया है। अनुभूति की तीव्रता के लिय, उन्होंने अलकार विधान के अतिरिक्त शब्द की लक्षणा व व्यंजना शक्तियों का भी उपकार माना है। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सादृश्य मूलक अलकार, लक्षणा-व्यंजना शक्ति तथा अन्य मूर्तता-विधायक उपकरणो को मिलाकर एक सामान्य शब्द 'बिम्ब' मे अभिहित किया जाता है। अत प्रकारान्तर मे यहा बिम्ब की स्वीकृति है।

निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं कि कवि को दो वस्तुओ की आवश्यकता है— दर्शन की तथा वर्णन की। केवल दर्शन से व्यक्ति दार्शनिक होता है। कवि के लिये आवश्यक है कि दर्शन के अनुरूप वर्णन भी हो। कवि की अनुभूति जब तदनुरूप भाषा द्वारा अभिव्यक्त होती है तभी उसको कवि सज्ञा होती है। कवि के लिये दृष्टि तथा सृष्टि का मंजुल सामजस्य अपेक्षित है

23 'संस्कृत साहित्य मे सादृश्यमूलक अलकारो का विकास' पृ 29

दर्शनाद्वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुतिः
तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुनेः
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना ।।'[24]
(हेमचन्द्र 'काव्यानुशासन अध्याय 8 की वृति में उद्धृत)

दृष्टि और सृष्टि के इस व्यापार का उल्लेख शेक्सपीयर की निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ी सुन्दरता से हुआ है। बिम्ब के सन्दर्भ में बहुधा उद्धृत किये जाने के कारण, यहाँ संकोचपूर्वक ही यह उद्धरण दिया जा रहा है—

"The poet's eye in a fine frenzy rolling
Doth glance from heaven to earth,
from earth to heaven.
And, as imagination bodies forth,
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shapes, and gives to airy nothing
A Local habitation and a name."
(A Midsummer Night's Dream, Act V. Sc.I)

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य में बिम्ब का महत्वपूर्ण स्थान है। वह काव्य का मूल एवं कवि-प्रतिभा का एकमात्र परिचायक है।

तत्व

बिम्ब के लक्षण निर्धारित करते समय हमने बिम्ब के तत्वों का उल्लेख किया था। बिम्ब के आवश्यक तत्व या उपकरण है—चित्रात्मकता, भावात्मकता, शब्द-अर्थ, रूपकात्मकता, ऐन्द्रियता, कल्पना आदि। बिम्ब के स्वरूप-गठन में उपर्युक्त घटक न्यूनाधिक रूप में प्रयुक्त होते हैं। काव्य का प्रेरक तत्व है भाव। भाव-संस्पर्श के बिना काव्य-बिम्ब का अस्तित्व संभव नहीं है। चित्रात्मकता भी बिम्ब का आवश्यक तत्व है क्योंकि अनेक आलोचकों ने बिम्ब को चित्र ही कहा है। ऐन्द्रिय अनुभव के आधार पर ही बिम्ब का निर्माण होता है, अतः ऐन्द्रियता बिम्ब का आधार है। बिम्ब का निर्माण सक्रिय कल्पना से होता है अतः कल्पना ही बिम्ब का कारण है। कवि की अनुभूति को पाठक तक उसी रूप में वहन करने में शब्दार्थ किंवा सार्थक शब्द ही माध्यम है, अतः समुचित भाषा ही बिम्ब का उपकरण-सामग्री है। स्वयं लेविस ने बिम्ब को कुछ हद तक सादृश्य-मूलक माना है, अतः रूपात्मकता भी बिम्ब का एक घटक है। किन्तु रूपात्मकता बिम्ब का अनिवार्य तत्व नहीं है। बिम्ब के साथ इन तत्वों के सम्बन्ध पर थोड़ा विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

---

24. वही, पृ. 33

बिम्ब और चित्रात्मकता

बिम्ब (इमेज) का शाब्दिक अर्थ चित्र ही है। कवि के हृदय में स्थित अमूर्त अरूप अनुभूतियाँ चित्रगुण से युक्त होकर ही बिम्ब की संज्ञा ग्रहण करती हैं। इसी को 'सम्मूर्तन व्यापार' भी कहा जा सकता है। सी डे लेविस ने बिम्ब की परिभाषा करते समय सर्वप्रथम बिम्ब की चित्रात्मकता का ही उल्लेख किया है। "In its simplest form, it is a picture made out of words"[25] (सरलतम रूप में बिम्ब को शब्दचित्र ही समझना चाहिये।)

चित्रात्मकता का बिम्ब से अन्योन्य भाव सम्बन्ध है, इसीलिये कुछ आलोचकों ने बिम्ब-विधान को चित्रविधान या चित्रधर्म कहा है। बोलचाल की भाषा में यह चित्रात्मकता विशेषतः मुहावरों एवं लोकोक्तियों में देखी जाती है। डा शशिभूषणदास गुप्त ने अपनी पुस्तक 'उपमा कालिदासस्य' में मुहावरों की इस चित्रधर्मिता का सुन्दर विश्लेषण किया है। जहाँ भी चित्रात्मकता होती है, वहाँ बिम्ब विधान होता ही है। कुछ नव्य आलोचक तो केवल चित्रात्मकता को ही बिम्ब की अनिवार्यता मानते हैं, किन्तु हमारे विचार से वही चित्र बिम्ब हो सकता है जो भावानुभूति से संयुक्त हो। बिम्ब में बाह्याकार का अनुकरण-मात्र विशेष मूल्य नहीं रखता, यद्यपि ऐसे शब्दचित्र भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं जिनमें स्थूल दृश्य छवियों का आकलन मात्र ही होता है, किन्तु इसे बिम्ब-विधायक नहीं माना जा सकता। वस्तु के बाह्याकार की अपेक्षा आन्तरिक दीप्ति का महत्त्व है। चित्रांकन में भोक्ता की भावना एवं आकांक्षा का स्पर्श होना आवश्यक है अन्यथा कविता एक निर्जीव चित्राकृति मात्र रह जाएगी। बाह्य प्रकृति के दृश्य-चित्र एवं विभिन्न मुद्राओं का सजीव अंकन, चाक्षुष प्रतिमा के रूप में उत्कीर्ण होकर बिम्बविधायक स्वरूप धारण करते हैं।

अर्थालंकारों में जो सादृश्यमूलक हैं वे प्राय चित्रविधायक होते हैं। सादृश्य-विधान के अभाव में भी शब्दशक्ति द्वारा सुन्दर चित्रात्मक अभिव्यक्ति हो सकती है। कालिदास का निम्न श्लोक स्वाभाविक रूप में सचित्र है —

> ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
> पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
> दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा,
> पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।।
>
> (अभि 1 7)

यहाँ रथ के आगे दौड़ते हिरण का बड़ा सूक्ष्म व सचित्र वर्णन हुआ है। बाण लगने के भय से भागते मृग की भयभीत भंगिमा यथातथ्य रूप में चित्रित है,

---

25 'Poetic Image p 11

पूरा दृश्य जैसे आँखों के आगे सजीव हो जाता है। यहाँ किसी प्रकार का सादृश्य नहीं है अपितु प्रस्तुत पक्ष को ही आन्तरिक स्वाभता के साथ चित्रण किया गया है। 'ग्रीवाभंगाभिरामं' 'स्यन्दनेबद्धदृष्टिः' 'पश्चार्धेन प्रविष्टः' आदि विशेषण इतने सचित्र है कि यदि कोई चित्रकार चाहे तो इन शब्दों के आधार पर ही पूरा चित्र बना सकता है। यहाँ हरिण की गतिभंगी के बाह्य क्रिया-व्यापार का अन्तःप्रक्रिया के साथ सामजस्य घटित हो रहा है। भावव्यंजकता एवं दृश्य-चित्रण ने बिम्ब को अर्त्यत सजीव बना दिया है। व्यंजना-शक्ति द्वारा भावों को चित्र रूप में प्रस्तुत करने से सुन्दर व सरस बिम्बों का निर्माण होता है। यथा कालिदास का निम्न बिम्ब—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।। (कु.6.84)

पिता के समक्ष अंगिरा ऋषि द्वारा शंकर से विवाह की चर्चा चलने पर पार्वती ने सिर झुका लिया एवं वे हाथ में लिये लीला-कमल की पंखुड़िया गिनने लगी। यहाँ 'लज्जित होना' एक अमूर्त भाव है, और सिर झुकाकर कमलदल गिनना एक मूर्त स्थिति। लज्जित होने के स्थान पर अधोमुखी कहने में जो सौन्दर्य है उसका कारण चित्रात्मकता ही है। यहाँ कवि ने लज्जाभाव का एक चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि चित्रात्मकता बिम्ब का मूल तत्व है।

बिम्ब और अनुभूति

बिम्ब के साथ अनुभूति (feeling) के सम्बन्ध पर भी विचार कर लेना उचित होगा। बिम्ब के स्वरूप गठन में अनुभूति का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारतीय दर्शन, विशेषकर, न्याय दर्शन एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुभूति का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है। 'डिक्शनरी आफ साइकोलोजी' (वारेन) में लिखा है। 'अनुभूति क्षणविशेष में या नियत समय पर किसी व्यक्ति की मनःस्थिति का समा-कलन अथवा उसका कोई विशिष्ट अवयव या पहलू, क्षण विशेष में होने वाली ऐसी मानसिक घटनाओं का योग या संकलन, जिनका ग्रहण व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से करता है।'[26]

काव्य के लिये अनुभूति आधार है। कवि का अनुभूति क्षेत्र जितना व्यापक होगा, उतना ही विविधतापूर्ण उसका बिम्बविधान होगा। श्रीकृष्ण चैतन्य 'मेरिस' के कथन को उद्धृत करते हुए कहते है कि 'एक सच्चे कलाकार को अनिवार्यतः, समय समय पर, प्राकृतिक विभूतियों-आकाश, समुद्र, पर्वत, मैदान एवं

---

26 डा. नगेन्द्र 'काव्य-बिम्ब' पृष्ठ 48 पर उद्धृत

तत्सम्बन्धित वस्तुओं को देखने जाना चाहिये, जिससे वह अपने निजी रूप को सच्चा बना सके व शक्ति को पुनरुज्जीवित कर सके।'[27]

अनुभूतियाँ हमारी स्मृति में एकत्र होती रहती हैं और स्मृति बिम्ब को जन्म देती हैं। इसीलिये ब्रैली ने बिम्ब की निर्माण-प्रक्रिया को स्मृतियों के संदर्भ में अनुभूतियों की व्याख्या करना कहा।[28] अनुभूति का काव्य में नितान्त महत्त्व है। यदि अनुभूति प्रबल हो तो उसे बाह्य अलंकरण की कोई आवश्यकता नहीं। वर्ड्सवर्थ ने कहा है 'कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है'[29]। काव्यशास्त्रियों ने अनावृत अनुभूतियों के अनेक उदाहरण सहृदयों के सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। आचार्य मम्मट द्वारा प्रस्तुत उदाहरण प्रसिद्ध है

> य कौमारहर स एव हि वरस्ताएव चैत्रक्षपा—
> स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभय प्रौढा कदम्बानिला।
> सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
> रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेत समुत्कण्ठते।
>
> (काव्य प्रकाश उदा० संख्या-1)

यहाँ कवि की मूल अनुभूति एक ऐसी अपरितृप्त भावना या उत्कण्ठा है जो सुख-सामग्री के बीच भी भटकती हुई पूर्वानुभूत क्षणों में लौट जाना चाहती है। सुख-सामग्री के बीच उत्कण्ठा उपशमित हो जानी चाहिये थी किन्तु ऐसा दृष्टिगत नहीं होता। यहाँ अनुभूति की तीव्रता स्वयं सहृदय आस्वाद्य मधुर काव्य में परिणत हो गई है। श्रीकृष्ण चैतन्य अर्वाचीनकारों के ग्रंथ में 'इमेज' का प्रयोग करते हैं और

---

27 "Marin wrote—The true artist must perforce go from time to time to the elemental big forms-sky sea, mountains, plains, and those things pertaining there to, to sort of retrue himself up, to recharge the battery" quoted in 'Sanskrit poetics' page 34

28 यथा—"It is the feeling that abides in memory, secretly combining with and modifying other feelings When these feelings emerge into the light and seek a body, they take on the aspect of images in poetry"—Poetic Process' page 76

29 "Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings"—Wordsworth' Preface to Lyrical Ballets'.

अलंकारों के लिये भी अनुभूति आवश्यक मानते हैं। वास्तव में काव्यालंकार को सपाट बयानी से पृथक करने वाली सीमारेखा अनुभूति ही है।' 30

विम्ब और भाव

काव्य का प्रेरक तत्त्व भाव है। भाव के स्पर्श के बिना काव्य-विम्ब का अस्तित्व नहीं है। काव्य-विम्ब स्वभावतः सामान्य बिम्ब की अपेक्षा अधिक रंगमय और समृद्ध होता है, उसे यह रंग और समृद्धि भाव से ही प्राप्त होती है। भावानुभूति के अभाव में चित्रात्मकता से समन्वित होकर भी काव्यांश हृदय को उद्वेलित करने में समर्थ नहीं हो सकता। बिम्ब के मूल में कवि की भावात्मक प्रतिक्रिया का योग ही पाठक को भाव-विशेष में मग्न करके रससृष्टि कर सकता है। प्राकृतिक दृश्यों, वस्तुओं अथवा स्थितियों के यथातथ्य चित्रण में भी संवेदना तत्त्व का योग देखा जा सकता है। प्रस्तुत आलम्बन रूप बिम्बों की योजना वस्तुपरक होते हुए भी किसी भावानुभूति की पीठिका पर ही आधारित होती है। केवल ऐन्द्रियता एवं चित्रात्मकता से बिम्ब-विधान नहीं होता। बहुधा विज्ञापन एवं समाचार भी ऐन्द्रिय शब्द-चित्रों से युक्त होकर आते हैं, किन्तु वे कवि के हृदय की वासना से असम्पृक्त होते हैं। यह तटस्थता ही उन्हें काव्यबिम्ब की सीमा नहीं छूने देती। कवि अपने काव्य में तटस्थ वर्णन नहीं करता, वह स्वयं अपने को प्रस्तुत करता है। बिम्ब कितना भी सुन्दर क्यों न हो, जब तक वह कवि की शक्तिशाली वासना या भावना से संयुक्त नहीं होता, कवि की विशिष्टता को प्रतिपादित नहीं कर सकता।

भाव संक्रामक होते हैं। उनकी अभिव्यक्ति दूसरों के हृदय में भी उसी प्रकार की अनुभूति जागृत करती है। भाव कवि हृदय में संस्कार रूप में स्थित रहते हैं और बिम्ब-योजना द्वारा पाठक तक पहुंचते हैं। इस रूप में भाव ही काव्य का अथ और इति है। भाव की अनुभूति से ही कवि कर्म का प्रारंभ होता है और उसी भाव की अनुभूति श्रोता या पाठक में जागृत कर देना कवि का अन्तिम लक्ष्य है।[31]

---

30. "Art is a representation (Abhinaya) of the feeling experienced by poet through concrete objects....the figure is dispensable. What is indispensable is feeling and experience. The genuine presence of poetic feeling is the criterion for distinguishing the poetic figure from a mere speech figure." Sanskrit poetics", p. 94

31. "Emotion is the beginning and the end of the poetry in a sense unknown to prose." R.H.Fogle in 'Imagery of Keats & Shelley', page 17.

बिम्ब के लिए भाव की आवश्यकता सभी आलोचकों ने स्वीकार की है। एजरा पाउण्ड ने बिम्ब की व्याख्या में भाव व विचार को प्रमुखता दी है। उन्होंने कहा है बिम्ब एक निश्चित समय में भावनात्मक एवं बौद्धिक विचारों का प्रकट करता है'।[32] संस्कृत काव्यशास्त्र में बिम्ब-सम्बन्धी विचारधारा को सादृश्यमूलक अलंकारों के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। श्री कृष्ण चैतन्य लिखते हैं कि 'काव्य में भाव-गर्भित 'इमेज' ही वैध माना जा सकता है।[33]' आनन्दवर्धन ने कवि की भावानुभूति से अलंकार को 'वाग्विकल्प' मात्र माना है।[34] भोज ने अलंकार को 'काव्यशोभाधायक' माना है।[35] और यह शोभा निश्चित रूप से पाठक अथवा दर्शक की भावानुभूति से सम्बन्धित है। अप्पय दीक्षित ने हृदय को प्रभावित करने वाले सादृश्य को ही अलंकार माना है।[36] डा. ब्रह्मानन्द शर्मा ने सादृश्यमूलक अलंकारों में रसभाव की सत्ता आवश्यक मानी है।[37] यद्यपि संस्कृत के उत्तरवर्ती कवियों ने सादृश्य में बिम्बात्मक, भावात्मक चित्रों की अपेक्षा दूर की कौड़ी लाने का प्रयास ही अधिक किया है, पाठक भी प्राय विद्वान हुआ करते थे अतः बौद्धिक, चमत्कार से प्रभावित होकर 'यमुनात्रिविक्रम' जैसी उपाधियाँ भी वितरित की गई, किन्तु आलोचक बराबर रागबोध पर बल देते रहे, जैसाकि ध्वनिवाद और रसवाद के सिद्धान्तों से प्रकट होता है।[38]

काव्य-बिम्ब में भाव के महत्त्व को कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट देखा जा सकता है—

क

(1) शतशो गतिरावृति शतश कण्ठावलम्बनम् शतश ।
शतशो यामीति वच स्मराम तस्य प्रवासदिने ॥

आर्यासप्तशती—576

---

32 'An image is that, which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time'

'Make it New' P—36

33 "But only that image is poetically valid, which, embodies the emotion"—'Sanskrit Poetics', p—94

34 'ध्वन्यालोक' 3 37 वृत्ति/5 'सरस्वतीकण्ठाभरण' 3/1

35 यथा—'हृद्य साधर्म्यमुपमेत्यभिधीयते।' 'चित्रमीमांसा' पृष्ठ—7

निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1941

36 द्रष्टव्य।

37 'संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का विकास'। पृष्ठ 32-33

38 विशेष स्पष्टीकरण के लिए देखें—द्वितीय अध्याय में 'अलंकार सिद्धान्त और बिम्ब'

यहाँ 'क' भाग में ऐसे उदाहरण लिये गये हैं जिनमें सादृश्य-विधान (रूपकात्मकता) नहीं है, चित्रात्मकता का विधान सहज ढंग से किया गया है। यहाँ आकर्षण मुख्य रूप से सहजानुभूति एवं रागात्मकता पर आधारित है। प्रथम उदाहरण में प्रवास पर जाते नायक की उत्कण्ठा कविता की जान है। नायक की अमूर्त भावना का चित्रण उसकी शारीरिक क्रियाओं से प्रत्यक्ष किया गया है। भाषा-चमत्कार यहाँ नहीं के बराबर है। नायक का बार-बार जाना और भावावेग में बार-बार लौटना, नायिका से गले मिलना, पुनः पुनः कहना 'अच्छा, मैं चलता हूँ' एक बहुत प्रभावशाली गति-बिम्ब की सृष्टि करते हैं। दूसरे उदाहरण में संतान-हीन दुष्यन्त का भरत के प्रति वात्सल्य-भाव वर्णित है। यह भाव, आलम्बन भरत के स्वाभाविक सचित्र वर्णन पर आधृत है। यहाँ सादृश्य नहीं, चित्रात्मकता का भी विशेष आकर्षण नहीं, लेकिन मानव-हृदय की भावना पूर्णवेग के साथ प्रकट हुई है। यह पद्य किसी भी मानव-हृदय को रस सिक्त करने की सामर्थ्य रखता है। यहाँ बालक के कली जैसे दाँत, तोतले बोल एवं धूल धूसरित शरीर के बिम्ब संपूर्ण चित्र को अलौकिक सौन्दर्य प्रदान कर रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव प्रेरित बिम्ब प्रभावशाली होते हैं, भले ही सादृश्य का चमत्कार न हो।

'ख' भाग में कुछ ऐसे पद हैं जिनमें चित्र स्पष्ट हैं, इन्द्रिय ग्राह्य हैं, रूप-कात्मकता भी पर्याप्त मात्रा में है, किन्तु राग-तत्त्व क्षीण है। चन्द्रमा को आर्ट पेपर कहने से उसकी स्पष्टता, स्वच्छता, रूप-रेखा तो मूर्त हो गई है लेकिन कवि की वासना से जुड़ा न होने के कारण हृदय में स्पन्दन उत्पन्न नहीं करता। श्री हर्ष ने सूर्य को 'दाडिम' और तारों को चूसकर थूके बीजों' के रूप में कल्पित किया है। यहाँ तारों और अनार के दानों में बाह्य सादृश्य मात्र है। यहाँ दृश्य-तत्त्व पर्याप्त मात्रा में है, उपमान भी नवीन है किन्तु अनुभूति का माधुर्य नहीं, अतः इसे बिम्ब कहना हमें मान्य नहीं। सूर्यास्त के बाद आकाश में खिले तारों के लिये श्री हर्ष की कल्पना 'आकाश ने स्वर्णपिण्ड बेचकर यह कौडियाँ खरीद लीं' किसी प्रकार के भावोद्वेलन में असमर्थ है। यह ऊहा' या अधिक से अधिक सादृश्य मात्र है। स्पष्ट है कि भाव के अभाव में सादृश्य व चित्रात्मकता होने पर भी बिम्ब नहीं बन सकता। यदि विस्तृत अर्थ में कदाचित बिम्ब मान भी लें तो वह निर्जीव व प्रभावहीन है अतः काव्य के लिये अनुपयोगी होता है।

'ग' भाग में बिम्ब भावानुभूति एवं उच्चकोटि की कल्पना से जुड़े हुए हैं। इनमें अनुभूति और चित्रात्मकता, भावना और ऐन्द्रियता का मणिकांचन योग है। वास्तव में ये ही सच्चे बिम्ब हैं। इस प्रकार बिम्ब एक ओर भावपक्ष (अनुभूति) और दूसरी ओर कलापक्ष (अभिव्यक्ति) से जुड़े रहते हैं। कालिदास के उदाहरण में उदित होते चन्द्रमा को प्रेमी नायक का बिम्ब दिया गया है रात्रि नायिका है।

चन्द्रमा की किरणों में अंगुलियों की कल्पना, अन्धकार में रात्रि के केश पाश की कल्पना, कुड्मलीकृत'—कलीबद्ध कमल में अंधमुदे नेत्र (नायिका के आनन्द-भाव को प्रकट करने के लिये) की कल्पना मिलकर एक संश्लिष्ट बिम्ब का निर्माण करते हैं। रात्रि-प्रारम्भ के लिये 'रजनीमुख' एक मूर्त कल्पना है। यह एक सुन्दर बिम्ब है, इसे केवल उत्प्रेक्षालंकार कहकर काव्य के तीसरे वर्ग 'चित्रकाव्य' में नहीं रखा जा सकता। दूसरा कन्नड कवि का उदाहरण आधुनिक बिम्ब-विधान का एक सटीक उदाहरण है। दशरथ की अनपत्यता की मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है। दशरथ गुरु वसिष्ठ के समक्ष अपने हृदय की अमूर्त भावनाओं को बड़े मूर्त रूप से उपस्थित करते हैं। 'रिसता हुआ कलश' हृदय के खालीपन को साक्षात् कर देता है। वंश समाप्त होने के लिये 'अन्तिम दीपक बुझने' का बिम्ब, सन्तानहीनता की निराशा के लिये 'अन्धा होना' 'मन के आम्रवृक्ष को बीमारी लगना' बहुत ही मूर्त कथन है। आगे इसी कविता में कवि समस्त राज वैभव को 'शव-शृंगार' कहता है। ये समस्त बिम्ब मिलकर एक बहुत सुन्दर भाव-चित्र का सृजन करते हैं और पाठक देर तक करुण भाव में डूबा रहता है।

शेक्सपीयर के उदाहरण द्वारा भी बिम्ब में भाव का महत्त्व प्रतिपादित होता है। कवि जीवन की लघुता तथा निस्सारता से अभिभूत है। इसके लिये कवि 'एक छोटी मोमबत्ती', 'चलती फिरती छाया', 'एक अनाड़ी अभिनेता', 'एक असम्बद्ध कथा' के बिम्ब प्रस्तुत करता है। ये बिम्ब सारहीन जीवन के विभिन्न पक्षों की सूक्ष्म व्यंजना करते हैं। 'छोटी मोमबत्ती' जीवन की लघुता तथा 'चंचल छाया' इसकी अस्थिरता को मूर्त रूप प्रदान करती है। सभी प्राणी थोड़ी-थोड़ी देर के लिये विश्व रंगमंच पर अपना-अपना पार्ट अदा करने आते हैं, इससे जीवन की नाटकीयता को प्रकट किया गया है। मूर्ख द्वारा कही गई असम्बद्ध कथा जीवन की सारहीनता और निरर्थकता को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि बिम्ब में भाव की सत्ता ही प्राण-प्रतिष्ठा करती है। सादृश्य के बिना बिम्ब बन सकता है परन्तु केवल सादृश्य से नहीं बन सकता। ऐन्द्रियता व मूर्तता भाव-संयुक्त होने पर ही बिम्ब अभिधान को प्राप्त करती है।

ऐन्द्रियता और बिम्ब

काव्य-बिम्ब में सम्मूर्तन का आधार ऐन्द्रियता है। अतः ऐन्द्रियता बिम्ब की एक मूलभूत आवश्यकता है। इन्द्रियगम्यता के कारण ही बिम्ब काव्य में सामान्य वर्णन से विशिष्ट होकर आता है। सभी बिम्बवादियों ने इन्द्रियगम्यता को बिम्ब में आवश्यक माना है। रोनाल्ड पीकाक का कथन है—'भूतकाल की इन्द्रिय-बोधात्मक अनुभूतियों का स्मृति द्वारा मस्तिष्क में पुनरुद्भावन, ही बिम्ब निर्माण है। इनमें चाक्षुष, श्रवणात्मक, संस्पर्शात्मक और तत्सम्बन्धित अन्य प्रभावों

का ग्रहण होता है'।[40] लेविस ने कहा है कि प्रत्येक काव्य-बिम्ब, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यो न हो, ऐन्द्रिक गुणो से सवलित रहता है।[41] हमारी ज्ञानेन्द्रियो के आधार पर ही यह ऐन्द्रियता चाक्षुष के अतिरिक्त स्पर्शजन्य, आस्वाद्य, श्रव्य व घ्रातव्य भी हो सकती है। प्राय सभी बिम्बो मे चाहे वे किसी भी सवेदना से युक्त हो, कुछ अशो तक चाक्षुष गुण अवश्य रहता है। शब्द, स्पर्श आदि के अपने-अपने बिम्ब होते है, किन्तु उन्हे भी रूप का आधार लेना पडता है। अत दृश्य तत्त्व का महत्त्व, सर्वाधिक है और अधिकतर बिम्ब चाक्षुष ही होते हैं। चाक्षुष सवेदना का वर्णन चित्रात्मकता के अन्दर किया जा चुका है। बिम्ब शब्द के मौलिक अर्थ मे ही दृश्यता की ध्वनि है, फिर भी यह बिम्ब आँख का विषय नही, कल्पना का विषय है। वह सूक्ष्म या स्थूल किसी प्रकार का हो सकता है। इसलिये एक सफल बिम्बात्मक कविता मे जो प्रत्यक्ष दिखाई पडता है, उससे कही अधिक महत्त्वपूर्ण वह अमूर्त झलक होती है जो एक ज्योतिरेखा की तरह क्षण भर के लिए, चेतना के धरातल पर खिचकर तत्काल विलीन हो जाती है। जहाँ तक मापदण्ड का प्रश्न है, बिम्ब के स्वरूप-निर्णय के विषय मे ऐन्द्रियता बिम्ब की प्रमुख कसौटी है। उल्लेखनीय है कि वस्तु को ऐन्द्रिय विशेषताओ से सयुक्त कर देना ही अपने आप मे साध्य नही है, इसकी वास्तविक परिणति अपेक्षित प्रभावोत्पादन मे होनी चाहिये। मानवीय सवेदनाओ की पृष्ठभूमि मे ही ऐन्द्रियता प्रभावोत्पादक हो सकती है। उससे पृथक् होकर बिम्ब अपनी सार्थकता खो बैठता है। अत जहाँ अतिवादिता की झोक मे शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गन्ध के अद्भुत सावेदिक मिश्रणो को प्रस्तुत करने मात्र मे ही कवि-प्रतिभा की इतिश्री हो गई है, वहाँ बिम्ब निर्माण का मूल उद्देश्य भी कुण्ठित हो गया है। डा केदारनाथसिह ने सादृश्यमूलक तुलना से ऐन्द्रिय बिम्ब का अन्तर स्पष्ट करते हुए इन्द्रिय-गम्यता को निम्नलिखित दो उदाहरणो द्वारा समझाया है —

"प्राचीन कविता के तुलनात्मक औपम्य-विधान और आज की कविता के प्रत्यक्ष बिम्ब विधान मे मूलभूत पद्धति का अन्तर है। बिम्ब-विधान मे उपमेय

---

40 "Image is a revival reproduction by memory in the mind of some sensory experience undergone in the past including the visual, auditary, tactile and other impressions associated with it"

—Ronald Peacock

(उद्धृत, भगीरथमिश्र काव्य शास्त्र' पृ, 159

41 'The poetic Image' Page 19

और उपमान के बीच का अन्तर प्रायः अलक्षित होता है। इस बात को एक उदाहरण से समझें—

मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र सा है।

—गिरिधर शर्मा

इस छन्द के समानान्तर इसी के भाव से मिलती-जुलती एक प्रसिद्ध आधुनिक अमरीकी कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

"Comerades, this is no book,
Who touches this, touches a man."
(मित्र यह पुस्तक नहीं, जो इसे छूता है,
वह एक जीते जागते, मनुष्य को छूता है।)

गिरिधरजी की पंक्तियों में ग्रन्थ को नव मित्र सा कहने से उसका स्पष्ट बिम्ब नहीं बन पाता, केवल अर्थग्रहण मात्र होता है। लेकिन अंग्रेजी पंक्तियों में कवि पुस्तक को एक जीते-जागते मनुष्य के रूप में कल्पित करता है और अपनी इस कल्पना पाठक की बुद्धि पर छोड़ नहीं देता है। उसे अनुभूति का अंग बनाकर ऐन्द्रिय स्तर पर उतार लाने का प्रयास करता है। इसीलिये उसकी कल्पना का प्रभाव पाठक के मन पर एक स्पर्श-बिम्ब के रूप में पड़ता है, ऐन्द्रिय पर्युत्सुकता जगा सकने के कारण दूसरी कल्पना अधिक सच्ची और प्रभावशाली सिद्ध होती है।[42] एक कारण और है जिसकी ओर सभवतः लेखक का ध्यान नहीं गया। बिम्ब जब होता है, तब 'विशेष' का ही होता है, 'सामान्य' का नहीं। सामान्य में ऐन्द्रिय पर्युत्सुकता जगाने की सामर्थ्य कम रहती है। प्रथम उदाहरण में 'जो ग्रन्थ विलोकता हूँ' से सामान्य ग्रन्थ का कथन किया गया है इसलिये प्रभावोत्पादकता नहीं आ सकी है। दूसरे उदाहरण मे एक कवि ने 'विशेष ग्रन्थ' (This Book) को जीता-जागता बताया है जो बिम्ब उत्पादन मे समर्थ है। कालिदास के 'मेघदूत' में दूसरे प्रकार के उदाहरण, विभिन्न ऐन्द्रिय संवेदनाओं के संश्लिष्ट चित्र, कलात्मक रूप में निबद्ध है।

बिम्ब और कल्पना

बिम्ब का निर्माण सक्रिय या सर्जनात्मक कल्पना से होता है, अतः बिम्ब के सम्बन्ध में कल्पना पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा। कल्पना शब्द की व्युत्पत्ति 'क्लृप्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है रचना अथवा सृष्टि करना। किन्तु आधुनिक आलोचना में यह शब्द 'इमैजिनेशन' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसके आधर पर कल्पना एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया मानी जा सकती है जिसमें कवि मूर्तियों अथवा रूपों की सृष्टि करता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इस अर्थ में 'प्रतिभा' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'प्रतिभा' का लक्षण करते हुए उसे नव-निर्माण कराने वाली प्रज्ञा कहा गया है—

---

42. 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान' पृ.139

'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता'[43]
'अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्राज्ञ' (ध्वन्यालोक 1 6)

'प्रतिभा' ही वह शक्ति है जिससे कवि नवीन सृजन तथा नूतन रूप विधान की सामर्थ्य प्राप्त करता है । काव्य प्रकाशकार ने इसे पूर्वजन्म के संस्कारों से प्राप्त शक्ति कहा है, जो कवित्व का बीज है। इसके अभाव में काव्य-सृष्टि असम्भव है। कदाचित् हो भी जाय, तो उपहास्पद बन जाएगी—

'शक्ति कवित्वबीजरूप संस्कारविशेष । या विना काव्य न प्रसरेत्, प्रसृत वा उपहसनीय स्यात् ।' (मम्मट 'काव्यप्रकाश' 1·3 वृत्ति)

राजशेखर ने प्रतिभा के दो विभाग किये हैं (1) कारयित्री प्रतिभा (2) भावयित्री प्रतिभा।[44] पाश्चात्य आलोचना में कल्पना के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया गया है। वहाँ कल्पना का प्रयोग कम से कम छ अर्थों में किया जाता है।[45] कालरिज काव्य सृजन में कल्पना की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करते हैं तथा इसके छ कार्य स्वीकार करते हैं ऐक्य विधान, सार-सचयन, संशोधन, उपस्थिकरण, संग्रहण तथा संगठन।[46]

इस प्रकार आधुनिक अर्थ मे रूपसृष्टि करने वाली शक्ति 'कल्पना' है। जीवन के विविध दृश्यों को सामने प्रस्तुत करना कल्पना का ही काम है। निराकार वस्तुओं और भावों का आकार देना, तथ्य को चित्रमय बनाना, चरित्र या पात्र के व्यक्तित्व को साक्षात् करना, घटना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना और भाव जगाने वाले चित्र अंकित करना कल्पना द्वारा ही सम्भव होता है। इस प्रकार कवियों की बिम्ब योजना, उनके द्वारा हृदयगम किये गये तथ्यों और भावों की मूर्त अभिव्यक्ति, कल्पना के सहारे से ही होती है। अतीत को वर्तमान बनाना, दूरस्थ को प्रत्यक्ष करना और जीवन के अनुभव व ज्ञान को एक निश्चित रूप प्रदान करना कल्पना का ही प्रसार है।

---

43 भट्टतोत 'काव्यकौतुक'—उद्धृत 'काव्यप्रकाश' भूमिका पृष्ठ 11

44 'काव्यमीमांसा' अध्याय-4 पृष्ठ 15, प्रकाशक-ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, 1934

45 "At least six distinct senses of the word 'imagination' are still current in critical discussion "
—I A Richards 'Principles of Literary Criticism' p 239

46 "It unites, it abstracts, it modifies, it aggregates, it evokes, it combines " —Biographia Literaria, p 154

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कल्पना विम्ब का करण तत्त्व है। लोंगिनुस कल्पना को विम्बों की प्रेरणा शक्ति स्वीकार करते है और विम्ब को कल्पना-चित्र मानते हैं।[47] वेब्स्टर भी कल्पना को चित्रविधायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं ।[48] डा. नगेन्द्र लिखते हैं कि, सर्जना के क्षणो मे अनुभूति के नाना रूप कवि की कल्पना पर आरूढ़ होकर जब शब्द-अर्थ के माध्यम से व्यक्त होने का उपक्रम करते है, तो इस सक्रियता के फलस्वरूप अनेक मानस-छवियाँ आकार ग्रहण करने लगती हैं, उन्हे ही काव्य-विम्ब कहते है।[49]

कल्पना के इस विवेचन से स्पष्ट है कि कल्पना काव्यनिर्माण के प्रत्येक क्षेत्र में कवि की सहायता करती है। कल्पना का प्रकाशन काव्य-रचना के अन्तर्गत, मुख्य, रूप से, तीन रूपों मे माना जा सकता है। (1) कथा में (2) चरित्र-चित्रण में (3) अभिव्यक्ति में। । यहाँ हमारा विवेचनीय अभिव्यक्ति ही है। अभिव्यक्ति मे कल्पना विम्बों, अलंकारों एवं प्रतीको द्वारा अपना स्वरूप प्रकट करती है।

विम्ब और भाषा

विम्ब के माध्यम शब्द-अर्थ हैं। अतः यह जानना आवश्यक है कि विम्ब से भाषा का क्या सम्बन्ध है और विम्ब के लिये भाषा में किन गुणों का होना आवश्यक है ? कवि अनुभूति भाषा मे ही अभिव्यक्त होती है। विम्ब कवि की अनुभूति से अभिन्न वस्तु है। अतः काव्य में विम्बात्मकता के लिये आवश्यक है कि भाषा अनुभूति को ज्यों की त्यों प्रकाशित करने वाली हो। भाषा में प्रकट होने वाला विम्ब भाव का दृश्य स्वरूप है। इस रूप में विम्ब के अन्तर्गत भाव और भाषा दो पृथक् सत्ताएँ नही हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उदाहरणार्थ, कवि क्रोध भाव का दर्शन 'कुटिल भौंह' 'फड़कते होठ' आदि के रूप में करता है। इन्हीं शब्दों मे वह क्रोध को काव्य मे प्रस्तुत करता है । कविता के लिये चित्र-भाषा की आवश्यकता होती है। इसके लिये कवि को प्रत्यक्ष वर्णन करना होता है। अतः कवि को ऐसे शब्दों से बचना चाहिये जो उपस्थितीकरण में सहायता नही करते'। विम्बोपयोगी भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ मानी जा सकती है।

(1) व्यंजकता

(2) चमत्कारहीनता

---

47. 'काव्य में उदात्त तत्त्व' अनुवादक डा. नगेन्द्र, पृ. 19
48. "Webster's New World Distionary of the American Language" p. 725
College education, The World Publishing Company, New York, 1958
49. 'काव्य-विम्ब' डा. नगेन्द्र, पृ. 61

(3) रूपकात्मकता

(4) ध्वन्यात्मकता या नादात्मकता।

इन गुणों का संक्षिप्त विवेचन करना आवश्यक होगा।

(1) व्यंजकता — भाषा की लक्षणा व व्यंजना शक्ति बिम्बविधायक होती है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों में लक्षणा का चमत्कार रहता है और वे बिम्ब-निर्माण के साधन हैं। यहाँ व्यंजकता से लक्ष्य व व्यंग्य दोनों अर्थ मोटे रूप में लिये गये हैं। यदि भाषा व्यंजक होगी तो स्वतः बिम्ब-निर्माण होगा। दूसरी ओर बिम्ब से काव्य-भाषा में व्यंजकता आती है। अतः भाव का स्वशब्दों से कथन रस में विघ्न पहुँचाता है अतः भाव का बोध कराने के लिये बिम्ब ही एक मात्र साधन रह जाता है। बिम्ब से भाव की व्यंजना होती है। यद्यपि व्यंजना सदैव बिम्बात्मक नहीं होती, किंतु बिम्ब में सहायक होती है। लक्ष्यार्थ भी प्रायः बिम्ब रूप होता है, लेकिन लक्षणा व बिम्ब पर्याय नहीं हैं, जैसाकि दूसरे अध्याय में स्पष्ट किया जायगा। व्यंजकता प्रायः बिम्बविधायक होती है जैसाकि पूर्वोद्धृत निम्न उदाहरण से स्पष्ट है —

एवं वादिनि देवर्षौ[50]

यहाँ लज्जाभाव व्यंग्य है। यह व्यंग्य एक सुंदर बिम्ब का निर्माण कर रहा है। ध्वनि का यह एक प्रसिद्ध उदाहरण है।

(2) चमत्कारहीनता—बिम्ब के लिये भाषा में सरलता आवश्यक है। भाषा की चमत्कारिता और बिम्ब में विरोध है। एक की उपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व संदिग्ध है। बिम्ब, अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है, भाषा में चमत्कार आते ही, कृत्रिमता आते ही, भावानुभूति व अभिव्यक्ति में अंतर आना स्वभाविक है। जहाँ कवि बुद्धिबल से पाठक को चमत्कृत करने का प्रयत्न करता है, बिम्ब अपना अस्तित्व खो देते हैं। इसलिये अतिशयोक्तिपूर्ण उक्तियाँ केवल बुद्धि को चमत्कृत मात्र करके रह जाती हैं। अनुप्रास, श्लेष, यमक, आदि शब्दालंकार केवल बाह्य सजावट के लिये होते हैं, ये बिम्ब का कोई उपकार न करके बाधक ही सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार सादृश्य के रूप में कवि जब दूर की कौडी लाने का प्रयास करता है, श्रेष्ठ चित्र नहीं बन पाते। जहाँ पाठक को सोच-विचार करना पड़े वहीं बिम्ब की हानि समझ लेनी चाहिये। उदाहरणार्थ, सुबन्धु का वर्षावर्णन लिया जा सकता है।

एकदा तु कतिपयामासापगमे कालवीणायन इव समुद्धनिम्नगानद
सायंतनसमय इव नर्तितनीलकण्ठः समाजगाम वर्षासमयः ॥[51]

---

50 पृष्ठ 12

51 'वासवदत्ता' श्री वाणीविलास प्रेस, श्रीरंगम्, 1906, पृष्ठ 343

यहाँ वर्षा ऋतु का कोई स्पष्ट विम्ब नही वन पाता, ध्यान पूरी तरह से शब्दों पर ही केन्द्रित रह जाता है जिससे विम्ब मे वाधा आती है। इसे न तो दृश्य कह सकते है, न यहाँ सादृश्य ही है। मानसिक व्यायाम अवश्य है जो कवि के भाषाधिकार को सूचित करता है। इसके विपरीत वाल्मीकि का वर्षावर्णन वर्षाऋतु का स्पष्ट दृश्य पाठक के सामने उपस्थित कर देता है।[52]

अप्रस्तुत के रूप में माघ अथवा श्रीहर्ष जब सांख्य, वेदान्त, न्याय अथवा व्याकरण के शास्त्रज्ञान को काव्योपयोगी बनाने का प्रयत्न करते हैं, वहाँ चमत्कार तो उत्पन्न होता है, किन्तु मस्तिष्क की सक्रियता राग-चेतना को कुण्ठित कर देती है। कवि की शास्त्रनिष्ठ मनीषा उसकी कवि-प्रतिभा को आच्छादित कर देती है। अप्रस्तुत के रूप मे विजातीय द्रव्यों का सन्निवेश पाठक के ऐन्द्रिय वोध को क्षुब्ध कर देता है। यथा—

किमसुभिर्ग्लपितैर्जड। मन्यसे मयि निमज्जतु भीमसुताननः।
मम किल श्रुतिमाह तदर्थिकां नल मुखेन्दुपरां विवुधः स्मरः॥

नैषधः 4·52

यहाँ श्रुतिवाक्य को लेकर, दमयन्ती, जो चन्द्रमा की भर्त्सना करती है, उनमें पाण्डित्य ही प्रधान है। यह सारी योजना चमत्कार-प्रधान है किन्तु कोई विम्ब निर्माण नहीं करती, न ही अदृष्ट भाव दमयन्ती के विरह की तीव्रता को व्यंजित करने में सहायक हो पाती है।

ऐसे उदाहरण प्रत्येक साहित्य में प्राप्त हो जाते है। "नैषधकार यदि दमयन्ती के वर्णन में समस्त दर्शन शास्त्रों को घसीट लाते हैं, तो विहारी को प्रिय पर केन्द्रित दृष्टि कुतुबनुमा सी लगती है। भूगोल, इतिहास, दर्शन, कला, विज्ञान, सभी क्षेत्रों का कोना-कोना ये कवि झाँक आये है।

नरस काव्य मे भाषागत क्रीड़ा की आलोचना संस्कृत आलोचकों ने भी की है। आनन्दवर्धन शृंगार आदि रस के निवन्धन में यमकादि शब्दालंकार की कड़ी भर्त्सना करते हैं।[53] 'ध्वनि' काव्य में स्वीकृत अलंकार के सम्बन्ध में उन्होंने जो कहा है, वही यहाँ विम्ब के सम्बन्ध में भी सही है—

रसाक्षिप्ततया यस्य वन्धश्शक्यक्रियो भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सो ऽलंकारो ध्वनौ मतः॥

ध्वन्यालोक 2·16

---

52 यथा—नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रति भाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी॥ —'वाल्मीकिरामायणम्'

53 यथा—'ध्वन्यात्मभूते शृंगारे यमकादिनिवन्धनम्।
शक्तावपि प्रमादित्वं विप्रलम्भे विशेषतः॥' —ध्वन्यालोक 2·15

जो अलंकार बिना प्रयत्न के सहज रूप में आते हों वही बिम्ब के अवरोधी हो सकते हैं।

शृंगारस्यांगिनो यत्नादेकरूपानुबन्धनात् ।
सर्वेष्वेव प्रभेदेषु नानुप्रासः प्रकाशकः ॥

ध्वन्यालोक 2 14

अनुप्रास की रचना में समान रूप शब्दों के अनुसन्धान करने में अधिक प्रयास का होना स्वाभाविक है। शब्द-विन्यास में ही कवि का ध्यान आकृष्ट हो जाने से बिम्ब में अनुप्रास उपकारक नहीं होता। सी डे लेविस मानते हैं कि कविता की भाषा स्वाभाविक होनी चाहिये। वाल्मीकि की कविता में जो बिम्बों की प्रधानता है, उसका एक कारण उनकी सहज भाषा है। स्पष्ट है कि बिम्ब के लिये सरल व स्वाभाविक भाषा की आवश्यकता है, चमत्कार-प्रधान नहीं।

रूपकात्मकता—

रूपकात्मकता बिम्ब की चित्रात्मकता में अभिवृद्धि का प्रमुख उपादान है। सी डे लेविस ने बिम्ब की परिभाषा में कहा है कि प्रत्येक बिम्ब कुछ सीमा तक रूपकात्मक होता है। यहाँ तक कि पाश्चात्य आलोचना में मेटाफर (रूपक) को बहुधा बिम्ब के पर्याय के रूप में प्रयोग किया गया है। मेटाफर संस्कृत के रूपक अलंकार से व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ भी केवल रूपक अलंकार में नहीं अपितु आरोपण की प्रवृत्ति से अभिप्राय लिया गया है। इसमें रूपक, समासोक्ति, मानवीकरण आदि अलंकारों, उपचार-वक्रता आदि का समावेश हो सकता है। आरोपण द्वारा ही अमूर्त वस्तु को बिम्ब रूपायित करता है। अचेतन पदार्थ पर एक चेतन धर्म का आरोप ही विषय को सजीव बना देता है जैसे 'गगनं च मत्तमेघम्' में 'मेघों' को 'मत्त' कहना अथवा 'खं प्रसुप्तमिव संस्थिते खौ' में आकाश को 'सोता हुआ' कहना। कालिदास और बाणभट्ट के बिम्बात्मक प्राकृतिक वर्णन रूपकात्मकता पर आधारित हैं। बाणभट्ट के सन्ध्यावर्णन में एक अंश द्रष्टव्य है—

'अचिरप्रोषिते सवितरि कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी हंससितदुकूल परिधाना मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्'।

यहाँ प्रकृति पर मानव भावों का आरोप बिम्ब का साधन बना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा की, रूपकात्मकता बिम्ब निर्माण में सहयोगी होती है। एजरा पाउण्ड एवं सिटवेल आदि विद्वान तथ्यों के सटीक उपस्थापन में ही बिम्ब की इतिश्री मानते हैं। वे रूपकात्मकता की बिम्ब में अपेक्षा नहीं रखते किन्तु हमारे मत से इस प्रकार बिम्ब का क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो जाएगा।

ध्वन्यात्मकता—

बिम्ब विधान के लिये भाषा की ध्वन्यात्मक शक्ति का बड़ा महत्त्व है। अनुभूति व अभिव्यक्ति मूलतः भिन्न नहीं हैं। कवि का अनुभूत सत्य शब्दों के माध्यम से ही अभिव्यक्त होकर सहृदयों के हृदय की सम्पत्ति बनता है। अभिव्यक्ति की

सफलता शब्दों की ध्वनन-शक्ति पर पर्याप्त सीमा तक निर्भर है। शब्द एक ओर तो अर्थ की प्रतीति करा कर वस्तु अथवा भाव का बिम्ब मानस नेत्रों के सम्मुख जगाते हैं दूसरी ओर अपनी ध्वनि से अर्थ को मुखर करके एक ध्वनि चित्र भी उतार देते है। 'कविता की भाषा के शब्द सस्वर होने चाहिये'[54] कथन में पन्तजी ने भाषा की प्रस्तुत विशेषता की ओर ही इंगित किया है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में रस के सन्दर्भ में वर्णसंघटना का जो महत्त्व बताया है, बिम्ब के सम्बन्ध मे भी वह पूर्ण-रूपेण लागू होता है। आचार्यो ने रस के प्रतिकूल वर्णों की योजना को दोषों के अन्दर रखकर शब्दों की अनुरणनात्मक शक्ति में अपना विश्वास प्रकट किया है। संस्कृत कवियो ने अनुरणनात्मक ध्वनियो से ही वातावरण को सम्मूर्तित किया है। ध्वनिचित्रो की रचना मे भवभूति सिद्धहस्त है। उदाहरण के लिये 'उत्तररामचरित' के निम्नलिखित पद्य मे पर्वत की कन्दराओं मे गद्‌गद् करती गोदावरी नदी तथा परस्पर टक्कर खाने मे उछलती हुई तरंगो का बिम्ब तदनुकूल वर्णों के नियोजन मे ही स्पष्ट हो गया है—

एते ते कुहरेषु गद्‌गद्‌नदद्‌गोदावरी वारयो,
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतोदाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सगमाः॥

यहाँ ध्वनियो की सहायता से निर्मित वातावरण का अनुभव बिना अर्थबोध के भी किया जा सकता है। भाषा की रसमयता बिम्ब-योजना पर आधारित होती है। जो बिम्ब श्रुति-संवेदना को इन्द्रिय गोचर कराने वाले होते है उनकी भाषा में ध्वन्यात्मकता प्रायः आवश्यक होती है। एक और उदाहरण—

रामाभिषेके मदविह्वलाया :
हस्तच्युतो हेमघटस्तरुण्या :।
सोपानमार्गे प्रकरोति शब्दं
टंठंठ ठंठः टठठंठ ठंठ :

हनुमन्नाटक 3·31

यहाँ अन्तिम पंक्ति की नाद-योजना एका-एक सीढ़ी से लुढ़कते कलश एवं उसकी अवाज को आंखो व कानो के लिए प्रत्यक्ष कर देती है। नाद-बिम्बों के सम्बन्ध में यह तथ्य आगे और अधिक स्पष्ट किया जाएगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा की रसमयता, रूपकात्मकता, व्यंजकता, सहजता व नाद-गुण बिम्ब-विधान में सहायक होते हैं।

---

54 द्रष्टव्य—'पल्लव' की भूमिका पृष्ट 17

बिम्ब के गुण

बिम्ब का काव्य की सफलता में अपरिहार्य योग रहता है। यह काव्य का अनिवार्य तत्त्व है। काव्य में इसका यह विशिष्ट महत्त्व इसके अनेक गुणों के कारण है। सहृदय को आकर्षित करने का कारण बिम्ब के वे वैशिष्ट्य हैं जो अन्य किसी उपकरण में प्राप्त नहीं। बिम्ब के सुप्रसिद्ध पक्षधर सी० डे० लेविस ने बिम्ब में कुछ गुण माने हैं जो निम्नलिखित हैं—

(1) उद्बोधनशीलता (Evocativeness)
(2) तीव्रघनता (Intensity)
(3) नवीनता व ताजगी (Novelty & freshness)
(4) परिचितता (Familiarity)
(5) उर्वरता (Fertility)
(6) औचित्य (Congruity)

बिम्ब का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिये इन गुणों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक होगा।

उद्बोधनशीलता

मानवीय भावनाएं स्थायी भावों के रूप में मानव मात्र के हृदय में सुप्त पड़ी रहती हैं। बिम्ब में सहृदय की इन सुप्त भावनाओं को जागृत करने की सामर्थ्य होनी चाहिये। कवि अपनी कल्पनात्मक अनुभूति का मूर्तिमान् वर्णन करके हमें हठात् उत्तेजित कर सकता है। भाव को उद्बुद्ध करने के लिये किसी नवीन उपमान को भी साधन बनाया जा सकता है और कोई सुंदर प्रस्तुत वर्णन भी भावक को प्रभावित कर सकता है। 'कादम्बरी' में जब बाणभट्ट जाबालि ऋषि के आश्रम का वर्णन करते हैं तो पाठक मानो आश्रम के पवित्र वातावरण से अभिभूत से हो जाते हैं। यह उनके बिम्बात्मक वर्णन का ही परिणाम है कि पाठक की पवित्र भावनाएं उदबुद्ध होकर उसकी चेतना पर छा जाती हैं। लेविस का मानना है कि 'बिम्ब की उदबोधनशीलता की शक्ति हमारे काव्यात्मक संवेगों को उत्तेजित करती है। इसके लिये (उपमान की) नवीनता अनिवार्य नहीं है।'[55] वे इस गुण को व्यक्ति-सापेक्ष भी मानते हैं अर्थात् एक ही बिम्ब एक व्यक्ति का भाव के प्रति अधिक संवेदनशील कर सकता है दूसरे को नहीं'।[56] किन्तु भावोत्तेजकता को कुछ

---

55 "Evocativeness is the power of an image to provoke from us a response to the poetic passion An image need not be novel to do this, there are well-worn words such as moon, rose, hills etc"

—The Poetic Image, p 40

56 "For Evocative power, then, there is only the individual subjective test"—Ibid

सीमा तक ही व्यक्ति-सापेक्ष माना जा सकता है। वास्तव में वह वस्तु-सापेक्ष ही है। अर्थात् स्वयं बिम्ब मे ही भाव-जागरण की शक्ति निहित रहती है।

सघनता—सफल बिम्ब भाव की तीव्रता को सघन रूप मे प्रस्तुत करता है। भावों को तीव्रतर रूप मे प्रस्तुत करने के लिये यह आवश्यक है कि वह बिम्ब द्वारा कम से कम शब्दों में व्यक्त किये जाएं क्योंकि संक्षिप्तता सदैव भाव को तीव्रता के साथ प्रस्तुत करती है। संक्षिप्तता का अर्थ है काव्य के अधिक से अधिक भाव को कम से कम शब्दो मे प्रकट करना, जिसे संस्कृत आलोचको ने अर्थगौरव कहा है। लेविस सघन बिम्ब को प्रतीक का विलोम मानते है क्योंकि प्रतीक केवल सांकेतिक अर्थ मात्र को प्रकट करता है[57]। 'संवेगो की घनता बिम्ब का अविच्छेद्य गुण है। अप्रस्तुत-योजना मे जहां संवेगों की घनता समाविष्ट होती है, वहां बिम्बों की स्वत: सृष्टि होती जाती है।' उदाहरणार्थ, भारवि के निम्न श्लोक मे —

> कथा-प्रसंगेन जनैरुदाहृता—
> दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
> तवाभिधानाद्व्यथते नताननः
> स दुःसहान्मंत्रपदादिवोरगः॥

(किरात. 1·24)

यहां पाण्डवो के पराक्रम से व्यथित दुर्योधन की बेचैनी मंत्र से वशीभूत किये गये सर्प के बिम्ब से बड़ी सघनता के साथ प्रस्तुत की गई है, जो भाव की तीव्रता के साथ प्रस्तुत कर रही है। सादृश्य-गर्भ अप्रस्तुतविधान के अतिरिक्त लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा भी भाव संक्षिप्त रूप में तीव्रता के साथ प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यथा—'पेट मे सुइयां सी चुभ रही हैं' 'उसका माथा ठनका' आदि प्रयोगो मे यह सघनता देखी जा सकती है।

नवीनता व ताजगी—बिम्ब-विधान के सन्दर्भ में नवीता व मौलिकता का प्रश्न प्रायः उठता है। परम्परागत उपमान व बिम्ब प्रयुक्त होते-होते इतने रूढ़ हो जाते हैं कि उनका प्रभाव जाता रहता है और वे पाठक के मन में कोई प्रतिभा उपस्थित नहीं कर पाते। वे केवल निष्प्राण अप्रस्तुत-योजना मात्र बनकर रह जाते हैं अतः बिम्ब नहीं कहे जा सकते। कमल, चन्द्र, मीन मृग, हंस आदि उपमान वाल्मीकि से अब तक निरन्तर प्रयुक्त होते-होते अपना बिम्बात्मक रूप खो चुके है। कविता में इन अप्रस्तुतों को पढ़ते है तो केवल अर्थबोध मात्र होता है, चित्र सामने

57. "By intensity, we mean, I presume, the concentration of the greatest possible amount of significance into a small space ....An intense image is the opposite of a symbol' 'The poetic Image',p 40

नही आता । वाल्मीकि, कालिदास आदि के काव्य मे इनका प्रयोग अवश्य बिम्ब-सृजन करने मे समर्थ रहा होगा, लेकिन बाद के साहित्य मे आवृत्त होते-होते अब ये उपमान इतने रूढ हो चुके हैं कि कदाचित वाल्मीकि के काव्य मे भी सम्मुनन नहीं करा पाते । उदाहरण के लिये तुलसीदास जब कहते हैं—

नवकंज लोचन कंजमुख करकंज पद कंजारुणम् ।

तो कमल संवेदना-हीन हो जाता है। अत रूढ उपमानो और उन पर आश्रित बिम्बो का परित्याग कर मौलिक बिम्ब ही अपेक्षित प्रभाव के लिए अपनाने चाहिये । या फिर, पुराने उपमानो का प्रयोग नए ढग से करके अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है ।

नवीनता का यह प्रश्न प्राचीन काल से ही साहित्यकारो के सामने रहा है । अथर्ववेद के एक सूक्त म परमात्मा के काव्य की नव्यता का सकेत इन शब्दो म किया गया है—"पश्य देवस्य काव्य न जीयति न ममार' । कालीदास ने 'पुराण-मित्येव न साधु सर्वम' उक्ति से नाट्यरूढियो एव काव्यरूढियो के प्रति मानो आवाज उठाई थी । माघ ने 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया से इसी नव्यता पर बल दिया है । हिन्दी म रीतिकालीन कवि ठाकुर ने रूढ उपमानो की निन्दा करते हुए कहा था—

सीखि लीनो मीन मृग-खजन कमल नैन,
सीखि लीनो यश औ प्रताप को कहानो है ।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि
सीखि लीनो मेरु औ कुबेर गिरि आनो है ।
ठाकुर कहत याकी बडी है कठिन बात
याको नहीं भूलि कहू बाधियत बानो है ।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है ।

आधुनिक हिन्दी और अग्रेजी साहित्य मे तो नवीनता के प्रति जैसे आन्दोलन सा छिडा हुआ है । जैसाकि अज्ञेय की निम्नलिखित पक्तियो मे ज्ञात होता है ।

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नही कहता,
या शरद के भोर की नीहार न्हाई कुई
टटकी कली चम्पे की वगैरह तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है ।

बल्कि केवल यही—
ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।
अगर मैं कहूँ—
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलकी छरहरे बाजरे की।[58] आदि

प्राचीन उपमानों और बिम्बों का अतिपरिचय तथा अतिप्रयोग के कारण तिरस्कार और नए बिम्बों के प्रति आग्रह का यह तर्क सर्वथा उचित है। किन्तु नवीनता के प्रति आग्रह के साथ चारुत्त्व का भी ध्यान रखना आवश्यक है। नवीन वस्तुओं के साथ प्रमाता की चित्तवृत्ति का रागात्मक सम्बन्ध होना भी आवश्यक है। नवीन वैज्ञानिक आविष्कार, याँत्रिक उपकरण आदि बहुत समय के बाद ही समाज की रागात्मक वृत्ति से जुड़ पाते हैं। अतः इनको बिम्बों का उपकरण तभी बनाना चाहिये, जब ये संस्कार रूप में समाज के अन्तर में स्थान प्राप्त कर लें। दूसरी बात यह है कि नवीन उपमान तभी बिम्बात्मक माने जा सकते हैं जब वे कवि के हृदय के आवेग से युक्त होकर आवें। उदाहरणार्थ, अज्ञेय की उपर्युक्त कविता में प्रेयसी के लिये 'बिछली घास' या 'बाजरे की कलगी' का बिम्ब नवीनता लिये हुए है। किन्तु यह उक्ति कवि की गहरी भावानुभूति से प्रेरित नहीं है अपितु एक सिद्धान्त कथन पर ही कवि का बल अधिक है, अतः यह एक सुन्दर बिम्ब नहीं है।

संस्कृत के कवि नवीन उपमानों व बिम्बों की खोज में सदा सचेष्ट रहे हैं। कवि कालिदास के काव्य में अनेक नवीन व मौलिक कल्पनाएँ ढूंढी जा सकती हैं। कवि के संवेग से युक्त होने के कारण ये कल्पनाएँ अत्यन्त सरल रूप में पाठक के सामने आती हैं। 'सञ्चारिणी दीपशिखा' अथवा 'सञ्चारिणी पल्लविनी लता' की कल्पना को दृष्टिगत रखते हुए इस तथ्य को समझा जा सकता है। दूसरी ओर माघ और श्री हर्ष की कविता में भी नवीन प्रयोग का मोह दिखाई देता है, किन्तु कवि के हृदय के आवेग का वैसा संयोग न होने के कारण वे वैचित्र्य मात्र का सृजन करके रह जाते हैं। नूतनता के लोभ में नैषधकार को आकाश के तारे 'सूर्य रूपी स्वर्णपिण्ड को बेचकर खरीदी कौड़ियाँ' प्रतीत होते हैं और मौलिकता के आवेश में चूनकर थूके गए अनार के दाने'।[59]

---

58. 'हरी घास पर क्षण भर' पृष्ठ–57।
59. श्लोक प्रस्तुत ग्रन्थ में पृष्ठ 17 पर उद्धृत किये जा चुके हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि बिम्ब की सफलता के लिये नवीन व मौलिक उपमानों का प्रयोग होना चाहिये। जीर्ण बिम्बों को भी नए ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। नवीन बिम्ब की सफलता के लिये दो बातें आवश्यक हैं—पाठक का रागात्मक तादात्म्य और कवि-हृदय का योग।[60]

परिचितता

नवीनता के साथ बिम्ब का पाठक के लिये सुपरिचित होना आवश्यक है। अपरिचित बिम्ब-योजना प्रभाव की दृष्टि से सफल नहीं हो पाती। पाठक केवल उन्हीं कल्पनाओं द्वारा भाव-ग्रहण कर सकते हैं जो उनके अपने परिचित जीवन व जगत् के हों। यह परिचितता व्यक्ति, जाति व देशसापेक्ष है। एक ही उपमान एक व्यक्ति के लिये परिचित हो सकता है, दूसरे के लिये अपरिचित। यही कारण है कि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होने पर भी भारतीयों के मानस में यूरोपीय काव्य के पढ़ने से वैसा बिम्ब ग्रहण नहीं हो पाता जैसा यूरोपवासी की कल्पना में हो सकता है। अतः कवि को चाहिये कि क्षेत्रीय वस्तुओं व दृश्यों का प्रयोग करते समय परिचितता का ध्यान रखे। उदाहरणार्थ-चौसर की निम्न पंक्तियाँ ली जा सकती हैं।

> ",He came also stille
> Where his moder was
> As dew in April
> That falleth on grass"

यहाँ 'अप्रैल में घास पर गिरती ओस' भारतवासी के लिये अपरिचित होने के कारण अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाती।

उर्वरता

एक सफल बिम्ब उद्दिष्ट भाव को तो व्यक्त करता ही है अपने पीछे एक दीर्घ भाव-परम्परा भी छोड़ जाता है जो पाठक के मन में एक दीर्घ विचार-परम्परा को अनुरणित करता रहता है। इसे बिम्ब की उर्वरता कहा जा सकता है। सी० डे० लेविस ने बिम्ब की इस विशेषता को 'आइडेसिटी' शब्द से अभिहित किया है। उनके अनुसार बिम्ब की गूंज शान्त सरोवर में फेंके गये पत्थर की

---

60 Any one can vamp up a novel image, but unless his eye is penetrating, and unless his heart in it the image will be as shoddy, as one of those distressing 'novelties' we used to see in the shops at Christmas tide.' —The poetic Image p 45

भाँति एक के बाद एक नया भाव-चक्र प्रस्तुत करती है, और उसके अन्तिम बिन्दु का ज्ञान भी नहीं हो पाता।[61] हम बिम्ब से होने वाले भावबोध की तुलना यहाँ मूलध्वनि' एवं उर्वरता की तुलना 'अनुध्वनि' से कर सकते है। उर्वरता के लिये बिम्ब का सुगठित, सांकेतिक व व्यंजक होना आवश्यक है। स्पष्टता के लिये हिन्दी कवि निराला की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है।—

मैं अकेला,
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्यवेला। (अपरा पृ. 55)

यहाँ 'सान्ध्यवेला' का बिम्ब जीवनान्त की निराशा, निष्प्रभता, निर्बलता आदि अनेक भावों को अभिव्यक्त करता है और पाठक की चेतना में मूलभाव को देर तक प्रलम्बित रखने में सहायक है।

औचित्य

यों तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे औचित्य की आवश्यकता है किन्तु बिम्ब के सन्दर्भ में औचित्य एक अत्यन्त आवश्यक गुण है। क्षेमेन्द्र ने तो औचित्य को ही रस सिद्धि काव्य का एक मात्र मानदण्ड स्वीकार किया है।

अलंकारास्त्वलंकारा गुणा एव गुणा : सदा।
औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥

'औचित्यविचारचर्चा' कारिका—5

औचित्य के अभाव में बिम्ब कभी सफल नहीं हो सकता। लेविस के अनुसार बिम्ब के अन्य गुणों की उपेक्षा भले ही करदें, औचित्य की अवहेलना नहीं की जा सकती। औचित्य भावों के साथ संगति एवं काव्य-रूप के साथ सन्तुलन दोनों रूपों में आवश्यक है'।[62] बिम्ब के अन्य गुण नवीनता, संक्षिप्तता परिचितता आदि में भी संतुलन रखने के लिये औचित्य ही कसौटी मानी जा सकती है। बाणभट्ट सरीखे महाकवि अनौचित्य की भूल कर बैठते हैं। हर्षवर्धन के अंगरक्षक

---

61. "Like a pebble dropped in a pool, sends out ring after ring of meaning, and our perception can not tell us at what point they quite disappear,,.

'The Poetic Image' page 44

62. "If there is any essential in imagery, it is not boldness or intensity, but congruity—that the image should be congruous with the passionate argument and also with the form of the poem." —Ibid, page 46.

का सजीव व मूर्त वर्णन करते हुए वे कहते हैं—'वामेतरकिसलयेन कम्पना कृपाणम्'। यहाँ निश्चल तलवार उठाए हुए महाप्रतीहार के कर को 'किसलय' कहना नितान्त अनुचित है। किसलय काँपता रहता है तथा कोमल होता है। पदलालित्य पर ध्यान टिका देने से कवि से यह भूल हुई है और बिम्ब बनते-बनते खण्डित हो जाता है। औचित्य के अभाव में सुन्दर से सुन्दर बिम्ब अपना आकर्षण खो देता है। कालिदास के 'अजविलाप' में एक उदाहरण लिया जा सकता है—

प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थामथ सत्त्वविप्लवात्।
स निनाय नितान्तवत्सलः परिगृह्योचितमंकमंगनाम्॥

(रघु 8 41)

उस अत्यन्त वत्सल राजा ने मृतपत्नी (इन्दुमती) को उठाकर गोद में उसी प्रकार रख लिया जैसे तार मिलाने के समय वीणा रख ली जाती है। यहाँ कल्पना बड़ी मौलिक है, चाक्षुष भी, बिम्बात्मकता भी पर्याप्त है, किन्तु प्रस्तुत करुण-जनित विप्रलम्भ शृंगार के प्रसंग में कुछ बेमेल सी प्रतीत होती है। 'कवि की संभोग शृंगार की भीतरी वासना, उसके संगीत-प्रेम में मिलकर, प्रस्तुत श्लोक में इतनी उभर आई है कि पूरा चित्र ही कुछ असंगत अनमेल सा भासित होता है। विलाप के साथ ऐन्द्रिय गंधवाली गोद और वीणा' का संयोग सुरुचिपूर्ण नहीं कहा जायेगा'।[63] इस प्रकार हम देखते हैं कि अनौचित्य सुन्दर कल्पना को नष्ट कर सकता है।

बिम्ब के गुणों का उपर्युक्त विभाजन तात्त्विक दृष्टि से ही है। बिम्ब की सफलता को किसी एक गुण के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता, न ही किसी एक गुण को आवश्यक और अन्य को अनावश्यक कहा जा सकता है। इन गुणों के विवेचन के प्रकाश में बिम्ब का स्वरूप और स्पष्ट होकर हमारे समक्ष आता है।

बिम्ब की उपयोगिता व कार्य

बिम्ब का मुख्य व्यापार है किसी वस्तु भाव या विचार को इन्द्रिय-गोचर बनाना। बिम्ब के इस प्रमुख व्यापार के साथ ही काव्य में बिम्ब की उपयोगिता कुछ अन्य रूपों में भी देखी जा सकती है। काव्य में बिम्ब का महत्त्व उसके निम्नलिखित कार्यों के कारण है।

(1) काव्यार्थ को पूर्णतया स्पष्ट करना

रूप विधान का व्यापार मुख्यतया काव्य के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हुआ करता है। किसी भी बात को समझने के लिये हम उसे कल्पना में प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करते हैं। कवि भी अपने गूढ़ व क्लिष्ट विचारों को अप्रस्तुत

63 'महाकवि कालिदास' रमाशंकर तिवारी, पृ 343

वस्तुओं के माध्यम से पाठक की कल्पना में प्रत्यक्ष कराने का प्रयत्न करता है जिससे पाठक के लिये वे सहजग्राह्य हो सकें। लुईस मैकनीस बिम्ब को अर्थ स्पष्ट करने का सशक्त माध्यम स्वीकार करते हैं।[64] विचार-प्रधान काव्यों में अर्थ को सरल करने के लिये बिम्ब अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। 'गीता' के द्वितीय अध्याय में जब कवि विषयों से इन्द्रियों को विरक्त रखने की बात करता है, तब कुछ अस्पष्ट सा ही रहता है। किन्तु 'कूर्मोऽ ङ्गानीव सर्वशः' कहते ही सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार विषयासक्त इन्द्रियों का अनुसरण करने वाले मन द्वारा विवेक-हरण की बात जब इन्द्रिय-गम्य बनाकर प्रस्तुत की जाती है—'वायुवेग से मार्गच्युत हुई नौका'।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽ नुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

तो कोमल मति छात्र को भी बात आसानी से गले उतरती जान पड़ती है। ये बिम्ब दार्शनिक काव्य में नखलिस्तान से जान पड़ते हैं। दर्शन की बात करते-करते व्यास अचानक कवि हो जाते हैं और ध्वनियों तथा बिम्बों में बात करने लगते हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

प्रस्तुत श्लोक को आनन्दवर्धन ने 'अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि' के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। वास्तव में यहाँ एक दैनन्दिन व्यवहार की मूर्त घटना से गहन विचारों को बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'रात्रि में सोना' व 'दिन में जागना' जन-सामान्य के संवेद्य विषय हैं। ज्ञानी का 'रात्रि में जागना' व 'दिन में सोना, उनकी सांसारिक ऐश्वर्य से पराङ्मुखता के द्योतक हैं और अर्थ को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त हुए हैं।

(2) काव्य की शोभा में वृद्धि करना

सादृश्यमूलक अलंकारों का एक बड़ा भाग बिम्ब में अन्तर्भुक्त हो जाता है। बिम्ब के लिये मेटाफर शब्द का प्रयोग बराबर होता रहता है। अतः अलंकार के रूप में बिम्ब काव्यार्थ की शोभा में वृद्धि करता है। अलंकार काव्य में शोभा के साधन माने गये हैं। 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकरान् प्रचक्षते' एवं अलंकरोतीति अलंकारः'। बिम्ब भी काव्य को अलंकृत करता है। भेद यह है कि अलंकार की भाँति बिम्ब काव्य की बाह्य शोभा के कारण मात्र नहीं हैं, वे उसकी आन्तरिक सज्जा के साधन हैं। सामान्य कथन बिम्ब-विभूषित होने से

---

64. "But often the image, as in Dante, is there to clarify or run, home the meaning"—Louis Macneice 'Modern Poetry' p-90.

विशेष मनोहर हो जाता है। बिम्ब अलंकार के रूप में कथन की ललित भंगिमा है। बिम्बों की इन्द्रधनुषी आभा काव्य में रंगों की छाया के समान आभासित होती है। संस्कृत कवियों का बिम्ब-विधान प्राय शोभाकारी रूप में मिलता है। उदाहरण के लिये कुमारसंभव के अष्टम सर्ग से सन्ध्या का वर्णन लिया जा सकता है। बिम्ब-विधान के कारण वर्णन में अपूर्व सौन्दर्य आ गया है।

(3) भावों को सम्प्रेषित एवं उत्तेजित करना

भाव को सम्प्रेषित करने में बिम्ब की प्रमुख भूमिका रहती है। कवि अपने अन्तस की तीव्र भावानुभूति को पाठक तक सम्प्रेषित करने के लिये व्याकुल रहता है। इसी छटपटाहट की स्थिति में वह बिम्ब-सृष्टि करता है। इसीलिये विश्व का श्रेष्ठ काव्य बिम्ब-प्रधान है। लेविस ने इसीलिये बिम्ब को दर्पण रूप कहा है, जिसमें वस्तु-वर्णन के साथ-साथ कवि के भावों का प्रतिबिम्ब भी पड़ता जाता है।[65] कबीर आध्यात्मिक साधना के लिए निर्वेद की भावना जागृत करने के लिये कहते हैं—

कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लकुटिया हाथ।
जो घर जारै आपना, चलै हमारे साथ॥

यहाँ 'लकुटिया' की कल्पना निर्वेद भाव को तीव्र कर देती है।

(4) वस्तु, घटना या भावों को प्रत्यक्ष करना

बिम्ब का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्मूर्तन व्यापार है। वह इन्द्रियगम्यता द्वारा किसी भी घटना या वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने लाकर प्रभावित करता है। चरित्र चित्रण में पात्रों का व्यक्तित्व चित्रात्मक वर्णन में ही हमारे समक्ष आता है। यथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के 'ग्रीवाभंगाभिरामं' आदि पद्य में भयभीत मृग दौड़ने की घटना हमारे सामने प्रत्यक्ष कराई गई है। 'कुमारसंभव' में निम्नलिखित श्लोक द्वारा स्पष्ट तपस्या-निरत पार्वती की निश्चल स्थिति व उनकी शारीरिक रेखाएँ मानस में स्पष्ट उभरने लगती हैं —

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः
पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे
चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः॥ (5 24)

यहाँ वर्षा की बूँदों के बिम्बात्मक वर्णन से ही पार्वती की सुन्दर शरीर-रचना एवं निश्चल समाधिगत अवस्था प्रत्यक्ष हो जाती है।

कालिदास तो अमूर्त से अमूर्त भाव को प्रत्यक्ष करने की क्षमता रखते हैं। दुष्यन्त की राजसभा में शकुन्तला के उपस्थित होने पर दुष्यन्त द्वारा उनको

---

1 'The Poetic Image', P 80

न पहचान पाना और अंगूठी-प्राप्ति से उसको यकायक पहचान जाने की स्थिति बड़ी विचित्र है। स्वयं दुष्यन्त अपनी इस मनःस्थिति को नहीं समझ पाते। इस असाधारण मनःस्थिति को प्रत्यक्ष कराने के लिये कवि अपने कल्पनागार से चाक्षुप व्यापार ढूंढ लाते हैं— क्षुण

यथा गजो नेति समक्षरूपे
तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात्।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्प्रतीति-
स्तथाविधो मे मनसो विकारः॥ (अभि. 7.31)

हाथी का समक्ष उपस्थित होना, गुजर जाने पर संशय होना, पदचिह्नों को देखकर विश्वास हो जाना एक चाक्षुप व्यापार है जो दुष्यन्त की अमूर्त मानसिक अवस्था को प्रत्यक्ष कर देता है।

(5) बाहरी जगत से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना

बिम्ब वस्तुजगत् से कवि के भावनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करने का साधन है। कवि स्वभावतः अधिक संवेदनशील एवं भावुक प्रकृति का प्राणी होता है। प्रकृति से उसका सम्बन्ध साधारण मनुष्य की अपेक्षा अधिक प्रगाढ़ होता है। प्रकृति-प्रेमी कवि काव्य से प्रकृति-वर्णन के साथ निजी जीवन में भी प्रकृति से मुग्ध होता है। उसका यही रागात्मक सम्बन्ध बिम्बों में अभिव्यक्त होता है। इससे पाठक के हृदय में भी जगत् की इन वस्तुओं से भावनात्मक सम्बन्ध जुड़ जाता है। जब कवि कहता है—

मेघमय आसमान से उत्तर रही है
वह सन्ध्या—सुन्दरी
परी सी, धीरे धीरे धीरे (निराला)

तो पाठक के मन में भी सन्ध्या के साथ एक रागात्मक सम्बन्ध-सा जुड़ जाता है। लेविस ने इस सम्बन्ध को 'त्रिकोणात्मक' कहा है, जिसका एक छोर कवि है, दूसरा प्रस्तुत व तीसरा पाठक। कालिदास 'मानवीकरण' द्वारा लता वृक्षों तक को मानव के सम्बन्धी के रूप में देखते हैं एवं प्रकृति के जड़ उपादानों में चेतना का संचार करके मानव-हृदय से उसका अटूट सम्बन्ध स्थापित करते चलते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बिम्ब काव्य में अत्यन्त उपयोगी है। वह काव्यार्थ को स्पष्ट करता है, रूपकात्मकता द्वारा काव्य की सज्जा करता है, उचित विशेषणों व क्रियाओं द्वारा भावों को उत्तेजित करता है, प्रत्यक्ष बिम्ब-विधान द्वारा घटनाओं व व्यक्तियों का चित्र प्रस्तुत करता है एवं मानवीकरण द्वारा बाह्य जगत् से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है।

बिम्ब की स्थिति

बिम्ब की स्थिति काव्य मे कहाँ रहती है, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जैसे कुन्तक ने वक्रोक्ति को वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक व्याप्त माना है उसी प्रकार बिम्ब की स्थिति प्रबंध से लेकर काव्य की छोटी से छोटी इकाई वर्ण तक मे हो सकती है। प्रबन्ध-बिम्ब अन्योक्ति रूप मे लिखी गई रचनाओं म देखा जा सकता है। प्रकरण-बिम्ब कुन्तक की प्रकरण वक्रता के समकक्ष है। जैसे 'रघुवश' म कल्पित 'रघु' और 'कौत्स' का प्रकरण तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' म 'दुर्वासा के शाप' का प्रकरण। डा नगेन्द्र के शब्दो म घटना-बिम्बो से प्रकरण बिम्बो का निर्माण होता है। 'अभिज्ञान' मे दुर्वासा का शाप एक प्रकरण है जिसमे दुर्वासा का भिक्षा के लिये आना, शकुन्तला की विरहमूढ दशा और उसके कारण दुर्वासा की उपेक्षा, दुर्वासा का शाप, सखी द्वारा अनुनय, शाप मुक्ति का उपदेश आदि घटनाए समवेत हैं। इनमे से प्रत्येक घटना किसी न किसी अनुभूति का बिम्ब है और इनसे निर्मित 'दुर्वासा-शाप' एक - सश्लिष्ट 'प्रकरण बिम्ब'।[66] मुख्य रूप से बिम्ब की स्थिति काव्य मे वाक्य तथा वाक्याश के अन्तर्गत ही देखी जा सकती है।

वाक्य मे स्थिति—जहाँ कवि कविता मे एक सगठित बिम्ब देता है वहा बिम्ब की स्थिति किसी एक या अनेक वाक्यो मे हो सकती है। सागरूपक के रूप मे प्राय बिम्ब वाक्य मे ही स्थित रहते हैं, पदो म नही। ऐसे स्थनो पर वाक्य म प्रयुक्त सज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि सभी मिलकर एक सम्पूर्ण बिम्ब बनाते हैं। यथा भारवि के निम्नलिखित पद्य मे—

> विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसहारजिह्मम्
>
> शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।
>
> रिपुतिमिरमुदस्योदीयमान दिनादौ
>
> दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वा समभ्येतु भूय ॥ (किरात 1 46)

यहाँ युधिष्ठिर के 'अभ्युदय' के लिये निशा-समाप्ति पर उदित होते हुए सूर्य का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है इसमे 'विधिसमय' आदि विशेषण 'लक्ष्मी' सज्ञा एव 'भूय समभ्येतु' आदि क्रिया सभी का महत्त्व है। ये सभी मिलकर एक पूर्ण बिम्ब की सृष्टि करते है जो पूरे वाक्य मे स्थित है।

वाक्याश मे स्थिति

बिम्ब विधान मे कभी-कभी कोई एक पद ही सम्पूर्ण वर्णन को मूर्त करने मे कारण होता है। ऐसे बिम्बो को पद-बिम्ब कह सकते है। पदभेद के आधार पर इनके कई भेद हो सकते हैं। यथा-सज्ञाबिम्ब, क्रिया-बिम्ब विशेषण- बिम्ब, क्रिया विशेषण-बिम्ब, आदि।

---

66 डा नगेन्द्र, 'काव्य-बिम्ब' पृष्ठ 14

संज्ञा बिम्ब—कभी-कभी कोई संज्ञापद इतना व्यंजक होता है कि अपने सहारे बिम्ब खड़ा कर सकता है। वैसे संज्ञा-पद क्रिया व विशेषणों की भाँति बिम्ब-पूर्ण नहीं होते। किन्तु काव्य में संज्ञाबिम्ब भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं तथा कभी-कभी एक संज्ञा ही सम्पूर्ण बिम्ब का केन्द्र रहती है। यथा—

यस्य रणान्तः पुरे करे कुर्वतो मण्डलाग्रलताम्।
रससंमुख्यपि सहसा पराङ्मुखी भवति रिपुसेना ॥

(काव्यप्रकाश उदा. श्लोक 422)

एक देशविवर्ति रूपक के उपर्युक्त उद्धरण में 'रण' के लिए 'अन्तःपुर' रूप जो उपमान प्रयुक्त हुआ है, वह अकेला (संज्ञा शब्द) ही अपनी सामर्थ्य से नायिका का पाणिग्रहण व प्रतिनायिका के पराङ्मुखी होने का अप्रस्तुत बिम्ब खड़ा करने मे समर्थ है।

क्रियाबिम्ब—क्रियाबिम्ब रचना का एक सशक्त साधन है। क्रियाओं के द्वारा मानवीकरण भी सहज ही हो जाता है एवं ऐन्द्रियता का सन्निवेश होने से सम्मूर्तन भी सहज ही हो जाता है। यथा-हिन्दी कवि जायसी ने तूफान से युक्त समुद्र के लिये कहा है, "सकल समुंद जनहु भा ठाढ़ा।" यहाँ 'ठाढ़ा' क्रिया से समुद्र में उठती अत्यन्त ऊँची-ऊँची लहरों का दृश्य भयंकर रूप में उपस्थित हो जाता है। अथवा, 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः' में अन्धकार मानो अंगों को लेप रहा है, आकाश मानो काजल की वर्षा कर रहा है, इस वाक्य में 'लिम्पतीव' व 'वर्षतीव' ये दोनों क्रियाएं ही अंधकार की सघनता को मूर्त रूप देने में समर्थ हुई हैं। इसी प्रकार —

किंशुकव्यपदेशेन तरुमारुह्य सर्वतः।
दग्धा दग्धामरण्यानीं पश्यतीव विभावसुः ॥

(चित्रमीमांसा, पृ. 342)

दावानल के वर्णन में अग्नि को, किंशुक फूलों के रूप में, मानों वृक्ष पर चढ़कर जलते हुए जंगल को देखते हुए बताया गया है। इस वर्णन में 'पश्यतीव' क्रिया का बिम्ब-निर्माण में प्रमुख योग है। 'जलना देखने' की क्रिया की कल्पना ने ही किंशुकों से व्याप्त वृक्ष को प्रत्यक्ष कर दिया गया है।

विशेषण बिम्ब—विशेषण बिम्ब-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विशेषण शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि संवेदनाओं की सशक्त व्यंजना कर सकते हैं। विशेषण, जो बिम्बगुण से युक्त होते हैं, वस्तु को प्रत्यक्ष करते हैं, जो काम पूरा वाक्य नहीं कर सकता, अकेला विशेषण कर सकता है। यथा—

तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ॥

(कु. 3·10)

यहाँ 'कुसुमायुध' तथा 'पिनाकपाणेः' दोनों विशेषण सचित्र हैं जो कामदेव और शंकर के शक्ति वैषम्य को प्रत्यक्ष करने में समर्थ है तथा कामदेव के विश्व-विजय रूप आत्म-विकत्थन की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति करते हैं।

क्रिया-विशेषण भी बिम्ब निर्माण का सक्षम साधन है। गतिबिम्बों में प्राय क्रिया-विशेषणों का ही चमत्कार रहता है किन्तु क्रिया-विशेषण क्रिया सापेक्ष होकर ही बिम्ब बनाते हैं। यथा—

मन्द-मन्द नुदति पवनश्चानुकूलोयथा त्वा
वामश्चाय नदति मधुर चातकस्ते सगन्ध ।

(मेघदूत—पू 10)

'पवन तुमको धीरे-धीरे प्रेरित कर रहा है, चातक, तुम्हारा साथी मधुर शब्द कर रहा है।' यहाँ 'नुदति' व 'नदति' क्रियाओं के विशेषण 'मन्दमन्द' व 'मधुर' क्रमश स्पर्श व श्रुति-सवेदना को मूर्त करते हैं।

इसी प्रकार कहीं-कहीं सर्वनाम, लिंग आदि भी बिम्ब-विधायक होते है। दूसरे अध्याय मे वक्रोक्ति विवेचन म यह विषय और स्पष्ट किया जायेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिम्ब की स्थिति वर्ण से लेकर प्रबन्ध-तक मानी जा सकती है।

बिम्ब का वर्गीकरण

विद्वानो ने बिम्बों के विभाजन के अनेक प्रयास किये हैं। अंग्रेजी आलोचना मे राबिन स्केल्टन का वर्गीकरण प्रसिद्ध है। उन्होंने बिम्बो को दस भागो मे विभाजित किया है—(1) साधारण बिम्ब (2) अमूर्त विधान (3) तात्कालिक बिम्ब (4) अस्पष्ट बिम्ब (5) निष्काय बिम्ब (6) मिश्रित बिम्ब (7) सश्लिष्ट बिम्ब (8) मिश्रित निष्काय बिम्ब (9) सश्लिष्ट बिम्ब (10) निष्काय सश्लिष्ट एव मिश्रित निष्काय बिम्ब।[67] यह विभाजन बडा अस्पष्ट है। डॉ नगेन्द्र बिम्बों को पाच वर्गों मे बाँटते है।[68] वास्तव मे किसी भी वर्गीकरण को पूर्ण नहीं माना जा सकता।

आलोच्य कवि के बिम्ब-विधान को दृष्टि मे रखते हुए अध्ययन की सुविधा-हेतु उनका वर्गीकरण कर लेना ही उपयुक्त रहता है। बिम्बो को किन्हीं निश्चित विभाजन रेखाओं मे नही रखा जा सकता, वे एक दूसरे की सीमा म प्रविष्ट होते रहते है जैसाकि सी डे. लेविस ने राबिन स्केल्टन के वर्गीकरण पर टिप्पणी करते हुए लिखा है 'आखिरकार बिम्ब काव्य-रचना के लिये खोजे जाते हैं किसी अमेरिकन प्रोफसर के (वर्गीकरण के) सुभीते के लिये नही।'[69]

---

67. Robin Skelton 'The Poetic Pattern' (Routledge and Kegan Paul, 1956) pp 90--91
68 'काव्य बिम्ब' पृ 17
69 "Images, are invented, after all, to compose poems, and not for the convenience of American professors" 'Poetic Image', p 40

प्रस्तुत शोधग्रन्थ में कालिदास के विम्बों के अध्ययन हेतु विम्बों का निम्नांकित वर्गीकरण स्वीकार किया गया है :

मूल रूप से सम्पूर्ण काव्यगत विम्ब-विधान को दो भागों में बांटा जा सकता है (1) प्रस्तुत या लक्षित विम्ब (2) अप्रस्तुत या उपलक्षित विम्ब ।[70]

पहले वर्ग में विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि का वर्णन समाविष्ट है। इस प्रकार के विम्ब किसी प्रस्तुत की तुलना के लिए नहीं लाये जाते। ये स्वतः पूर्ण होते हैं और गहन मानवीय संवेदना के आधार पर निर्मित होते हैं। इनका भावों से सीधा सम्बन्ध होता है अतः इन्हें प्रस्तुत या लक्षित विम्ब कहा जाता है। अप्रस्तुत अथवा उपलक्षित विम्ब भावो से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध नही होते। वे सादृश्य-विधान के लिये लाये जाते हैं। वे परोक्ष रूप से भावों को तीव्र बनाने में सहायक होते हैं। प्रस्तुत विम्बों में मूर्तिमत्ता अपेक्षाकृत अधिक होती है। पहले प्रकार के विम्ब क्रिया विधायक अथवा स्वभावगत होते हैं, दूसरे प्रकार के सज्जात्मक अथवा आलंकारिक। कुछ आधुनिक आलोचक पहली कोटि को ही शुद्ध विम्ब मानते हैं। दूसरी कोटि को वे सादृश्यमूलक अलकारों की कोटि में रखते हैं। उनके अनुसार तीव्र संवेदनशीलता विम्ब की पहली शर्त है जो दूसरी कोटि के विम्बों में नहीं होती।

प्रस्तुत व अप्रस्तुत भेद तो प्रत्येक प्रकार के विम्ब का हो सकता है अतः इन विम्बों को आगे इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं—

(1) स्रोतों के आधार पर—गृहीत वस्तु के स्रोत के आधार पर विम्बों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

क—प्राकृतिक विम्ब—इनमें ऋतु और वेला, जलीय, आकाशीय, पार्थिव, वायव्य, तैजस, पशु-पक्षियों आदि के विम्ब लिये जा सकते हैं।

ख—मानव जीवन से सम्बन्धित विम्ब—इनमें मानव रूप, चरित्र विम्ब, सामाजिक विम्ब, पौराणिक घटनाओं पर आधारित विम्ब व भौगोलिक विम्ब आदि रखे जा सकते हैं।

(2) संवेदनाओं के आधार पर—(क) चाक्षुप (ख) स्पर्शपरक (ग) श्रुतिपरक (घ) स्वादपरक (ङ) घ्राणपरक (च) सहसंवेदनात्मक विम्ब।

(3) भावों के आधार पर—भक्ति, रति, शोक, उत्साह, भय, जुगुप्सा, हास्य, क्रोध, शर्म, आश्चर्य, वात्सल्य आदि को प्रकाशित करने वाले विम्ब।

(4) प्रकृति व अभिव्यक्ति के आधार पर—(क) प्रकृति-मूर्त से मूर्त का विम्ब, मूर्त द्वारा अमूर्त का विम्ब अमूर्त से मूर्त का विम्ब।

---

70. (1) Direct imagery (2) Indirect or figurative imagery.

(ख) अभिव्यक्ति—अभिधा, लक्षणा, अलंकार, विशेषण-विपर्यय
मानवीकरण, लोकोक्ति, मुहावरे, प्रतीक आदि
के द्वारा अभिव्यक्ति।

(ग) स्थिति के आधार पर—क्रिया, विशेषण, संज्ञा, क्रिया-विशेषण,
वाक्य, प्रकरण, प्रबन्ध आदि में स्थित बिम्ब।

कालिदास के बिम्बों का विवेचन करते समय तृतीय अध्याय से षष्ठ अध्याय तक चार अध्यायों में क्रमशः चारों आधारों पर वर्गीकृत बिम्बों का विश्लेषण किया जायेगा जिसमें पहले गृहीत वस्तु से सम्बन्धित प्रस्तुत बिम्ब, तदनन्तर उस वस्तु से सम्बन्धित अप्रस्तुत बिम्बों का अध्ययन होगा। उक्त विवेचन से पूर्व संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रचलित सिद्धान्तों के साथ बिम्ब सिद्धान्त के सम्बन्ध पर विचार कर लेना आवश्यक होगा।

2

संस्कृत-काव्यशास्त्र एवं बिम्ब-सिद्धान्त

संस्कृत का आलोचनाशास्त्र अत्यन्त समृद्ध है। इसका एक दीर्घ इतिहास रहा है, जिसमें अभिव्यक्ति के रूपात्मक प्रयोगों से लेकर भावजगत के सूक्ष्म पर्यवेक्षण तक की प्रक्रिया का पूर्ण विवेचन हुआ है। अलंकार-सिद्धान्त से लगाकर औचित्य-विचार तक आलोचक काव्य के रहस्य की व्याख्या विभिन्न प्रकार से करते हुए काव्य की आत्मा की खोज में संलग्न रहे हैं। कुछ लोग काव्य में सौन्दर्य को प्रधानता देते हैं, कुछ रस-भाव को और कुछ लोग अभिव्यक्ति को प्रधान मानते हैं। 'इमेज'—बिम्ब आधुनिक पाश्चात्य आलोचना की देन है। किन्तु जिस प्रकार जीवन में कुछ तत्त्व शाश्वत और सार्वदेशिक होते हैं, उसी प्रकार काव्य के भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो चिरन्तन एवं सार्वभौम हैं। विभिन्न देशों की चिन्तन-पद्धति में उनके नाम व रूप भिन्न हो सकते हैं, किन्तु तत्त्व की दृष्टि से उनमें मौलिक भेद नहीं होता। बिम्ब या 'इमेज' भी किसी देश-विशेष की विशेषता नहीं है, वरन् यह प्रत्येक देश व युग की कविता का शाश्वत तत्त्व है। संस्कृत साहित्य भी बिम्बपूर्ण है, किन्तु संस्कृत आलोचना-शास्त्र में बिम्ब या तत्समान कोई सिद्धान्त विकसित नहीं हुआ।

देखना यह है कि संस्कृत-आलोचना के सिद्धान्तों के मूल में बिम्ब विषयक कोई धारणा रही है अथवा नहीं? कौन-कौन सी मान्यताएँ बिम्ब के समीप हैं और बिम्ब यहाँ किस रूप में विवेच्य रहा है?

हिन्दी भाषा के बिम्बविषयक ग्रन्थों में प्रायः यह लिखा रहता है कि संस्कृत काव्य-शास्त्र में बिम्ब के महत्त्व की ओर ध्यान नहीं दिया गया और बिम्ब की चर्चा नहीं हुई है। लेखकों के ये विचार संस्कृत काव्य-शास्त्र के गहन अध्ययन के अभाव के द्योतक हैं। संस्कृत के प्राचीन आलोचक व कवि काव्य में बिम्बात्मकता के महत्त्व से अपरिचित नहीं थे। यद्यपि 'रस' व 'ध्वनि' जैसे सिद्धान्तों की व्यापक स्थापना हो जाने के कारण 'बिम्ब' जैसा कोई सिद्धान्त यहाँ विकसित नहीं हुआ

किन्तु बिम्बात्मकता के तत्त्व की चर्चा अवश्य रही है या कम से कम इसके संकेत अवश्य मिलते हैं।

'बिम्ब' और 'चित्र'

आधुनिक काव्यालोचन मे 'बिम्ब' और 'चित्र' शब्द समानार्थी के रूप मे बराबर प्रचलित हैं। प्राचीन संस्कृत-काव्यालोचना म भी 'चित्र' 'चित्रकाव्य' 'बिम्ब' 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव' आदि शब्दो की चर्चा होती रही है। 'चित्र' शब्द के कोशगत अनेक अर्थों मे दो प्रमुख अर्थ हैं—(1) विचित्र (विशेषण) (2) प्रतिमूर्ति या 'आलेख्य' (संज्ञा)। विचित्र-वक्रोक्ति एवं मूर्तता के अर्थ मे वह बिम्ब के निकट है। 'चित्रकाव्य' के एक भेद 'अर्थचित्र' का बिम्ब मे निकट सम्बन्ध है। 'भावचित्र' 'रसचित्र' आदि शब्दो का प्रयोग आलोचना के क्षेत्र मे बराबर देखने को मिलता है जो नि सन्देह बिम्ब का समानार्थी है। यथा—

सादृश्य लिख्यते यत्तु दर्पणे प्रतिबिम्बवत्।
तच्चित्रं वैद्धमित्याहुर्विश्वकर्मादयो बुधा ॥

(मानसोल्लास 1 900)

इसी प्रकार शृंगारादि जहाँ दृश्य बनाकर प्रस्तुत किये जाते हैं, सहृदय को आह्लादित करने वाले उस तत्त्व को 'भावचित्र' कहा गया है।

शृंगारादिरसो यत्र दर्शनादेव गम्यते।
भावचित्रं तदाख्यातं चित्तकौतुककारकम् ॥[1]

बिम्ब भी भावसवलित ऐन्द्रिय व्यापार है, अत यहाँ प्रयुक्त 'भावचित्र' शब्द एक प्रकार से बिम्ब के ही पर्याय रूप मे आया है।

बिम्ब और चित्रकाव्य

संस्कृत आलोचना ग्रन्थो म 'चित्रकाव्य' नामक काव्य का एक श्रेणीगत भेद भी है। ध्वनि का अभाव या अस्फुटता होने के कारण इस काव्य को तृतीय कोटि का अधम काव्य माना गया है। इसके 'शब्दचित्र' 'अर्थचित्र' और 'उभयचित्र' नामक तीन भेद किये गये है। जहाँ तक शब्दों व वर्णों मे विभिन्न चित्र-आकृतियाँ या 'बन्ध' बनाने का प्रश्न है, इसको अधमकाव्य कहना अनुचित नहीं है। इनका ग्रन्थ के आलोच्य 'काव्यबिम्ब' मे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। यमक श्लेष आदि भी बिम्ब मे बाधक है। वस्तुत 'शब्दचित्र' बिम्ब मे दूर की वस्तु है। 'उभयचित्र' मे भी शब्दो का सायास बन्धन होने के कारण वह 'रस' 'भाव' से विपरीत पडता है और बिम्ब के सन्दर्भ म उसकी चर्चा व्यर्थ है। किन्तु जहाँ तक 'अर्थचित्र' का प्रश्न है यह 'बिम्ब' के निकट है। 'अर्थ-चित्र' की व्याख्या मे 'अर्थ' का 'विचित्रत्व' अर्थात् वक्रोक्ति पर आधारित उसका अलंकारमय स्वरूप समझा

1. मानसोल्लास 1 902,903

जाता रहा है। किन्तु इसके मूल मे अवश्य कहीं बिम्बात्मकता (चित्रात्मकता) का भाव भी रहा होगा। जिस प्रकार 'शब्दचित्र' में वर्णों से बनने वालीपद्य, छत्र आदि की आकृतियाँ अभीष्ट थी, 'अर्थचित्र' में अर्थ अर्थ से बनने वाली मानसी आकृतियाँ (बिम्ब) भी अभीष्ट रही होंगी। 'अर्थचित्र' में आने वाले अर्थालंकार प्रायः बिम्बसृजन की सामर्थ्य से युक्त रहते ही हैं।

बिम्ब और 'चित्रमीमांसा'—

अप्पय दीक्षित ने अपने 'चित्रमीमासा' ग्रन्थ मे 'अर्थचित्र' की ही मीमांसा की है। उन्होंने जिन बारह अलंकारों का विवेचन किया है, उन सभी मे बिम्ब निर्माण की क्षमता है। चित्र की मीमांसा करते समय दीक्षितजी के मन मे 'चित्रत्व' (बिम्बात्मकता) का ध्यान अवश्य रहा होगा। यदि वे 'चित्र' का अर्थ 'निर्जीव आलेख्य' लेकर चलते तो 'शब्दचित्र' की भी विस्तृत चर्चा अवश्य करते। 'शब्दचित्र' मे सहृदय को आल्हादित करने वाली चित्रात्मकता (बिम्बात्मकता) का अभाव होने के कारण ही उन्होंने उसे महत्त्व नही दिया। उन्होंने केवल बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव पर आधारित और रूप-निर्माण के लिये उपयोगी अलकारो की मीमासा तक ही अपने को सीमित रखा है। बिम्ब से सीधा सम्बन्ध न होने के कारण विरोध आदि अलंकारो को छोड़ दिया है। 'चित्र' को गौरव देने के लिये ही उन्होने अपने ग्रन्थ का नाम 'चित्रमीमांसा' रखा। अवश्य ही, उनके मत मे 'चित्र' अवर-कोटिक-काव्य का उपकरण मात्र नही रहा होगा। 'चित्रमीमासा के व्याख्याकार श्री जगदीशचन्द्र मिश्र के मत में "उनकी चित्र-मीमासा मे चित्रकाव्य की विवेचना स्पष्ट-रूप मे अंकित है। एक ओर वे चित्र की मीमासा करते हैं, दूसरी ओर चित्रविधान की योजना करते दीखते है। चित्रमीमांसा को पढ़ते समय अलंकार के फलक पर उनके प्रत्येक चित्र-विधान को ध्यान मे रखना पड़ता है।

दीक्षितजी की दृष्टि में चित्र-विधान उस रूप में होना आवश्यक है, जिससे कवि की विशद भावनाओं को एक व्यवस्थित अभिव्यक्ति मिल सके। विशेषकर उस भावना का स्पष्टीकरण तो चित्रो के द्वारा ही होना आवश्यक है, जो कवि का विशेष लक्ष्य रहा है।[2] अतः यह अनुमान कि चित्रमीमासाकार के हृदय में बिम्ब-धारणा रही होगी, सर्वथा निराधार नहीं है।

क्या 'चित्रकाव्य' निम्न श्रेणी का काव्य है ?

अब प्रश्न उठता है कि क्या चित्रकाव्य (अर्थचित्र) अधम कोटि का काव्य है ? वस्तुतः सभी अर्थचित्रों को निम्न श्रेणी मे रखने का कारण आलोचकों की गतानुगतिकता ही रही है। पण्डितराज जगन्नाथ ने इसीलिये अधमकोटि मे केवल

2. 'चित्रमीमासा' की भूमिका, पृष्ठ 32-34, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी–1 (1971)

शब्दचित्रों को माना है और अर्थचित्रों को मध्यम कोटि में ही रखा है। लेकिन मम्मट केवल व्यंग्य को ही निष्कर्ष मानकर अर्थचित्रों को अधमकाव्य मानते हैं। मम्मट ने अधमकाव्य अर्थचित्र का जो निम्नलिखित उदाहरण दिया है, उसे निम्नकोटि का काव्य कहने में किसी भी सहृदय को संकोच हो सकता है।

विनिर्गतं मानदमात्ममन्दिराद्भवत्युपश्रुत्य यदृच्छयापि यम्।
ससम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला निमीलिताक्षीव भियाऽमरावती॥

यहाँ भयभीत अमरावती में एक भय निमीलित-नयना नायिका की कल्पना की गई है। मानवीकरण के आधार पर एक अति स्पष्ट बिम्ब की उद्भावना की गई है जो सहृदय को पूर्णतया आनन्दमग्न करने में समर्थ है। भय-भाव की अभिव्यक्ति के लिये कवि ने अत्यन्त सुन्दर कल्पना जुटाई है। भाव व कल्पना का सुन्दर संयोग एक प्रभावशाली बिम्ब में परिणत हुआ है, जो किसी भी पाठक को प्रभावित करने में समर्थ है, अतः इसे निम्नकोटि का काव्य कहना उचित नहीं लगता। बिम्ब की दृष्टि से यह अच्छा काव्य कहा जायगा।

अतः चित्रकाव्य को 'अव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्' न कहकर अप्पयदीक्षित के शब्दों में 'यदव्यङ्ग्यमपि चारु तच्चित्रम्' कहना ही उपयुक्त होगा। 'अर्थचित्र' में बिम्ब की संभावना निहित है और इसे निम्न श्रेणी का काव्य कहना अनुचित है।

बिम्ब शब्द का प्राचीन प्रयोग—

संस्कृत भाषा में बिम्ब का अर्थ 'प्रतिच्छवि' ग्रहण किया गया है। यथा 'उपनतजृम्भारम्भबिम्बे' (महावीरचरित, 6/41)। कालिदास ने इसका अर्थ मूर्ति में भी लिया है। यथा 'आत्मबिम्बं पात्रीकुर्वन्' (पृ. में 50) व 'क्रतुं प्रणयमृदुकाय क्षराणि बिम्बान्तरितानि' (मालविका)। इसी प्रकार 'सौम्य बिम्बमनुबिम्बमात्मनः' (कु. 8/11)।

बिम्ब शब्द का प्रयोग संस्कृत-आलोचना में भी देखा गया है, यद्यपि इसका ठीक वही अर्थ नहीं है जो 'इमेज' का है। सादृश्यमूलक अलंकारों के विवेचन में 'बिम्ब' व 'प्रतिबिम्ब' तथा 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' शब्दों का प्रयोग हुआ है। अप्पयदीक्षित ने 'रूपक' की परिभाषा करते हुए कहा है।

बिम्बाविशिष्टे निर्दिष्टे विषये यद्यनिह्नुते।
उपरञ्जकतामेति विषयी रूपकं तदा॥ (चित्रमीमांसा, पृ. 211)

इसी प्रकार दृष्टान्त अलंकार में—

चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलङ्कृतिः'
'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

उपर्युक्त लक्षणों में 'बिम्बप्रतिबिम्ब' शब्दयुग्म का प्रयोग एक प्रकार से प्रतीयमान प्रभावसाम्य या भावसाम्य के अर्थ में किया गया है। यह 'बिम्बप्रति-

विम्ब भाव' सदा काव्य में विम्बसृजन करता है। किन्तु यहाँ प्रयुक्त 'विम्ब' शब्द का अर्थ आधुनिक आलोचना शास्त्र के 'इमेज' से भिन्न ही है। यहाँ 'विम्ब' मूल वस्तु या भाव का वाचक है व 'प्रतिविम्ब' उसके मूर्तविधान का। जबकि 'विम्ब' शब्द 'इमेज' के अर्थ में मूल को विम्वित करने वाले मूर्तविधान का ही वाचक होता है। इस अर्थ में यहाँ प्रयुक्त 'प्रतिविम्ब' के अधिक समीप बैठता है। जो हो, स्पष्ट है कि 'चित्र' व 'विम्ब' शब्द आलोचना-क्षेत्र में नये नहीं हैं।

रस-सिद्धान्त के विवेचन में 'मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतीति' का उल्लेख है।[3] प्राचीन नागरक के लिये चित्रकला का ज्ञान आवश्यक सा था। 'चित्रसूत्र' पाठ्यक्रम में प्रचलित जान पड़ते है। चित्रों के सन्दर्भ में भी 'रस' (चित्ररस) का उल्लेख रहता था।[4] चित्रकला की यह लोकप्रियता भी काव्य में चित्रात्मकता के प्रति रुझान की द्योतक है।

इन सभी संकेतों के आधार पर यह माना जा सकता है कि प्राचीन आलोचक व कवि काव्य में विम्बात्मकता के महत्त्व से सर्वथा अपरिचित नहीं रहे होंगे।

अब हम संस्कृत के विभिन्न आलोचना-सिद्धान्तों मे विम्ब के सम्बन्ध पर विचार करेंगे।

अलंकार-सिद्धांत और विम्ब

साहित्यशास्त्र में अलंकारवादियों की एक दीर्घ परम्परा रही है। अलंकार को काव्य मे सौन्दर्य एवं शोभा का कारण माना गया है। भामह, रुद्रट, भोजदेव आदि विद्वान् अलंकार को काव्य का आवश्यक धर्म और प्राणतत्त्व मानते हैं। आनन्दवर्धन, मम्मट व विश्वनाथ उसे सौन्दर्याधायक ही मानते हैं।

कल्पना की सृष्टि होने के कारण विम्ब के साथ अलंकारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अलंकारों का मूल उद्देश्य है समानता या असमानता दिखाकर वस्तु के गुण, रूप, धर्म आदि का बोध कराना। विम्ब का लक्ष्य है इन्द्रियगम्यता द्वारा मानस-साक्षात्कार जो बहुधा आरोप व सादृश्य द्वारा होता है। इस प्रकार मूल रूप में अलंकार की मान्यता विम्ब के बहुत निकट है। 'इमेज' को पहले एक अर्थालंकार के रूप में ही समझा जाता था।[5] संस्कृत के आलोचक श्री कृष्ण चेतन्य ने

---

3. अभिनव गुप्त—'अभिनव भारती' पृ. 279
4. 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' 3/42 चित्रसूत्र
5. "Critics of the sixteenth, seventeenth and eighteenth century were apt to talk of imagery as ornament, mere decoration, ...The idea that imagery is at the core of the poem, did not begin to have any wide official currency till the Romantic Movement."—The Poetic Image. p. 18

अपनी पुस्तक 'संस्कृत पोइटिक्स' में 'इमेज' शब्द को सादृश्यमूलक अलंकारों के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। सादृश्यमूलक अलंकार प्राय बिम्बात्मक ही होते हैं। अंग्रेजी में 'इमेज' के पर्याय रूप में प्राय 'मेटाफर' का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ 'रूपक' या 'उपमान' के तुल्य है।

एक बात और है, मम्मट आदि ध्वनिवादियों ने काव्य में अलंकारों का स्थान बहुत गौण कर दिया है। 'हारादिवदलंकारा' कहकर उन्होंने अलंकारों को आभूषणों की भांति ऊपरी शोभा का हेतु बताया है।[6] 'किन्तु डॉ गुप्त के शब्दों 'प्राचीन अलंकारिकों ने 'अलंकार' शब्द का प्रयोग अधिक गंभीर अर्थ में किया है एवं अलंकार शब्द के उसी गम्भीर अर्थ के आधार पर ही संस्कृत-समालोचना-शास्त्र अलंकार-शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस व्यापक एवं गम्भीर अर्थ में अलंकार शब्द का लक्ष्य है, एक मानव हृदय की अनिर्वचनीय रसानुभूति दूसरे के हृदय में संक्रमित कर देने का समग्र कौशल। हम काव्य के जिन धर्मों को अलंकार के नाम से पुकारते हैं, थोड़ा सोचने पर समझ सकेंगे कि वे अलंकार कवि की उस विशेष भाषा के ही धर्म हैं। कवि की काव्यानुभूति, स्वानुरूप चित्र, स्वानुरूप वर्ण, स्वानुरूप झंकार लेकर ही आत्माभिव्यक्ति करती है। जब कवि की विशेष काव्यानुभूति इस विशेष भाषा में मूर्त नहीं हो पाती, तब सच्चे काव्य की रचना नहीं हो पाती[7]। स्पष्ट है कि अपने इस गम्भीर अर्थ में अलंकार की धारणा बिम्ब के अत्यन्त निकट है।

शब्दालंकारों का बिम्ब में वहीं तक महत्त्व है, जब तक कि वे मूल वस्तु या भाव को गोचर करने में बाधा नहीं पहुंचाते। जब इनका आयोजन सायास किया जाता है तो ये मूल की दृश्यता में बाधक हो बिम्ब के उपकारक ही सिद्ध होते हैं। अनुप्रास में वर्णों की कुशल योजना से वातावरण को सम्मूर्तित करने की साम्य होती है किंतु इसका प्रयोग कवि की कुशलता पर निर्भर है। जैसा कि प्रथम अध्याय में दिखाया गया है, भवभूति के निम्न उद्धरण में ध्वनियों द्वारा ही गोदावरी नदी के परिसरगत वातावरण को मूर्त करने का सफल प्रयास है।

'एते ते कुहरेषु गद-गद् नदद् गोदावरीवारयो'[8]

इसी प्रकार कवि 'जब मेघ विद्युन्मयी घनान्धकारमयी भयंकर रजनी का वर्णन करते हैं—

---

6 उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥ (काव्यप्रकाश 8 67)

7 डॉ शशिभूषणदास गुप्त—'उपमा कालिदासस्य' पृष्ठ 5-6

8 इसी प्रबन्ध के पृष्ठ 31 पर उद्धृत

विद्युद्दीधितिभेदभीषणतमः स्तोमान्तराः सन्तत
श्यामाम्भोधररोध सकटविपद्विप्रोषित ज्योतिषः
खद्योतानुमितोपकण्ठतरवः पुष्णन्ति गंभीरताम्
आसारोदकमत्तकीटपटलीक्वाणोत्तरा रात्रयः ।।

वहाँ गम्भीर अन्धकारमयी रजनी की भीषणता, उसमें उठने वाले तूफान की प्रचण्डता मानो शब्द-ध्वनि के द्वारा ही मूर्त हो उठी है। जरा सोचने से यह साफ दिखलाई पड़ेगा कि यहाँ शब्दालंकार भी केवल कटककुण्डलादिवत ही नहीं है, साधारण शब्द एवं अर्थ द्वारा जो प्रकट नहीं हो सकता, संगीत द्वारा, झंकार द्वारा उसी को प्रकट किया है।[9]

इस प्रकार शब्दालंकार भाषा के संगीत-धर्म हैं और नाद-बिम्बों में उपयोगी होते हैं। किन्तु जहाँ शब्दालंकार द्वारा अनावश्यक चातुर्य दिखाने का प्रयत्न किया किया जाता है, बिम्ब में बाधा पड़ती है और काव्यत्व की भी हानि होती है। यमक, श्लेष आदि शब्दालंकार चमत्काराश्रित व बुद्धि-प्रेरित होने के कारण बिम्ब से विपरीत हैं।

अर्थालंकारों का बिम्ब से सीधा सम्बन्ध है। अर्थालंकार भाषा के चित्र-धर्म के अन्तर्गत आते हैं और भावयुक्त होने पर काव्य-बिम्ब कहे जा सकते हैं। अर्थालंकारों के दो भेद हैं—(1) स्वाभावोक्ति (2) वक्रोक्ति। ये दोनों ही बिम्ब के समीपस्थ हैं।

स्वभावोक्ति में सुन्दर बिम्बों की सृष्टि होती है। स्वभावोक्ति की परिभाषा में ही बिम्ब की संभावना निहित है—

'स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तुवर्णनम्'।

प्रकरण प्राप्त वस्तुओं का स्वाभाविक वर्णन उन वस्तुओं को प्रत्यक्ष सा कर देता है। जहाँ कहीं कवि का वर्णन ऐसा होता है कि वर्ण्य वस्तु का सजीवचित्र उपस्थित हो जाये वहाँ लक्षित बिम्ब माना जाता है। सजीव लक्षित बिम्ब की सृष्टि तभी संभव है जब कवि गहरी अनुभूति के धरातल से लिख रहा होता है। स्वभावोक्ति के अधिकांश उदाहरणों में लक्षित बिम्ब-योजना ही दिखाई देती है। यथा—पूर्वोद्धृत 'ग्रीवाभगाभिरामं' व आदि में हरिण के स्वाभाविक वर्णन द्वारा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

भवभूति का निम्न स्वाभाव-वर्णन भी लक्षित बिम्ब का सुन्दर निदर्शन है। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का वर्णन है।

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ।।[10]

---

9 'उपमा कालिदासस्य', पृष्ठ 17

10 'उत्तररामचरित,' 4/26

इस प्रकार कह सकते हैं कि स्वभावोक्ति को अलंकार रूप में स्वीकृति देकर आलोचकों ने काव्य में लक्षित बिम्बों के महत्त्व को स्वीकार किया है। एक विद्वान् स्वभावोक्ति की विवेचना करते हुए कहते हैं— स्वभावोक्ति की शैली की (एक) विशेषता है—'चित्रोदात्तता'। इसका अर्थ है कि आरोपण से दूर रहने पर भी उसमें बिम्ब उपस्थित करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। चित्र के साथ जुड़ा उदात्त शब्द इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि चित्र की कोटि उत्तम होनी चाहिये, अर्थात् चित्र अस्पष्ट (Vague) न होकर स्पष्ट (Distinct) होना चाहिये'।[11]

स्वभावोक्ति के अतिरिक्त वक्रोक्ति मूलक अलंकारों में भी बिम्ब की सत्ता रहती है। इनमें जो सादृश्यमूलक अलंकार हैं उनमें यदि गौर करें तो प्रायः बिम्ब बन जाते हैं। बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव पर आश्रित अलंकारों से सुंदर बिम्ब बनते हैं। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त निदर्शना, उपमेयोपमा या अन्योन्य, प्रतिवस्तूपमा अपह्नुति व समासोक्ति आदि अलंकारों में सादृश्य द्वारा सुन्दर चित्र विधान किया जा सकता है।

रूपक—बिम्बविधान करने वाले अलंकारों में रूपक का महत्त्व सर्वाधिक है, सांगरूपक का और भी अधिक। समस्त अवयवों सहित उपमान के आरोह द्वारा एक सम्पूर्ण चित्र का आस्वादन किया जा सकता है। पाश्चात्य आलोचना में इसीलिये रूपक को उपमा से अधिक महत्त्व दिया गया है। आधुनिक आलोचकों के मत में उपमा की प्रकृति गद्यात्मक है और रूपक काव्य की प्रकृति से तादात्म्य है। इस सम्बन्ध में स्टैनफोर्ड ने लिखा है—'उपमा गद्य की भांति विश्लेषणात्मक, है और रूपक कविता की भाँति संश्लिष्ट, उपमा विस्तार परक होती है, रूपक में गहराई है,। उपमा तर्किक तथा न्यायपरक होती है, रूपक अतर्किक और विश्लेषण निरपेक्ष। उपमा उचितानुचित की व्याख्या करती है और रूपक आन्तरिक ज्ञान के द्वारा संकेत-ग्रहण करता है। उपमा और रूपक में वही भेद है जो गद्य और कविता में है।'[12] अरस्तू से लेकर आई. ए. रिचर्ड्स तक रूपक (मेटाफर) को काव्य का सबसे बड़ा गुण मानते हैं। उपमा अथवा उत्प्रेक्षा तो केवल एक सरणी सादृश्य-मात्र उपस्थित करती है, किन्तु रूपक में वर्ण्यवस्तु का पूर्णतः समाहार हो जाता

---

11 'विश्वम्भरा' पत्रिका, अंक 3, 1970 में पृष्ठ 33–52 पर प्रकाशित डॉ मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ के लेख 'स्वभावोक्ति का पुनर्विचार' में।

12 "Simile like prose is analytic, metaphor, like poetry is synthetic, simile is extensive, metaphor intensive, simile is logical and judicious, metaphor illogical and dogmatic, simile reasons, metaphor apprehends by intuition simile is to metaphor, as prose is to poetry"—W B Stanford 'Greek Metaphor' P 28–29

है। वस्तु और कल्पना के बीच वहाँ अन्तराल नहीं रहता। इसी अभेद में पूर्ण कलात्मकता होती है, अतः रूपक विम्ब-विधान का सशक्त माध्यम है। 'काव्य-प्रकाश' मे रूपक का निम्नांकित उदाहरण लिया जा सकता है—

ज्योत्स्नाभस्मच्छुरणधवला बिभ्रती तारकास्थी-
न्यन्तर्द्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम्।
द्वीपाद् द्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले
न्यस्तं सिद्धांजनपरिमलं लाञ्छनस्य च्छलेन ॥ (उदाहरण श्लोक सं. 421)

यहाँ 'चाँदनी रात' पर भस्म लपेटे कापालिकी के अभेदारोप द्वारा एक संश्लिष्ट विम्ब की योजना की गई है। सागरूपक से विम्ब को संश्लिष्टता प्राप्त होती है। तारों में अस्थियों की व चन्द्रमा मे खप्पर की कल्पना रूपसादृश्य पर आधारित है।

उपमा—यद्यपि रूपक की तुलना मे उपमा को विम्ब की दृष्टि मे कम महत्त्व दिया जाता है, किन्तु कालिदास जैसे उपमा-प्रिय कवियों ने, उपमा से ही अधिक सुन्दर विम्बों का विधान किया है। इन्दुमती के लिये 'दीपशिखा'[13] की उपमा एक भव्य चित्र का निर्माण करने वाली सिद्ध हुई है। इसी अवसर पर पाण्ड्य-नरेश के लिये दी गई अद्रिराज की उपमा भी सुन्दर विम्ब का उपकरण बनी है।

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्तांगरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥

यहाँ रक्त चन्दन से लिप्त एवं कन्धे पर हार को डाले हुए गौर वर्णी पण्ड्य-नरेश के वर्णन में पाठक को हिमाच्छादित हिमालय का एक सुन्दर चित्र देखने को मिलता है, जिसकी चोटियों पर प्रभात कालीन सूर्य की लाल धूप पड रही है एवं जिसमें झरने नीचे बहते दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार उपमाएँ यदि नवीन भावगर्भित व चित्रगुण से समन्वित होती है तो प्रायः विम्बाधायक होती है। यदि उनमे समग्रता व इन्द्रियग्राह्यता का अभाव हो तो उसमें विम्बग्रहण भलीभांति नहीं हो पाता। उपमान के रूढ अथवा नितान्त अपरिचित होने पर भी उपमा विम्ब-निर्माण में असमर्थ रहती है।

उत्प्रेक्षा—इसमें प्रस्तुत विषय के लिये अप्रस्तुत की कल्पना की जाती है। यद्यपि आलंकारिकों ने उत्प्रेक्षा में विम्ब-प्रतिविम्ब भाव की चर्चा नहीं की है किन्तु उत्प्रेक्षा में सुन्दर कल्पना प्रायः विम्बाधायक होती है। यथा- आलोच्य कवि

---

13 'रघुवंश' 6·67

के 'अंगुलीभिरेव केशसंचयम्'[14] आदि में पद्य उत्प्रेक्षा एक सुंदर बिम्ब की निर्माती है। यहाँ पूरा दृश्य कवि ने भाव-संवेग में इतना सजीव हो गया है कि उपमेय-उपमान का भेद भाव पाठक को दिखाई भी नहीं देता और पाठक देर तक आनन्द लेता रहता है। अब प्रश्न उठता है कि यहाँ जो काव्य-सौंदर्य उद्घाटित हुआ है वह क्या उत्प्रेक्षा, रूपक या समासोक्ति आदि अलंकारों के कारण है? ये अलंकार तो इतने सुंदर चित्र के बिना भी रह सकते हैं। अथवा क्या पद्य में इन अलंकारों का निर्देश मात्र कर देने से इस कल्पना का समस्त सौन्दर्य समझाया जा सकता है? वास्तव में यहाँ उत्कृष्ट बिम्ब-विधान है। अपनी कल्पना में स्थित चित्र की अभिव्यक्ति करना कवि का अभीष्ट रहा है जिसमें उत्प्रेक्षा, रूपक, चित्रमय विशेषण, मानवीकरण आदि के तत्त्वों का स्वतः समावेश हुआ है। ये अलंकारादि कवि के अभीष्ट नहीं रहे, अभीष्ट चित्र-विधान ही रहा है। इस प्रकार उत्प्रेक्षादि अलंकारों में बिम्ब का सौंदर्य ही उत्कर्ष का कारण दिखाई देता है। कवि माघ, रैवतक पर्वत से निकलकर समुद्र की ओर प्रस्थान करती नदियों में पिता के घर से पतिगृह के लिये विदा लेती कन्याओं की सुंदर उत्प्रेक्षा करते हैं, तभी तो पर्वत पक्षियों के कलरव से रोदन कर रहा है—

> अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः ।
> अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ॥[15]

'अङ्कपरिवर्तनोचिताः' शब्द इस बिम्ब में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह एक ओर पर्वत के क्रोड़ में लौटती नदियों को दृश्य करता तो दूसरी ओर निर्भय हो पिता की गोद में खेलती पुत्रियों को उपस्थित करने में समर्थ है। शब्दों के इस कुशल प्रयोग में ही कवियों का महाकवित्व छिपा रहता है।

निदर्शना व दृष्टान्त अलंकारों में भी 'बिम्ब' का सौंदर्य ही शोभा का कारण बनता है। निदर्शना में उपमा अप्रत्यक्ष रूप से रहती है जो बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से बोधित होती है। साम्यवाचक शब्द का अभाव होने पर भी उपमेय-उपमान में जो साधर्म्य रहता है उसके कारण तुलनात्मक चित्र ग्रहण किया जा सकता है। यथा माघ के प्रातः वर्णन में—

> उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा—
> वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
> वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा—
> *द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥*[16]

---

14 उद्धृत पृष्ठ 18

15 'शिशुपालवध'—4/47

16 वही, 4/20

यह एक उत्तमकोटि का बिम्ब है जिसमें अलंकार की दृष्टि से निदर्शना है। प्रकृति के सामान्य नियम को सुन्दर चित्र में बांध लिया गया है। रैवतक पर्वत के एक ओर पूर्व दिशा में उगते सूर्य का गोला दिखाई दे रहा है, दूसरी ओर पश्चिम में अस्त होता चन्द्रबिम्ब है। आकृति में दोनों गोलाकार सूर्य व चन्द्र हाथी के दोनो ओर लटकते दो घण्टों जैसे हैं। सूर्य व चन्द्र की किरणें ही घण्टों को धारण करने वाली रश्मियाँ (रस्सियाँ) है। दोनों ओर बजती हुई घंटियों को धारण किये हाथी का दृश्य बड़ा जाना-पहचाना है। इस परिचित किन्तु सर्वथा मौलिक कल्पना के कारण यह बिम्ब सर्वसंवेद्य बन गया है।

दृष्टान्त अलंकार का निम्नलिखित प्रसिद्ध उदाहरण भी बिम्ब-विधान में समर्थ है—

> अवदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
> अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला ।[17]

यहाँ 'कर्णेषु मधुधारा वमति' श्रुति-सम्बन्धी परितृप्ति का ज्ञापक है व 'दृशं हरति' में 'नेत्रतोप' का उल्लेख है। धर्मों के पृथक-पृथक होने पर भी प्रीतिजनन' रूप सामान्य तत्त्व के कारण जो सादृश्य है वह उक्ति में सौन्दर्य का कारण हुआ है। प्रस्तुत श्रोत्र संवेदना के लिये अप्रस्तुत दृश्य-संवेदन- का साम्य चित्ताकर्षक बिम्ब का कारण बना है।

'प्रतिवस्तूपमा' में एक ही साधारण धर्म पर आधारित दो पूर्णतः समान वस्तुओं की योजना की जाती है। इस पर आधारित बिम्ब में साम्य सम्पूर्ण चित्र में रहता है। अपह्नुति, समासोक्ति व अतिशयोक्ति अलंकार भी बिम्बविधायक होते हैं। समासोक्ति में मानवीकरण द्वारा सुन्दर बिम्बों की सृष्टि की जाती है। अप्रस्तुत प्रशंसा में अन्योक्ति के आश्रय से बिम्ब-रचना देखी जाती है। 'भाविक' में परोक्ष वस्तुओं का प्रत्यक्ष-सा वर्णन किया जाता है जो बिम्ब रूप ही होता है। 'परिकर' में साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग का औचित्य ही यह है कि जिससे वस्तु का बिम्ब स्पष्ट किया जा सके।

जिन चित्रों मे 'परिकर' का सौन्दर्य होता है, वे विशेषण बिम्ब बनाते है। 'स्मरण' अलंकार स्मृत-बिम्बों की सृष्टि करता है। 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार में जहाँ 'विशेष' वस्तु को समर्थन के लिये प्रस्तुत किया जाता है, प्रायः मूर्तताधायक होता है। किं बहुना, अर्थालंकारों में चारुता प्रायः स्पष्ट बिम्बों के कारण ही आती है। कविविशेष की जिस प्रकार की कथन-शैली होती है, वह उसी प्रकार के अलंकार-विशेष द्वारा बिम्बों की योजना करता है। किसी को उपमा मे रुचि होती है, तो

---

17 साहित्यदर्पण, पृष्ठ. 555

किसी को रूपक में। कालिदास के बिम्बों के शैलीपक्ष का विवेचन करते समय अलंकारों का बिम्बों से सम्बन्ध और स्पष्ट किया जायगा।[18]

यहाँ संक्षेप में कह सकते हैं कि सादृश्यमूलक अलंकारों का सौन्दर्य बिम्ब निर्माण में ही है। जहाँ केवल अलंकार के लिये सादृश्य योजना की जाती है, वह बिम्ब की समता नहीं कर सकती। जहाँ भावानुभूति का बिना ध्यान रखे चमत्कार-प्रदर्शन मात्र के लिये उपमान जुटाए जाते हैं, वहाँ केवल अलंकार होता है, बिम्ब नहीं। यहाँ उल्लेखनीय है कि संस्कृत आलोचक प्राचीन काल से ही अलंकारों में भाव-सम्पत्ति पर बल देते रहे हैं।[19] पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिये अलंकारों का कभी समर्थन नहीं किया गया। आनन्दवर्धन ने कवि की अनुभूति से शून्य अलंकारों को केवल 'वाग्विकल्प' कहा।[20] अप्पयदीक्षित अलंकारों में 'हृद्यता' आवश्यक मानते हैं।[21] भोज 'काव्यशोभा' का आधान आवश्यक बताते हैं और यह शोभा सहृदय के आह्लाद में ही निहित है।[22] ध्वनिकार 'अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य' व 'अयत्नज' आदि शब्दों में कवियों को पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से सावधान करते रहे हैं।[23] सिद्धान्त की इस मान्यता से सादृश्यगर्भी अलंकार बिम्ब के अति निकट आ जाता है, क्योंकि बिम्ब में भी सरलता, स्वाभाविकता, हृदय-तत्त्व की सन्निधि व बुद्धि-तत्त्व के अभाव की अपेक्षा है। यह अलग बात है कि व्यवहार में संस्कृत के उत्तरवर्ती कवियों ने इस सिद्धान्त पक्ष का ध्यान नहीं रखा, पाण्डित्य-प्रदर्शन की रुचि बराबर बढ़ती रही और अलंकार की बिम्ब से दूरी बढ़ती गई।

इस प्रकार उपमान या अलंकारगत सादृश्य में बिम्ब की पूर्ण संभावना होने पर भी बिम्ब व उपमान पर्याय नहीं हैं। यतः—

(1) उपमान सदैव अप्रस्तुत होता है, बिम्ब प्रस्तुत का भी होता है।

(2) सादृश्य सदैव बिम्बात्मक नहीं होता, अमूर्त भी होता है, इन्द्रियगोचरता होने पर ही सादृश्य बिम्ब की कोटि में आ सकता है।

(3) सादृश्य-योजना में बुद्धि विवेक का आश्रय भी लिया जाता है, बिम्ब में भाव-योजना का ही ध्यान रखा जाता है। अलंकार भाव के बिना भी रहता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि अलंकार सिद्धान्त में बिम्ब की संभावना निहित है किन्तु बिम्ब-विधान का क्षेत्र अलंकारों से व्यापक है।

---

18 देखें अध्याय–6

19 द्रष्टव्य—प्रथम अध्याय में बिम्ब और भाव पृ 16

20 वही

21 वही

22 वही

23 वही पृ 29

रीति सिद्धान्त

पदों की विशिष्ट रचना या संघटना का नाम रीति है—'विशिष्टापदरचना रीतिः'। विशिष्टता से तात्पर्य है—पदों की रचना में गुणों का निवास 'विशेषो गुणात्मा'। इस प्रकार रीति-सिद्धान्त मे गुणों को महत्त्व दिया गया है और गुणों का विस्तार कर समस्त काव्य-प्रपंच को उसमें समेटने का प्रयत्न किया गया है। वक्ता, वाच्य, विषय तथा रस का औचित्य रीति के चुनाव में नियामक माना जाता है। इस प्रकार 'रीति' एक प्रकार से आधुनिक 'शैली' शब्द का वाचक है, जिसका सम्बन्ध कवि के स्वभाव से है। शैली का सम्बन्ध कविता के बाह्यपक्ष से अधिक है, अतः बिम्ब का रीति से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं बैठता। बिम्ब का सम्बन्ध कल्पना से है, शैली से नहीं। शब्दार्थ-रचना पर ही बल होने से रीति का बिम्ब में विशेष महत्त्व नहीं है। नाद-बिम्बों में अवश्य पद-रचना का महत्त्व है, जहाँ अनुरणनात्मक ध्वनियों द्वारा ही वातावरण को सम्मूर्तित करने का प्रयास रहता है। 'अर्थव्यक्ति' गुण की कल्पना में भी बिम्ब की महत्ता को प्रकारान्तर से स्वीकार किया गया है। इसका लक्षण करते हुए वामन कहते हैं, वस्तुस्वभावस्फुटत्वमर्थव्यक्तिः'—अर्थात् ऐसी शब्दायोजना अर्थव्यक्ति कहलाती है जो वस्तु को तुरन्त स्पष्ट करदे। यहाँ अवश्य बिम्बोत्पादन-क्षमता से ही अभिप्राय है, अन्यथा वामन आदि रीति-समर्थकों का ध्यान काव्य में चित्रात्मकता तथा सम्मूर्तन की ओर नहीं था, यह निःसंकोच कहा जा सकता है।

वक्रोक्ति-सिद्धान्त

'ध्वन्यालोक' में रहते हुए भी वक्रोक्ति सिद्धान्त की कल्पना कुन्तक की असाधारण प्रतिभा की परिचायक है। 'वक्रोक्तिजीवित' में काव्य की सूक्ष्मतम इकाई वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक की चारुता का गहराई से विश्लेषण किया गया है। काव्य का उद्देश्य श्रोताओं के हृदय में अलौकिक आह्लाद का उन्मीलन है और यह उन्मीलन तभी सिद्ध हो सकता है जब शब्द का प्रयोग शास्त्रादिकों में मान्य अर्थों से दूर हटकर विचित्रतर सम्पन्न होता है। लोक-व्यवहार में शब्दों का प्रयोग किसी न किसी अर्थ में रूढ़ हो गया है। इन रूढ़ अर्थों से हमारा परिचय इतना अधिक है कि हमारे लिये उनमें किसी प्रकार का आल्हाद रह नहीं जाता। अतः अप्रचलित प्रकार से स्वतंत्र प्रयोग से ही वैचित्र्य उदपादन की क्षमता शब्दों में हो सकती है—

> प्रसिद्धं मार्गमुत्सृज्य यत्र वैचित्र्यसिद्धये।
> अन्यथैवोच्यते सोऽर्थः सा वक्रोक्तिरुदाहृता॥

'व्यक्तिविवेक 1·69'

जो आलोचक वक्रोक्ति को चमत्कार का पर्याय मान लेते हैं वे इसके व्यापक तथा महनीय अर्थ को संकीर्ण बना देते हैं। कुन्तक ने सहृदय के हृदय मे आल्हाद-जननी वक्रोक्ति को ही उचित माना है। स्पष्ट है कि रस-भाव से युक्त होने पर ही

वक्रोक्ति आल्हादोत्पादक हो सकती है। इस अर्थ म वक्रोक्ति सिद्धान्त नितान्त व्यापक, अन्तरग तथा सूक्ष्मविवेचना शक्ति का द्योतक है।

विम्ब-सिद्धान्त मे भी शब्दो के रूढ प्रयोग से हटकर नए प्रयोगो की बात कही जाती है क्योकि रूढ शब्दो की बिम्बता समाप्त हो जाती है, यह प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए होता है, चमत्कार के लिए नही। अत वक्रोक्ति-सिद्धान्त की मूल भावना विम्ब सिद्धान्त मे अछूती नही है। वक्रोक्ति-सिद्धान्त के अनेक प्रकारो मे काव्य बिम्ब का रहस्य उद्घाटित हुआ है। बिम्ब-विधान के अनेक रूपो का कुन्तक की वक्रताओ मे स्पष्ट समावेश है। भाषा-भेद की दृष्टि से भी बिम्ब व वक्रोक्ति के भेदो मे साम्य है। हिन्दी आलोचना की पुस्तकों मे निश्चित रूप से ये भेद 'वक्रोक्ति जीवित' से प्रभावित ज्ञात होते हैं। बिम्ब प्रबन्ध, प्रकरण, वाक्य व वाक्याश म स्थित माना गया है। वाक्याश म क्रिया-बिम्ब, विशेषण-बिम्ब, सज्ञा बिम्ब, वर्ण-बिम्ब आदि की चर्चा बराबर देखने को मिलती है। हमारे विचार से ये भेद क्रिया-वैचित्र्य, विशेषण वैचित्र्य, पर्यायवक्रता आदि से प्रभावित होकर किए गये है। जैसे कि डा नगेन्द्र ने प्रबन्ध-बिम्ब व प्रकरण-बिम्ब के अन्तर्गत कुन्तक की प्रबन्ध-वक्रता व प्रकरणवक्रता की ही व्याख्या की है।[24]

विभिन्न प्रकार की वक्रताओ की चारुता का रहस्य ही यह है कि पर्याय विशेष लिंग आदि के विशेष प्रयोगों से बिम्ब अधिक स्पष्ट होते हैं। वक्रोक्ति सिद्धान्त की कल्पना मे अप्रत्यक्ष ही नही, बिम्ब की स्वीकृति अवश्य है। वैचित्र्य का अर्थ चारुत्वका निबन्धन है, जो बिम्ब रूप मे ही होता है। वक्रता के विभिन्न भेदो मे बिम्ब की स्थिति पर विचार करना उचित होगा—

वर्णवक्रता—कुन्तक ने सर्वप्रथम वर्णविन्यासवक्रता का उल्लेख किया है। इनमे अनुप्रास, यमक आदि का अन्तर्भाव हो जाता है। इसमे औचित्य को आवश्यक बताकर कुन्तक न चमत्कार-प्रधान अलकार मात्र से वक्रता को दूर रखा है। वर्ण वृत्ति को वे प्रसगानुकूल व सहज रूप मे ही वैचित्र्याधायक मानते हैं 'नातिनिर्बन्ध-विहिता नाप्यपेशलभूषिता' इस प्रकार श्रुत्यनुकूल व्यजनो की अनुप्रासमय योजना अभीष्ट रसाद्रेक मे सहायक होती है। यथा—जयदेव की निम्न कविता मे

ललितलवगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे,
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुजकुटीरे।[25]

मलय, समीर, मधुकरनिकर एव कोकिलकूजन का भावमय चित्र ल, र, ज आदि व्यजनों की मैत्री का ही परिणाम है। मधुर ध्वनियों की ऐसी सश्लिष्ट योजना शृगार-प्रसगो मे अनुकूल बिम्ब की सहज आधायक बनती है। अत वर्ण-वक्रता का श्रोतबिम्ब व नाद बिम्बो की धारणा मे साम्य है।

---

24 'काव्य बिम्ब' पृष्ठ 13–14
25 'गीत गोविन्द' निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, *1949*, पृष्ठ–*27*

बिम्ब आ जाता है। कुन्तक के अनुसार सरस सादृश्य ही 'उपचार' है—

यन्मूला सरसोल्लेखा रूपकादिरलंकृतिः ।
उपचारप्रधानासौ वक्रता काचिदुच्यते ॥

(वक्रोक्तिजीवित, 2 14)

सादृश्य जब भाव रस से युक्त होता है तो बिम्ब का ही रूप होता है। डा० नगेन्द्र ने इसीलिये उपचारवक्रता का बिम्बविधान से सम्बन्ध जोडते हुए कहा है—'इसमें सन्देह नहीं कि उपचारवक्रता काव्यकला का अत्यन्त मूल्यवान् उपकरण है। लक्षणा का वैभव मूलतः उपचारवक्रता में ही निहित रहता है। यूरोपीय काव्य-शास्त्र के अनेक अलंकार उपचार के ही आश्रित हैं जैसे विशेषणविपर्यय और मानवीकरण का चमत्कार उपचारवक्रता के अन्तर्गत आता है'।[26] कुन्तक द्वारा प्रस्तुत उपचार-वक्रता के उदाहरणों में बिम्ब का सौन्दर्य ही दिखाई देता है यथा—

'श्वासोत्कम्पतरंगिणि स्तनतटे०' आदि उदाहरण में कवि ने स्तनप्रदेश को श्वासजन्य कम्प के द्वारा तरंगित बताया है। वस्तुतः तरंगित होना द्रव पदार्थ का धर्म है जबकि स्तन-प्रदेश द्रव पदार्थ न होकर ठोस मूर्त पदार्थ है। स्तनप्रदेश को तरंगित बताकर 'मृदुकम्प' को ही दृश्यरूप में कवि उपस्थित करना चाहता है, जिसे कुन्तक ने काव्य में बिम्ब-तत्त्व से अपरिचित होने के कारण वैचित्र्य ही कह दिया है। आधुनिक आलोचना में इसे विशेषणविपर्यय कहा जाता है।

विशेषण-वक्रता—जहाँ कारक या क्रिया में विशेषण के प्रभाव से लावण्य का उन्मेष होता है, वहाँ विशेषण वक्रता होती है। काव्य में सौन्दर्य की स्फूर्ति कभी एक छोटे से विशेषण से इस ढंग से की जाती है कि उसके लिये लम्बे वाक्यों का विन्यास भी समर्थ नहीं होता। कुन्तक ने कहा है—

स्वमहिम्ना विधीयन्ते येन लोकोत्तरश्रियः ।
रसस्वभावालंकारास्तद्विधेयं विशेषणम् ॥

(वक्रोक्तिजीवित, 2 57)

अर्थात् विशेषण रस, वस्तुस्वभाव तथा अलंकार का पोषक होना चाहिये। विशेषणबिम्ब में भी विशेषण की यही भूमिका रहती है। सचित्र अथवा चित्रात्मक विशेषण वर्ण्यवस्तु के स्वभाव का चित्र प्रस्तुत करने में सहायक होता है, भावमय विशेषण भाव को उद्बुद्ध करने में योग देता है, और विचारप्रधान तर्कमय विशेषण विचार तथा चिन्तन को जगाता। यदि विशेषण सरस अथवा सचित्र हो तो उक्ति का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। संस्कृत कवियों में इस प्रकार के विशेषण मणियों की तरह जड़े हुए मिलते हैं। ये विचार डा० नगेन्द्र ने कुन्तक की विशेषण-वक्रता की व्याख्या में प्रकट किये हैं, जिनमें बिम्बात्मकता की धारणा की स्पष्ट स्वीकृति है। कुन्तक ने यहाँ अग्रलिखित उदाहरण दिया है—

---

26 भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० 245

करान्तरालीनकपोलभित्तिर्बाष्पोच्छलत्कूणितपत्रलेखा ।
श्रोत्रान्तरे पिण्डितचित्तवृत्तिः शृणोति गीतध्वनिमत्र तन्वी ॥

यहाँ 'तन्वी' के प्रथम दो विशेषण—'हाथों में कपोल को दबाए' व 'उमड़ते हुए आँसुओं से बिगड़ी पत्र लेखावली' बिम्बात्मक होने के कारण, भाव को उद्बुद्ध करते हुए व अन्तिम विशेषण—'समस्त वृत्तियों को कान में समेटे' प्रत्यक्षरूप से भावाभिव्यंजना करता हुआ रस-परिपाक में सहायक है। इस प्रकार बिम्ब का शब्दतः उल्लेख न होकर भी यहाँ बिम्ब-सौन्दर्य का ही उद्घाटन है।

यहाँ एक बात और सामने आती है—वक्रता की व्याख्या हो, ध्वनि की या बिम्ब की, भाषागत दृष्टि से उसे विशेषण या क्रिया आदि शब्दों में स्थित कहना बाह्योपचार मात्र है, जिस कथन-सौन्दर्य का हम अनुभव करते हैं वह तो गुण रूप ही होता है। उसे वाक्य में प्रकट किया जाता है, या 'तिङन्त' क्रिया में या 'सुबन्त' विशेषण आदि में—इसका तो कोई महत्त्व नहीं है।

संवृति-वक्रता—इसका वैचित्र्य स्वतन्त्र बिम्बों को जन्म देता है। बिम्बवाद में एक ही शब्द पूरा चित्र सामने ला सकता है। संवृतिवक्रता में अनिश्चयवाचक सर्वनाम में अनेक चित्रों को उद्बुद्ध करने की सामर्थ्य खोजी गई है। जहाँ अनिर्वचनीयता, अमंगल या अत्यन्त सुकुमारता के कारण स्पष्ट कथन को छिपाकर सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है वहाँ संवृतिवक्रता होती है। कुन्तक ने यहाँ जो उदाहरण लिये हैं, वे उत्कृष्ट बिम्बविधान के नमूने हैं। यथा—

दर्पणे च परिभोगदर्शिनी पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः ।
वीक्ष्य बिम्बमनुबिम्बमात्मनः कानि कानि न चकार लज्जया ॥

(कुमार 8·11)

यहाँ शिव के प्रतिबिम्ब को अपने बिम्ब के साथ दर्पण में देखने पर लज्जावश पार्वती की जो चेष्टाएँ होती हैं वे इतनी सुकुमार हैं कि वर्णन द्वारा उनका सौकुमार्य नष्ट हो जाता। इस कला-मर्म को समझकर कालिदास ने उनका वर्णन करने का असफल प्रयास नहीं किया, वरन् 'कानि कानि' सर्वनाम द्वारा संवृत कर उन्हें पाठक की बिम्बविधायक शक्ति पर छोड़ दिया है। इस 'कानि कानि' से पाठक के हृदय में स्वच्छन्द बिम्ब (अनुभाव) अवश्य जन्म लेते हैं।

लिंगवक्रता—इस की सार्थकता भी इसी में है कि विशेष वर्णन में विशेष लिंग ही आवश्यक बिम्ब की सृष्टि कर रसानुभूति का पोषक होता है। यथा—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तला के विदा के अवसर पर—

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूर्यः ।
अपसृतपाण्डुपत्राणि मुंचन्त्यश्रूणीव लताः ॥

(अभि· 4·12)

पद्य में कवि ने मृग, मयूर या वृक्षादि का उल्लेख न करके स्त्रीलिंग मृगी,

मयूरी व लतादि के बिम्ब दिये हैं, जो प्रस्तुत विषय के लिये अधिक उपयुक्त हैं। ये नारी-जनोचित कातर स्वभाव, सहानुभूति, दया आदि के भावो को भलीभाति व्यजित कर करुणरस के परिपाक मे सहायक है। इसी प्रकार कुन्तक ने 'रघुवश' से उदाहरण दिया है, जहाँ विरही राम के प्रति मृगियो व लताओ की सहानुभूति का वर्णन है, मृगो व वृक्षो का नही।[27]

क्रियावक्रता मे धातु पर आश्रित क्रिया मे बिम्बात्मकता का विश्लेषण किया गया है जैसे निम्न उदाहरण मे क्रिया में वैचित्र्य बिम्ब के कारण ही है—

> क्रीडारसेन रहसि स्मितपूर्वमिन्दो–
> र्लेखा विकृष्य विनिबध्य च मूर्ध्नि गौर्या
> किं शोभिताहमनयेति शशाकमौले,
> पृष्टस्य पातु परिचुम्बनमुत्तर व ॥

(वक्रोक्तिजीवित, उदाहरण 1–81)

पार्वती परिहास मे चन्द्रलेखा को शिव के मस्तक मे खीचकर अपने मस्तक पर बाँध लेती है, और पूछती है कि 'क्या मैं इससे सुन्दर लगती हूँ।' उत्तर के रूप मे शिव पार्वती का मस्तक चूम लेते हैं। इसकी व्याख्या मे कुन्तक कहते हैं –' अत्र चुम्बनव्यतिरेकेण भगवता तथा विधलोकोत्तर गौरीशोभातिशयाभिधान न केनचित् *क्रियान्तरेण कर्तुं पार्यत इति क्रियावैचित्र्यनिबन्धन वक्रभावभावहति'*। प्रशसा के रूप में यदि शिव कोई वाक्य कहते तो उसमे लोकोत्तर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उतनी तीव्र न हो पाती। 'परिचुम्बन' प्रशसा करने का एक मूर्त, इन्द्रियगम्य रूप है, यह बिम्ब ही यहाँ काव्यसौन्दर्य का कारण है। इसी प्रकार कुन्तक द्वारा प्रस्तुत 'स दहतु दुरित शाम्भवो व शराग्नि' य, अग्नि द्वारा काष्ठादि के लिये प्रयुक्त होने वाली दहन रूप क्रिया का पापरूप अमूर्त वस्तु के लिये प्रयोग बिम्बाधायक है।

पदपरार्धवक्रता मे काल-वैचित्र्य, कारक-वैचित्र्य, वचन-वक्रता, पुरुष-वक्रता उपग्रह वक्रता, *प्रत्यय-वक्रता का समावेश है। विस्तारभय मे इन सबकी विवेचना* यत्र अनावश्यक है। इनमे बहुधा बिम्ब ही वैचित्र्य का आधायक रहता है। कुन्तक बिम्ब से अपरिचित होने के कारण 'किमपि वैचित्र्यम्' "कामपि शोभाम्" 'अपूर्व चमत्कार' आदि शब्दो से अपनी धारणा को अभिव्यक्त करते रहे हैं।

वाक्य-वक्रता—अथवा वस्तुवक्रता के कुन्तक ने दो भेद किये हैं (1) सहजा, (2) आहार्या। कुछ वस्तुए स्वभावत इतनी सुन्दर होती है कि उनके स्वरूप स्वभाव व क्रियाओ आदि का सहज वर्णन ही *सहृदय का चित्तहारक बन जाता है।*

---

27 त्व रक्षसा भीरु यतोऽपनीता त मार्गमेता कृपया लता मे।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवत्य शाखाभिरावर्जितपल्लवाभि ॥
रघु 13/80,81

स्वाभाव-रमणीय वस्तुओं का सरस वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार कहा गया है। कुन्तक स्वाभावोक्ति को अलंकार्य ही मानते हैं और इसे सहज-वस्तु-वक्रता कहते हैं। 'आहार्यवक्रता' के अन्तर्गत कुन्तक कल्पना द्वारा सृष्ट सादृश्यमूलक अलंकारों का समावेश करते हैं। बिम्ब-विधान में भी सहज स्वाभाविकता व कल्पना की दृष्टि से बिम्ब के दो भेद किये गये हैं (1) लक्षित बिम्ब (2) उपलक्षित बिम्ब। लक्षित बिम्ब-विधान सहजवस्तुवक्रता से पूर्णतः मिलता है। आधुनिक बिम्बवादी प्रस्तुत का सचित्र वर्णन करने वाले लक्षित बिम्ब को ही वास्तविक बिम्ब मानते हैं। आलम्बनगत विभवादिक का सचित्र वर्णन रहसृष्टि के लिये आवश्यक है। उपलक्षित बिम्ब में सादृश्य के आधार पर परोक्ष रूप से भावों को तीव्रता प्रदान की जाती है। स्पष्ट है कि सहज वक्रताव आहार्य-वक्रता-सहजबिम्ब व अलंकृत-बिम्ब के तुल्य है लक्षित व उपलक्षितबिम्बों के लिये इन शब्दों का प्रयोग भी आलोचकों ने किया है।

प्रकरण-वक्रता व प्रबन्ध-वक्रता—कुन्तक ने प्रकरणगत वैचित्र्य व 'प्रबन्धगत वैचित्र्य' के अनेक प्रकार बतलाए हैं। प्राचीन कथा मे मूल को आघात न पहुँचाते हुए नवीन कल्पना उत्थान—जैसे 'रघुवंश' में कालिदास द्वारा 'कल्पित' रघु और कौत्स का प्रकरण' अविद्यमान नवीन प्रकरण की कल्पना—जैसे 'शाकुन्तलम्' मे दुर्वासा के शाप' की कल्पना प्रकरणावक्रता के उदारहण हैं। बिम्बसिद्धान्त में इस प्रकार की कल्पना को प्रकरण-बिम्ब से अभिहित किया गया है। डा. नगेन्द्र ने कुन्तक के उपर्युक्त उदाहरणों को लेकर 'प्रकरण-बिम्ब' व 'प्रबन्ध-बिम्ब' की व्याख्या की है। यह इसी शोध-प्रबन्ध में अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि कुन्तक के 'वक्रकविव्यापार' में जिन प्रणालियों का उल्लेख है, उनमें बिम्ब शब्द का स्पष्ट प्रयोग न होने पर भी बिम्ब की धारणा स्पष्ट निहित है। बिम्बविधान के अनेक रूप शब्द-भेद के साथ 'वक्रोक्ति जीवित' मे प्राप्त हो जाते हैं। बिम्ब-विधान का ही एक वृहत्तर रूप वक्रोक्ति-सिद्धान्त है। किन्तु वक्रता का वर्णन करते समय कुन्तक की दृष्टि केवल चित्रात्मकता पर थी ऐसा नही मानना चाहिये।

ध्वनि सिद्धान्त

ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिपादन आनन्दवर्धनाचार्य ने किया। यह सिद्धान्त बड़ा व्यापक है। इसने काव्य से सम्बन्ध रखने वाले समस्त सिद्धान्तों का तत्व समेट लिया। व्याकरण का स्फोटवाद इनके मूल में है। रसध्वनि, अलंकारध्वनि आदि के रूप में अन्य प्रमुख सिद्धान्तों की मूल बातें भी इसमें समाविष्ट हैं। ध्वनि सिद्धान्त से बिम्ब का घनिष्ठ सम्बन्ध है। ध्वनि काव्य की परिभाषा करते हुए आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है—

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥

(1·13)

जहाँ शब्द और अर्थ अपने स्वरूप को गुणीभूत कर उस अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, जो काव्य का परम रहस्य है। यदि ये शब्द और अर्थ सचित्र हों तो उनमें जो व्यंजना की जाएगी, बिम्ब कहलायेगी। ध्वनि में बिम्ब का मूल भेद यही है कि ध्वनि के मूल शब्दार्थ में चित्रात्मकता की शर्त नहीं है, यद्यपि प्रायः चित्रात्मकता रहने पर ही व्यंग्य काव्य में सौन्दर्य आता है।

लक्षणा व बिम्ब—ध्वनि सिद्धान्त शब्दशक्तियों पर आधारित है। इनमें लक्षणा तथा व्यंजना से बिम्ब का सीधा सम्बन्ध है। लक्षणा और व्यंजना दोनों बिम्ब-विधान करती हैं। प्रत्येक लक्ष्यार्थ एक प्रकार का बिम्ब होता है। लक्षणा में मूर्त विधान की सहजक्षमता है। अतः बिम्बविधान इसका स्वाभाविक गुण है। जब हम कहते हैं 'सिर पर क्यों सवार हो' तो हम अमूर्त नैकट्य-भाव को ही इन्द्रियगम्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। 'गंगायां घोषः' में 'गंगायां' से घोष की अति निकटता का भाव उभर आता है। भाषा को चित्रमय बनाने के लिये कवि प्रायः लक्षणा का आश्रय लेते हैं। यथा—'उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एवकलितानि' में 'उपदिशति' क्रिया यौवनमद के साथ बाधित होकर प्रकाशन रूप अर्थ को लक्षित करती है। किन्तु इसका प्रयोजन है 'यौवनमद' के अमूर्त भाव को प्रत्यक्ष करना, जो सचेतन क्रिया 'उपदिशति' की संगति से चेतन की भाँति अनुभवगम्य हो जाता है। अथवा 'सामने देखा, खड़ा था अस्थिपंजर एक' में लक्षणा से अस्थिपंजर के बिम्ब द्वारा अमूर्त दुर्बलता को इन्द्रियग्राह्य बना दिया गया है।

गौणी लक्षणा में सादृश्य का आधार होने से स्वतः बिम्बनिर्माण होता है। 'सारोपा' 'साध्यवसाना' के प्रसंग में शब्द की बिम्बविधायिनी शक्ति का ही विवेचन मिलता है। ये दोनों स्थितियाँ रूपक व रूपकातिशयोक्ति अलंकार की मूल हैं, जिनमें प्रायः बिम्ब बनते हैं।

तथापि लक्षणा और बिम्ब पर्याय नहीं हैं। अतः बिम्ब में मूर्तता होना आवश्यक है, लक्षणा अमूर्त भी हो सकती है। संक्षेप में लक्षणा बिम्बविधान का अत्यन्त समर्थ उपकरण है—बिम्ब के निर्माण में उसका प्रायः योग रहता है, परन्तु लक्ष्यार्थ और बिम्ब में ऐकात्म्य नहीं है। बिम्ब बिना लक्षणा के भी रह सकता है।

बिम्ब और व्यंजना—व्यंजना शक्ति से भी प्रायः बिम्ब-विधान होता है। व्यंजना के लिये बिम्ब के माध्यम का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि वस्तु को दृश्य रूप में प्रस्तुत करना व्यंजना में अनिवार्य नहीं है, वहाँ सांकेतिकता से भी काम लिया जाता है। बिम्ब प्रायः व्यंग्य होते हैं। व्यंग्यार्थ स्वयं भी बिम्ब रूप होता है। 'सूर्यास्त हो गया' वाक्य से विभिन्न श्रोता जो विभिन्न अर्थ ग्रहण करते हैं, उनके अलग अलग बिम्ब होते हैं जैसे सन्ध्यावन्दन का बिम्ब, अभिसार का बिम्ब आदि। किन्तु व्यंग्यार्थ सदैव बिम्ब रूप नहीं होता। रिचर्ड्स ने इन बिम्बों

को स्वच्छन्द बिम्ब कहा है। निम्नांकित उदाहरणों से व्यंजना व बिम्ब का सम्बन्ध स्पष्ट देखा जा सकता है—

> सुदत्यनार्द्रमनाः स्वधूर्मा गृहभरे सकले।
> क्षणमात्रं यदि सन्ध्यायां भवति वा न वा भवति विश्रामः॥

व्यंजना का यह प्रसिद्ध उदाहरण किसी स्पष्ट बिम्ब पर आश्रित नहीं है। इसके विपरीत 'एववादिनि देवर्षौ' आदि पूर्वोक्त उदाहरण में व्यंजना स्पष्ट व सुन्दर बिम्ब पर आधारित है। अत. यह स्पष्ट हुआ कि व्यंजना बिम्बात्मक होती है पर सर्दैव नहीं। इसी प्रकार बिम्ब से जब विवरणात्मक शैली में प्रकृति आदि का वर्णन रहता है, अभिधा ही प्रधान रहती है, व्यजना नहीं।

स्फोट और बिम्ब—ध्वनि का जो मूल आधार है स्फोट सिद्धान्त उसकी कल्पना बिम्ब की मूल कल्पना से पर्याप्त मिलती जुलती है। स्फोट का अर्थ है 'स्फुटति अर्थ यस्मात् स स्फोटः।' इसकी कल्पना पदार्थ के सम्बन्ध में की गई है। पद वर्णों का समूह होता है। इसमें पूर्व पूर्ववर्णानुभवजनित संस्कार से सहकृत अन्त्यवर्ण के स्वर्ग से तिरोभूत वर्णों को भी ग्रहण करने वाले एक मानसिक पद की प्रतीति उत्पन्न होती है। इसी का नाम पद स्फोट है। इसी प्रकार पूर्वपूर्वपदानुभव जनित सस्कार सहकृत अन्त्यपद श्रवण से अनेक पदावगाहिनी जो मानसी वाक्य प्रतीति होती है, वैयाकरण उसे वाक्यस्फोट कहते हैं।[28] स्फोट की यह धारणा बिम्ब धारणा के समान है। डा. नगेन्द्र के शब्दों में स्फोट की कल्पना बिम्ब के मूलरूप के काफी निकट है। प्रत्येक सार्थक शब्द के द्वारा-अथवा वाक्य के द्वारा, जो बिम्ब स्फुटित होता है वह वैयाकरणों के स्फोट से भिन्न नहीं है—और प्रत्येक काव्योक्ति के द्वारा जिस काव्यबिम्ब की उद्बुद्धि होती है, उसका अन्तर्भाव भारतीय-काव्य-शास्त्र की ध्वनि में अनायास किया जा सकता है।[29]

ध्वनि के अनेक भेद-प्रभेद, जो वर्ण, पद, पदैकदेश, वाक्य व प्रबन्ध तक की समस्त चारुताओं का विश्लेषण करते हैं, बिम्ब के अनेक भेदों में मिलते हैं। अनेक प्रकार के ध्वनि सौन्दर्य का मूलकारण बिम्बात्मकता है। वक्रोक्ति के प्रसंग में इस प्रकार के चारुत्वनिबन्धन का विश्लेषण किया जा चुका है। विस्तार व पुनरुक्ति के भय से यहाँ उल्लेख करना उचित नहीं होगा। केवल इतना ही कहना है कि जिस विश्लेषण-विपर्यय का उल्लेख बिम्बवाद में बारम्बार किया जाता है, उसका संकेत भी ध्वन्यालोक में मिलता है। 'अविवक्षित वाच्य' के 'अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य' प्रभेद में पदप्रकाशता के उदाहरण देते हैं—

---

28 द्रष्टव्य का 'काव्य प्रकाश'—आचार्य विश्वेश्वर की टीका, पृष्ठ 29–30.
29 'काव्यबिम्ब', पृष्ठ 43

'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिनाम्' यहां व्याख्या है—माधुर्य रस वाचक मधुर शब्द आकृति अर्थ मे बाधित होकर सर्वानुरंजकत्व रूप अर्थ को लक्षित करते हुए अतिशय कमनीयता को व्यक्त करता है। वास्तव मे आकृति चक्षु का विषय है और माधुर्य जिह्वा का विषय है। चक्षु-विषय के लिये स्वाद से सम्बन्धित विशेषण विपर्यय द्वारा बिम्बाधायक है। आधुनिक हिन्दी कविता मे विशेषण-विपर्यय का यह चमत्कार खूब लोकप्रिय है। नील-झंकार, गीला-गान, सुरीले अधर, नीरव-नयन, नीली-चुप्पी आदि प्रचलित बिम्ब हैं।

ध्वनि-सिद्धान्त की एक मान्यता और बिम्ब के निकटस्थ है। यह निकटता शब्द व वर्ण चमत्कार के बारे मे है। आनन्दवर्धन सरस वर्णन, मुख्यत ध्वन्यङ्गभूत शृंगार के प्रसंग म शब्दालंकारो-मुख्यत यमक के अति प्रयोग का निषेध करते हैं। शब्दालंकारो को वह 'अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य' रूप म ही मान्यता देते है।[30] बिम्ब-विधान म भी भाषागत शाब्दिक चमत्कार बाधक माना गया है। रस व भाव का आस्वादन करते समय, पाठक का ध्यान, जो तत्त्व दूसरी ओर हटाते हो, वे बिम्ब मे भी त्याज्य है।

ध्वनि सिद्धान्त मे 'रस-ध्वनि सर्वश्रेष्ठ मानी गई है, बिम्ब मे भी भाव व संवेग को प्रमुखता दी गई है।

रस सिद्धान्त—काव्य मे प्रभाव को महत्त्व देने वाला सिद्धान्त रस-सिद्धान्त है। इसका महत्त्व प्राचीन व नवीन सभी आलोचको ने स्वीकारा है। रस के प्रथम विवेचक भरत व प्रथम प्रयोक्ता वाल्मीकि है। बिम्ब की रस-सिद्धान्त से निकटता है। बिम्ब के बिना रस-निष्पत्ति असम्भव है। रस मे बिम्बात्मकता के महत्त्व को आधुनिक हिन्दी आलोचक रामचन्द्र शुक्ल व डा नगेन्द्र ने स्पष्ट शब्दो मे स्वीकारा है।[31] रस एक अमूर्त एव सूक्ष्म तत्त्व है। इस सूक्ष्म की अभिव्यक्ति के लिए स्थूल व मूर्त का सहारा लेना पडता है। रस को अपनी सूक्ष्मता प्रेषणीय बनाने के लिये मूर्त माध्यमो का प्रयोग करना पडता है, यह माध्यम बिम्ब ही है। रस या भाव कथन से प्रकट नही होते, वे व्यंजित होते हैं। भाव का जन्म मूलत भी कवि के हृदय मे मूर्त अथवा गोचर रूप मे होता है, जैसे क्रौंचवध को देखकर ही वाल्मीकि के मन मे करुणा का भाव जन्म लेता है। पाठक भी भाव की उसी प्रकार अनुभूति कर सके, इसके लिए कवि को भी भाव की अभिव्यक्ति मूर्त बनाकर प्रस्तुत करनी होती है। यह गोचरता बिम्ब द्वारा ही सम्भव है।

---

30 यथा—रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धशक्यक्रिया भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य सोऽलङ्कारो ध्वनौ मत ॥ (ध्वन्यालोक 2 16)

31 'रसमीमांसा' डा रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 119–120 व 358 एव 'काव्य-बिम्ब' डा नगेन्द्र पृष्ठ 52–53

रस की कल्पना दृश्य-काव्य को ही दृष्टि में रखकर की गई थी। इसका कारण यही है कि नाटक चित्रवत् व इन्द्रियगोचर होता है। इस चित्रवता के कारण ही वामन दृश्य काव्य को श्रेष्ठ वताते हैं। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' में चित्रवत्ता का महत्त्व स्वीकार करके विम्ब के महत्त्व की स्वीकृति है। यह चित्रात्मकता ही दृश्यकाव्य में रसानुभूति में सहायक होती है। दृश्यकाव्य में हम वस्तु का अपनी स्थूल इन्द्रियों से प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, अर्थात् आँख, कान, नाक से देखते, सुनते व सूँघते हैं। श्रव्यकाव्य में यह प्रत्यक्षीकरण स्थूल इन्द्रियों से न होकर सूक्ष्म इन्द्रियों से होता है। यदि सही चित्रात्मकता श्रव्यकाव्य में उत्पन्न कर दी जाये तो वहाँ भी रसानुभूति हो सकती है। यह चित्रात्मकता ही विम्बविधान है।

रस-सिद्धान्त में विम्ब शब्द का, यद्यपि, उल्लेख नहीं है, किन्तु, प्रत्यक्षीकरण, 'मानस-साक्षात्कार' आदि शब्दों से उसकी आवश्यकता का अनुभव किया गया है। आचार्य अभिनवगुप्त ने विम्ब समृद्ध 'ग्रीवाभंगाभिरामम' का उद्धरण देते हुए कहा है—

'तस्य च ग्रीवाभंगाभिरामम्——इत्यादि वाक्येभ्यो वाक्यार्थ-प्रतिपत्तेरनन्तरं मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतीतिरुपजायते।[32]

रसानुभूति में विम्बात्मकता की आवश्यकता को सभी आलोचक स्वीकार करते हैं। भट्टतौत ने श्रव्यकाव्य मे प्रत्यक्षवत्ता के गुण को बड़ा आवश्यक माना है।[33] कुशल कवि अपने वर्णन के माध्यम से सहृदय के सम्मुख मानो चित्र ही उपस्थित करता है अतएव नाट्य जैसी चित्रमयता होने पर काव्य में रसोद्बोध सम्भव हो सकता है। यही कारण है कि रससिद्ध कवि वाल्मीकि, कालिदास, वाणभट्ट आदि की रचनाएँ सुन्दर विम्बों से भरी पड़ी हैं। रस और विम्ब का यह सम्बन्ध एक उदाहरण द्वारा और स्पष्ट देखा जा सकता है। 'ध्वन्यालोक' के चतुर्थोद्योत' में दो समानार्थक श्लोक प्रस्तुत किये गये हैं—

(1) एवं वादिनि देवर्षौ पितुरधोमुखी,
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती॥

(कु. स. 6·84)

(2) कृते वरकथाऽऽलापे कुमार्यः पुलकोद्गमैः।
सूचयन्ति स्पृहामन्तर्लज्जयाऽवनताननाः॥

(प्राचीन श्लोक)

इन दोनों पद्यों में रसभाव की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर है, यद्यपि अर्थ एक ही है। आनन्दवर्धनाचार्य कहते हैं—अत्रश्लोके (द्वितीये) स्पृहालज्जयोः शब्दवाच्यत्वेन

32. 'अभिनव-भारती' अभिनवगुप्त, पृष्ठ 279
33. पृष्ठ 9 पर भट्टतौत की उक्ति द्रष्टव्य

तथा न चमत्कारिता यथापूर्वश्लोके पितृपार्श्वस्थितिपूर्वकलीलाकमलदलाकलन-व्याजेन वदननयनलक्षणानुभावमुखेन व्यज्यमानयोर्गिति ध्वनियोगेन तस्यापूर्वार्थक-त्वमवसेयम् ।'

इन दोनों श्लोकों में प्रथम में सुन्दर ध्वनि व दूसरे में स्वशब्दवाच्यत्व रूप दोष का कारण बिम्ब की सत्ता और उसका अभाव है । प्रथम श्लोक में लज्जा, सकोच, प्रसन्नता आदि का वर्णन बिम्ब रूप में किया गया है, दूसरे में शब्दों में । इसके अतिरिक्त दूसरे श्लोक में सामान्य रूप से कन्याओं का उल्लेख होने से बिम्ब नहीं बनता, क्योंकि बिम्ब बनता सदा विशेष का ही आता है, सामान्य का नहीं । भाव व रस की सिद्धि हेतु बिम्ब की आवश्यकता इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है । अतः वह सकते हैं कि "यदि रस साध्य है तो बिम्ब उसका साधन, काव्यात्मक बिम्ब किसी भी कविता की वह अन्त शक्ति है जिसके कारण रसनिष्पत्ति एव रसास्वाद सभव हो पाता है और रसास्वादन की प्रक्रिया पूर्ण हो पाती है ।[34]

रसपरिपूर्ण कोई भी स्थल हम लेकर देखें तो यह तथ्य सामने आएगा कि बिम्ब वहाँ अवश्य विद्यमान है । रसों के उदाहरण रूप में प्रस्तुत प्रसिद्ध काव्य शास्त्रियों के ग्रंथों में पद्य लेकर देखें तो ज्ञात होगा कि विभाव अनुभाव-व्यभिचारी का प्रयोग बिम्ब रूप ही होता है । यथा-मम्मट व विश्वनाथ द्वारा उद्धृत सयोग शृगार के निम्न उद्धरण को लें—

> शून्य वासगृह विलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्छनै
> निर्व्याजमुपागतस्य सुचिर निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम ।
> विस्रब्ध परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीम्
> लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिर चुम्बिता ।।

(अमरुक-शतक, उद्धृत काव्यप्रकाश उदा 30)

यहाँ शृगार का सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया गया है, जिसमें आलम्बन, उद्दीपन अनुभाव, संचारिभाव मिलकर एक सुन्दर शृगार-बिम्ब में परिणत हो रहे हैं । अथवा बीभत्स के निम्न उद्धरण में—

> उत्कृत्योत्कृत्य कृत्ति प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा-
> न्यसस्फिक्पृष्ठपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।
> आर्त्त पर्यस्तनेत्र प्रकटितदशन प्रेतरक करङ्का-
> दङ्कस्थादस्थिसस्थ स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ।

(मालतीमाधव 5/16)

---

34 'काव्यात्मक बिम्ब' ले ग्रगौदी ब्रजनन्दन प्रसाद पृ 215

सहृदय सामाजिक के स्थायिभाव जुगुप्सा को श्मशान के सचित्र वर्णन द्वारा ही उद्बुद्ध किया गया है। इस बिम्बात्मकता के कारण ही वीभत्स की रसानुभूति हो रही है।

अब हम संक्षेप में विभाव, अनुभाव आदि में बिम्ब की सत्ता को पृथक्-पृथक् रूप में देखने का प्रयास करते हैं—

विभाव—आलम्बन व उद्दीपन दोनों ही बिम्ब के निकट हैं। आलम्बन विभाव तो चित्रमय रूप में ही प्रस्तुत करना होता है डा. रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, 'रस के संयोजक जो विभाव आदि हैं, वे ही कल्पना के प्रधान क्षेत्र हैं। विभाव वस्तु चित्रमय होती है। अतः जहाँ वह वस्तु श्रोता या पाठक के भावों का आलम्बन होती है वहाँ उसका अकेला पूर्ण चित्रण ही काव्य कहलाने में पूर्ण समर्थ हो सकता है। विभाव का मुख्य प्रयोजन विशिष्ट ज्ञान कराना है। वह सामान्य वस्तु को विशेष बनाकर, पाठक या श्रोता के भावों का आलम्बन बनाता है। सामान्य का यह विशिष्टत्व बिम्ब द्वारा ही प्रतिपादित होता है'।[35] कालिदास व वाल्मीकि के प्रकृति-वर्णन जहाँ आलम्बनरूप में हुए हैं, बिम्बात्मक होने के कारण ही रसात्मकता से युक्त हैं। नायक-नायिका का प्रस्तुतीकरण भी सचित्र रूप में होने पर ही पाठकों की भावनाओं का आलम्बन बनता है। अपितु ऐसा देखा जाता है कि यदि आलम्बनगत नायिका या नायक का वर्णन सुन्दर बिम्ब-रूप में किया जाय तो अकेला विभाव भी रस की सिद्धि में सहायक हो सकता है।

मम्मट और विश्वनाथ दोनों ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के सम्मिलन से ही रसोत्पत्ति होती है, तो उनमें से एक के अथवा दो के ही होने पर रसोत्पत्ति कैसे हो सकती है ? विश्वनाथ 'मालविकाग्निमित्रम्' से आलम्बनरूप विभाव मालविका का निम्न चित्र इस सम्बन्ध में उद्धृत करते हैं—

> दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहू नतावंसयो:
> संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव।
> मध्यः पाणिमितो नितम्बिजघनं पादावुदग्राङ्गुली
> छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः सृष्टं तथास्या वपुः॥

यहाँ मालविका के प्रेमी अग्निमित्र ने अपनी आँखों में बसे हुए रूप को मानो ज्यों की त्यों पाठक के नेत्रों में उतार दिया है। यहाँ एक मात्र आलम्बन विभाव का वर्णन रसोद्बोध में कैसे समर्थ हो गया ? जबकि रस विभाव, अनुभाव व व्यभिचारी के संयोग से निष्पन्न होता है। विश्वनाथ ने इस प्रश्न का समाधान दिया है

---

35 'रसमीमांसा' पृष्ठ 119

'झटित्यन्यसमाक्षेपे' कि यहाँ 'अग्निमित्र के नेत्रविस्फार' आदि अनुभाव और औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भावों का शीघ्र समावेश हो जाता है अर्थात् पाठक स्वयं कल्पना कर लेता है। प्रस्तुत लेखिका के मत से यह कोई उचित समाधान नहीं है। यदि अन्य का समाक्षेप स्वतः हो जावे तो अन्य स्थानों पर भी उनके वर्णन का क्या औचित्य है? वस्तुतः यहाँ केवल विभाव का वर्णन भी, जो रसास्वाद कराने में समर्थ हुआ है, उसका कारण वर्णन की सुन्दर बिम्बात्मकता है। मम्मट ने भी यहाँ अनुभाव-मात्र के वर्णन व व्यभिचारी मात्र के वर्णन के जो उदाहरण दिये हैं व भी सचित्र भाषा में होने के कारण स्पष्ट बिम्बों की सृष्टि करने वाले हैं और चित्रात्मकता के कारण ही पाठक को रसमग्न कर देते हैं।

अतः कह सकते हैं कि विभाव आदि का वर्णन जब स्पष्ट व भावमय बिम्बों में प्रस्तुत किया जाता है तो वह अकेला भी रससृष्टि में समर्थ हो सकता है।

उद्दीपन—इसके अन्तर्गत मुख्यतः देशकाल व आलम्बन की चेष्टाएँ आती हैं। आलम्बन के हाव, भाव, गुण आदि का वर्णन तो आलम्बन के साथ ही अभिन्न रूप से हो जाता है। वस्तुतः तटस्थ रूप देश काल आदि प्रकृति व परिस्थिति का चित्रण ही उद्दीपन का यथार्थ रूप है। उद्दीपन का वर्णन अधिकांश में बिम्बात्मक होता है। उसके अन्तर्गत रूप, रस, गन्ध आदि के सुन्दर उद्दीपन चित्र उपस्थित रहते हैं, जो भावोत्कर्ष करने वाले तो होते ही हैं, चित्रधर्म से भी युक्त रहते हैं। 'कुमारसंभव' के तृतीय सर्ग का वसन्त वर्णन इसी प्रकार का है। विश्वनाथ का निम्न, उद्दीपन विभाव रूप में प्रस्तुत, प्रकृति दृश्य भी मूर्तता से समृद्ध है—

> करमुदयमहीधरस्तनाग्रे गलिततमः पटलांशुके निवेश्य।
> विकसितकुमुदेक्षणं विचुम्बत्ययममरेशदिशो मुखं सुधांशुः॥

यहाँ पूर्वादिशा में उदित चन्द्र को पूर्व दिशा रूपी नायिका में प्रेमरत नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रूपक को पुष्ट करने के लिये 'करमुदय' 'गलिततमः' व 'विकसित' आदि तीन अवान्तर चित्र और प्रस्तुत किये गये हैं। कुल मिलाकर यह शृंगार का उद्दीपक चित्र है।

उद्दीपन सदैव बिम्ब रूप में हो यह आवश्यक नहीं है। यह संकेत रूप में भी हो सकता है। यथा—रौद्र रस में शत्रु के वचन ही परम उद्दीपक का काम किया करते हैं।

अनुभाव—आश्रय के हृदयस्थ भावों के व्यक्त रूप अनुभाव कहलाते हैं। ये सहृदय को उस भाव का विशेष भावन कराते हैं 'अनुभावो विकारस्तु भावसूचनात्मकः' भावन कराने का तात्पर्य है—साक्षात्कार कराना।

इस प्रकार अनुभाव अमूर्त अनुभूत भावों के व्यक्त मूर्त स्वरूप हैं। बिम्ब भी अमूर्त भाव का मूर्त स्वरूप होता है। अतः इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शब्द-वाच्य

में यदि अनुभावों को बिम्ब रूप न प्रस्तुत किया जाय, तो शब्दों से कहना पड़ता है, और यह 'स्वशब्दवाच्यत्व' दोष बन जाता है तथा रस-सिद्धि में बाधक होता है। आगे कालिदास के भावात्मक बिम्बों में इनके उदाहरण देखे जा सकते हैं।

व्यभिचारी भाव—रस-सिद्धि में समय-समय पर उदितास्त होने वाले अस्थिर भावों को व्यभिचारी कहा जाता है। इनका वर्णन भी काव्य में अन्य भावों की भाँति बिम्ब रूप में ही मान्य है। यथा दैन्य संचारी का यह वर्णन—

वृद्धोऽन्धः पतिरेष मंचकगतः स्थूणावशेषं गृहं
कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापिनो।
यत्नात्साचेततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति॥[36]

यहाँ पुत्रवधू की चिन्ता से दुःखी सास की दीनता का चित्रण अनेकानेक बिम्ब के माध्यम से ही किया गया है।

इसी प्रकार भाव, भावोदय, भावसन्धि आदि सदैव बिम्बों से व्यंजित होते हैं, यह कालिदास के बिम्बों की व्याख्या में स्पष्ट किया जायेगा। बिम्ब की परिभाषा में स्पष्ट किया गया है कि बिम्ब भाव से जन्म ग्रहण करता है। बिम्ब का अनिवार्य तत्त्व भाव है। रस में भी भाव की सत्ता अनेक प्रकार से विद्यमान है। इसलिये रस की सत्ता में बिम्ब अनिवार्य रूप से उपस्थित हो जाता है।

औचित्य सिद्धान्त

औचित्य बड़ा व्यापक तत्त्व है, इसका जीवन के हर क्षेत्र में महत्त्व है। क्षेमेन्द्र की सम्पति में रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवन औचित्य ही होता है—

'औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम्। इस प्रकार उनकी सम्मति मे रस ही काव्य का सिद्ध है, औचित्य की उसमें आवश्यकता है। औचित्य ध्वनि, वक्रोक्ति की भाँति कोई पृथक सिद्धान्त नहीं है। जैसे रस, अलंकार आदि में औचित्य की आवश्यकता है, बिम्ब में भी औचित्य गुण अनिवार्य है। औचित्य-भेदों में परिगणित पद वाक्य अलंकार, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण आदि अनेक प्रकार के औचित्य का मर्म यही है कि इस औचित्य से प्रस्तुत का बिम्ब सम्यक् स्पष्ट हो सके।

अन्त में हम कह सकते हैं कि यद्यपि भारतीय आलोचना मे आलोचकों की दृष्टि सीधी मूर्तता पर नहीं रही किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से बिम्ब के महत्त्व को आलोचना में स्वीकार किया गया है। ध्वनि, वक्रोक्ति में इसकी संभावना निहित

---

36 'साहित्यदर्पण' पृ. 193

है व रस-सिद्धान्त काव्य में बिम्बात्मकता पर ही आश्रित है। इस प्रकार बिम्ब सिद्धान्त कोई एकदम नया सिद्धान्त नही है। प्राच्य और पाश्चात्य मनीषाएं कहीं न कहीं परस्पर टकराती ही हैं। बिम्ब काव्य का एक प्रमुख तत्त्व है जो देश, काल और जाति की सीमाओं से मुक्त काव्य में प्राण प्रतिष्ठा का कारण रहा है।'

संस्कृत कवियों की समीक्षा में बिम्ब-सिद्धान्त को अभी तक विस्तृत आधार नही बनाया गया है। नया विषय होने के कारण प्रथम व द्वितीय अध्याय में इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया। इस ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य कवि कालिदास के बिम्बों की विवेचना है जिनका अध्ययन स्रोतों, संवेदनाओं, भावों एवं शिल्प साधनों के आधार पर अगले अध्यायों में प्रस्तुत किया जायेगा।

3

कालिदास के बिम्बों के स्रोत—प्राकृतिक क्षेत्र

वर्ण्य-विषय के सार्थक अभिव्यंजन के लिये कवि बिम्बों का प्रयोग करता है। साहित्य-सर्जना में बिम्ब-विधान का स्वरूप बहुत कुछ कवि या लेखक के अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। इस प्रकार बिम्ब कवि के व्यक्तित्व के प्रकाशक है। कवि उन्हीं वस्तुओं को बिम्ब, उपमान या सादृश्य आदि के लिये प्रस्तुत करता है, जिनसे वह जीवन मे प्रभावित हुआ है। अतः बिम्ब के स्रोतों के आधार पर कवि के प्रिय विषय जाने जा सकते है। कथानक के बन्धन मे बधा होने पर भी कवि उन वस्तुओं या दृश्यो के वर्णन का अवसर निकाल लेता है, जो उसे बहुत प्रभावित करते है। अप्रस्तुत बिम्बो के रूप मे तो जाने-अनजाने कवि के अन्तर्मन में बैठे संस्मरण, अनुभव प्रकाश पाते ही रहते हैं।

कालिदास का बिम्ब-ग्रहण क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। उन्होंने जिन वस्तुओं को बिम्ब का विषय बनाया है, उनको सुविधा के लिये दो वर्गो मे विभाजित कर सकते है—

(क) प्रकृति (ख) मानव-जीवन

बिम्ब के स्रोतों का अध्ययन एक ही अध्याय मे करना समीचीन रहता, किन्तु कालिदास के बिम्ब-विधान का प्राकृतिक क्षेत्र ही अति विस्तृत है। एक ही अध्याय में सभी स्रोतों को रखने से अध्याय का आकार बहुत बड़ा हो जाता। अतः स्रोतों को दो अध्यायों में रखा गया है। तृतीय अध्याय मे प्राकृतिक व चतुर्थ अध्याय मे शेष स्रोतों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अतः इस अध्याय में कालिदास के प्रकृति-सम्बन्धी बिम्बों की समीक्षा का प्रयास किया जायेगा।

प्रकृति के अनन्य प्रेमी होने के कारण कालिदास ने बिम्ब-योजना में सबसे बड़ा आधार प्राकृतिक उपादानों का ही लिया है। अध्ययन की सुविधा के लिये प्राकृतिक बिम्बो मे उपात्त वस्तुओं को निम्न वर्गो मे विभाजित कर सकते है—

(1) ऋतु और वेला

(2) जलीय

(3) आकाशीय

(4) पार्थिव

(5) वायव्य
(6) तैजस
(7) पशु-पक्षी व अन्य जन्तु
(8) अन्य स्रोत

इन वर्गों के अन्तर्गत पहले गृहीत वस्तुओं के प्रत्यक्ष बिम्ब तत्पश्चात् अप्रत्यक्ष (सादृश्य पर आधारित) बिम्बों का विश्लेषण किया जायेगा।

ऋतु और वेला

कालिदास के बिम्बों की विशेषता उनकी संश्लिष्टता है। वे जो भी चित्र खींचते हैं आसपास के समस्त परिवेश को लेकर। अतः परिवेश के विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए सर्वप्रथम ऋतु एवं काल—प्रातः सन्ध्या, रात्रि आदि के बिम्बों का विश्लेषण उचित होगा। ऋतु वर्णन में ऋतु विशेष के प्रातः, सायं, पशु-पक्षी सर-सरिता, पुष्प-वृक्षादि अनेक अंगों का प्रसंग से वर्णन आएगा एवं उनके बिम्ब भी आएँगे। अतः सर्वप्रथम षड्ऋतुओं के बिम्ब लेते हैं।

भारत में सभी ऋतुओं का राज है। क्रमशः परिवर्तित होती ऋतुओं में प्रकृति नटी का पल-पल परिवर्तित स्वरूप कालिदास ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है और तदानुसार ही प्रत्येक सूक्ष्म विवरण के साथ उसका बिम्बग्राही वर्णन किया है। सभी ऋतुओं के सुन्दर बिम्ब कालिदास की रचनाओं में मिल जाते हैं। 'ऋतुसंहार' तो ऋतु-शोभा का ही अल्हड़ गान है। यहाँ कवि ने अनुसार ग्रीष्म से ही प्रारंभ करते हैं।

ग्रीष्म—कालिदास ने ग्रीष्म का वर्णन विस्तार से किया है। जिसमें कुछ वर्णन तो बिम्ब विधान के उत्कृष्ट नमूने हैं। 'ऋतुसंहार' में कवि ग्रीष्म के आविर्भाव से प्रारंभ कर दावाग्नि का वर्णन करते हुए ग्रीष्म के चरम असहनीय रूप से समाप्त करते हैं। सूर्य ऋतु-व्यवस्था में मुख्य कारण होता है, इसलिये प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में ही कवि ग्रीष्म के महत्त्वपूर्ण बिन्दु का तपता दिन, अपेक्षाकृत ठण्डी शाम का उल्लेख करता है—

> प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमा
> सदावगाहक्षतवारिसंचयः।
> दिनान्तरम्यो ऽभ्युपशान्तमन्मथो
> निदाघकालो ऽयमुपागतः प्रिये॥

सरल शब्दों में ग्रीष्म ऋतु का चित्र कवि ने सहसा सामने रख दिया है, जो सजीव व सम्पूर्ण है। सूर्य की प्रचण्डता, चन्द्रमा की स्पृहणीयता, सदावगाहन से विलोड़ित जलाशय, सन्ध्या की रमणीयता, ये ही वे बिम्ब हैं, जो ग्रीष्म के पूरे चित्र को नेत्रों के सामने मूर्त कर देते हैं। इसी प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रारम्भ में कवि ने ग्रीष्म का चित्र दिया है—

सुभगसलिलावगाहाः पाटलससर्गिसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥

(अभि. 1·3)

यहा उपयुक्त विशेषणों द्वारा ही कवि ने ग्रीष्म का चित्र प्रस्तुत किया है। 'सुभग.' आदि पद से ग्रीष्मदिवसों का जलक्रीडा योग्यत्व, 'पाटल.' आदि से वायु का मंद, सुगन्धित रूप, अतएव सुख-स्पर्शत्व. 'प्रच्छाय:' आदि से श्रम-हरत्व व अन्तिम विशेषण से सन्ध्या का शोभाशालित्व अभिव्यक्त किया गया है।

ग्रीष्म ऋतु का प्राणियो पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका भी कवि ने वर्णन किया है। 'निशाएँ' चन्द्रकिरणों से विनष्ट अन्धकार वाली दिखाई देती है, कहीं भवनों में रंगविरंगे फव्वारे चल रहे है, ठंडक के लिये लोग मणियों व सरस चन्दन का सेवन कर रहे है।[1] चांदनी रात में कालिदास के स्वर्णयुगीन सुखी लोग छतों पर सुवासित जलो का छिड़काव कर संगीत, वाद्य, मदिरापान आदि आमोद प्रमोद मे मग्न है।[2] 'मधु-यामिनी' व 'सगीत-यामिनी' का आनन्द ग्रीष्म मे छतों पर देखने को मिलता है। भवनो की छतों पर सुख मे सोई नारियों के मुख रात्रि भर निहारता निहारता, चन्द्रमा अत्यन्त उत्कण्ठित हो जाता है और रात्रि बीतते बीतते लज्जा से पीला पड़ जाता है।[3] यहाँ चन्द्रमा को एक कामी का रूप दिया गया है। हमारे कवि के लिये प्रकृति अचेतन नहीं है। ग्रीष्म में दिन बड़े भयंकर हो जाते हैं, नागर जन तो धारायन्त्रगृहो एवं समुद्रगृहों में सुख से दोपहर बिताते हैं किन्तु जंगल में जीवजन्तुओं का हाल संभवतः कवि ने स्वयं घूम-घूम कर देखा है। प्रचण्ड गर्मी से हरिण बड़े व्याकुल हो जाते हैं—

मृगाः प्रचण्डातपतापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालवः ।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नांजनसन्निभं नभः ॥

(ऋ. 1·11)

प्राणहारिणी पिपासा से हरिणों के तालु सूख जाते हैं। क्षितिज पर चमकता गहरा नीला आकाश, जल का भ्रम उत्पन्न कर उन्हें 'अटवीतः अटवीम्' दौड़ाता है। 'भिन्नांजनसन्निभं,' पद ने आकाश के गहरे नीले रंग को मूर्त कर दिया है और इस पद की जलभ्रम उत्पन्न करने में उचित भूमिका है। कवि का हरिणों के प्रति सहानुभूति-भाव भी झलकता है। कवि ने उन के तृषा-ताप को भलीभांति समझा है। अन्य जीवों के ग्रीष्म-संताप का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—

1. ऋतु. 112
2. वही 113
3. वही 9

श्वसिति विहगवर्ग शीर्णपर्णद्रुमस्थ ।
कपिकुलमुपयाति क्लान्तमद्रेनिकुञ्जम् ।
भ्रमति गवययूथ सर्वतस्तोयमिच्छञ्
शरभकुलमजिह्म प्रोद्धरत्यम्बु कूपात् ॥ (ऋ 1 23)

यहाँ 'शीर्णपर्णद्रुमस्थ' स ठूठ वृक्षो पर हाफते पक्षियो का चित्र सामने आ जाता है। इसके बाद जब ग्रीष्म का प्रभाव चरम सीमा को छूता है तो जगल मे आग लग जाती है। दावाग्नि का बडा जीता-जागता चित्र युवा कवि ने प्रस्तुत किया है—

विकचवनकुसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा
प्रबलपवनवेगोद्भूतवेगेन तूर्णम् ।
तटविटपलताग्रालिगनव्याकुलेन
दिशि दिशि परिदग्धा भूमय पावकेन ॥ (ऋ 1 24)

यहा 'विकचवन' आदि पद से दावाग्नि के रूप-रग को दृश्य बनाया है - खिले हुए कुसुभी पुष्प व स्वच्छ सिन्दूर के समान लाल लाल आग चमक रही है। प्रबल आँधी मे इधर उधर फैल जाती है। तृतीय चरण मे कवि ने अग्नि का मानवीकरण करके उसे लता व वृक्षादि स आलिगन को तत्पर बताया है। चौथी पक्ति मे दावाग्नि के भीषण सहार को मूर्त किया गया है। गर्मी मे भूमि पर जहाँ तहाँ सूखे डठल, घास आदि जलने मे काले काले पैबन्द से बन जाते हैं। छन्द की गति व समस्त पदो का प्रयोग दावाग्नि की गति का चित्र बनाने मे सर्वथा अनुकूल सिद्ध हो रहे हैं। आगे के श्लोक म जब दावाग्नि लपक लपक कर वस्तुओ को जलाने लगती है, तो एक के बाद एक वस्तु को पकडने म कवि ने छोटे छोटे पदो का प्रयोग किया है।

ज्वलति पवनवृद्ध पर्वताना दरीषु
स्फुटति पटुनिनाद शुष्कवशस्थलीषु ।
प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धि क्षणेन
ग्लपयति मृगवर्ग प्रान्तलग्नो दवाग्नि ॥ (ऋ 1 25)

प्रस्तुत श्लोक मे दावाग्नि के चार रूप प्रस्तुत किये गये हैं। आँधी की सहायता से पर्वत गुफाओ मे घुस जाना, सूखे बासो मे चट-चट करते हुए फूट पडना, घास मे क्षण भर मे पसर जाना और मृगो की दीन दशा। यहाँ 'स्फुटति' व 'प्रसरति' क्रियाएँ बडी समर्थ हैं। भगवत शरण उपाध्याय के शब्दो मे इस दावाग्नि वर्णन मे तो कवि ने आधुनिक 'इमेजिज्म' (बिम्बवाद) का रूप मा खडा कर दिया है।[4]

---

4 'कालिदास के सुभाषित' पृ 37

दावाग्नि के इस विम्बात्मक वर्णन से ज्ञात होता है कि कवि ने प्रकृति के कोमल व सुखकर रूप का ही आनन्द नहीं लिया अपितु भयंकरता को भी आँखें खोलकर देख लिया है।

'रघुवंश' के सोलहवें सर्ग में भी ग्रीष्म का बड़ा हृदयहारी एवं विम्बात्मक वर्णन हुआ है, यद्यपि यह वर्णन विशुद्ध आलम्बन रूप में न होकर उद्दीपन रूप में हुआ है तथा इसमें प्रकृति का मानवीकृत रूप भी देखने में आता है। ग्रीष्मऋतु में सूर्य उत्तरायण हो जाते हैं। उत्तर दिशा कवि के लिये भूगोलवेत्ता की भाँति एक तीर संकेत मात्र नहीं है। सूर्य उसका प्रेमी है। अतः दक्षिण दिशा से सूर्य के पास लौटने पर, उत्तरदिशा ने आनन्द से ठंडी सांस ली—

'आनन्दशीतामिव वाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज'।

ग्रीष्म में हिमालय से पिघलने वाली बर्फ के लिये यह बहुत ही मधुर कल्पना है। इसी प्रकार दिन और रात में कवि को नायक व नायिका का व्यवहार दिखाई देता है—

प्रवृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम ॥ (45)

गर्मी में दिन का ताप बढ़ता जाता है, रात अत्यन्त कृश होती जाती है। परस्पर झगड़ने के बाद पृथक हुए पति-पत्नी की यही दशा तो होनी है। प्रकृति के स्वाभाविक व्यापार के लिए गृहस्थ जीवन का सूक्ष्म चित्रण श्रेष्ठ कल्पना का परिणाम है। ग्रीष्म में जलाशय सूखने लगता है, जिसका वर्णन कवि ने विम्बात्मक भाषा में किया है—

दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुंचदम्भः।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसं बभूव ॥ (46)

प्रतिदिन घटते जल के लिये कवि ने यहाँ तीन विम्ब दिये हैं (1) शैवाल से भरी सीढ़ियों को छोड़ जल का पीछे हटना, (2) कमल की डंडियों का अनावृत हो जाना, (3) स्नानरत नारियों के नितम्ब मात्र पानी में डूबे रहना। इस प्रकार 'रघुवंश' का प्रौढ़ कवि प्रत्येक श्लोक में विम्ब-दर-विम्ब प्रस्तुत करता चला जाता है। डा. भगवत् शरण उपाध्याय इस स्थल की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—'रघुवंश' का कवि भारती का जादूगर है। वर्णनों में उसे किसी प्रकार का आभास नहीं करना पड़ता। नेत्रों के सामने वह सहसा लम्बकूर्च फिरा देता है और चित्र एक के बाद एक दृष्टिपथ पर उछलते जाते हैं, एक 'स्वीप' में दृश्य के पट सहसा खुल पड़ते हैं। ध्वनि की शक्ति इस वर्णन में अद्भुत है।"

ग्रीष्म में चमेली खिल जाती है और चारों ओर सुगन्ध फैल जाती है। भ्रमर उसकी कली-कली पर पैर रखता, गुन गुन करता फिर रहा है। लगता है,

---

21. "कालिदास के सुभाषित" पृष्ठ 37

मानो प्रत्येक को छू छूकर बोल बोलकर गिन रहा हो—एक, दो तीन, चार—

वनेषु सायन्तनमल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषु कुड्मलेषु ।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सशब्दं सख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार ॥ (47)

सामने रखी वस्तुओं की विशेषकर जब वे किसी क्रम में न हों या कतारबद्ध न हों, उंगली रखकर बोल बोलकर गिनना सर्वसंवेद्य अनुभव है। भ्रमर का फूलों को छूते हुए गुन गुन करना भी सामान्य दृश्य है। किन्तु दोनों के आश्चर्यजनक साम्य को महाकवि के अलावा कौन देख सकता है। कवि ने इस सादृश्य से भ्रमर की ध्वनि व विचरण को श्रव्य व दृश्य कर दिया है। इस प्रकार ग्रीष्म के सुंदर बिम्ब कवि की रचनाओं में अन्यत्र भी देखे जा सकते हैं।

वर्षा—ग्रीष्म के बाद वर्षा ऋतु आते ही सारा वातावरण बदल जाता है। प्रत्येक ऋतु का परिवेश भिन्न होता है। तापमान के अलावा हर ऋतु के पत्र पुष्प और फल यहां तक कि पन्नी, कीट पतंग, भी भिन्न होते हैं। ऋतु के परिवर्तन के साथ ही मानव की अनुभूति में भी अन्तर आता है। इन सबका परखने के लिये सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता होती है। कालिदास की दृष्टि इस ग्रंथ *में अत्यन्त व्यापक है और उसकी सामर्थ्य की जितनी प्रशंसा की जाए कम है।*

ऋतु संहार के द्वितीय सर्ग में वर्षा के सुन्दर बिम्ब मिलते हैं। प्रथम श्लोक ही वर्षा ऋतु का राजा से रूपक बांधते हुए कवि ने उसके आगमन की सूचना इस प्रकार दी है—

ससीकराम्भोधरमत्तकुंजरस्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः ।
समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ॥ (2.1)

यहाँ दोहरा चित्रांकन है 'घनागम' व 'नृपागम'। हाथियों जैसे जलधारा छोडते बादल, ध्वजा की भांति चमकती बिजली, नगाडों जैसी गर्जना-यह वर्षा ऋतु का परिवेश है। मेघों की भांति मदजल गिराते हाथी, बिजली जैसी चमकती झंडियां, *मेघगर्जन की भाँति बजते नगाडे, ये राजा के उपचार हैं। वर्षाकाल कामिजनों को* प्रिय है, राजा अपने परिजनों को। यहां पदश्लेष के आधार पर जो सांगरूपक खडा किया गया है, वह एक संश्लिष्ट बिम्ब का आनन्द प्रदान करता है। यह श्लेष बडा प्रसन्न है जो संस्कृत भाषा के लचीलेपन के *कारण संभव हो सका है। यहां दृश्य व ध्वनि दोनों* प्रकार के बिम्ब हैं। 'ससीकरा' आदि विशेषण बडे सार्थक व सचित्र हैं जो प्रस्तुत 'घनागम, को राजा के जुलूस के समान भव्यता प्रदान करते हैं। आगे वैदर्भी रीति का आश्रय ले कवि वर्षा का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं। 'नदियां बह रही हैं, बादल बरस रहे हैं, हाथी चिंघाड रहे हैं वनप्रांत सुशोभित हो रहे हैं, मोर नाच रहे हैं, बानर चैन की सांस ले रहे हैं व प्रियविहीनजन ध्यानमग्न हैं।[6]

वर्षा ऋतु की धरती कवि को एक वरांगना प्रतीत होती है, जो नये-नये घास के अंकुर, केले के हरे हरे पत्तों व लाल बीर-बहूटियों से सजी हुई है—

प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणांकुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः ।
विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता वरांगनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः ॥ (2.5)

यहाँ घास के अंकुरों को वैदूर्यमणि व 'बीरबधूटियों' को शुक्लेतर (लाल) रंग के रत्नों से गोचर कराया गया है।

---

6. ऋतु 2.19

वर्षा का जल टेढ़ा मेढ़ा रास्ता बनाताता हुआ ढालू जमीन पर बह रहा है मानो कोई सर्प लहराकर चल रहा हो। कीड़े मकोड़े धूल और तिनकों को बहाता हुआ पानी मटमैला हो गया है। मेढक उसे सांप समझकर डर रहे हैं।

विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजंगवद्वक्रगतिप्रसर्पितम्
समाध्वसैर्भेककुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम्।

(2.13)

वर्षा-ऋतु में पशु-पक्षियों के आनन्द व विरहिणी स्त्रियों के अवसाद के चित्र भी कवि ने दिये हैं। शृंगार के उद्दीपन रूप में भी वर्षाऋतु के मानव-सापेक्ष बिम्ब 'ऋतुसंहार' में पर्याप्त हैं।[7]

'रघुवंश' में प्रसंगवश तेरहवें सर्ग में वर्षाऋतु के दृश्य मिलते हैं। माल्यवान् पर्वत पर रहते हुए राम, वर्षा-काल आने पर, सीता के विरह में व्याकुल हो जाते हैं। उन्हें पूर्व की स्मृति आती है जब सीता साथ थी। इसी का संकेत करते हुए वे कहते हैं।

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेसरं च।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे॥

(13.27)

वर्षा में तालाबों से सोंधी गन्ध उठती है, कदम्ब की अधखिली कलियों में केसर लगती है, मयूर स्निग्ध स्वर में कूक उठते हैं। यहाँ गन्ध, दृश्य व ध्वनि तीनों के बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं जो स्मृतिबिम्ब के अच्छे उदाहरण हैं। बादल गरजने पर राम को सीता का पूर्वानुभूत परिरम्भ याद आता है। चकवा-चकवी को देखकर सीता के साथ अपने विलास याद आते हैं। जल बरसने में पृथ्वी से उठी भाप और खिली लाल कन्दली की कलियों से सीता के विवाह-धूम से लाल हुए नेत्रों का स्मरण होता है।

'विक्रमोर्वशीयम' में भी वर्षाऋतु का बिम्बात्मक चित्रण हुआ है। उर्वशी के विरह में दुःखी राजा को और दुःखी करने के लिये वर्षाऋतु का आगमन होता है। परन्तु राजा को तो सर्वत्र उर्वशी दिखाई पड़ती है। बादल में बिजली को देख राजा को लगता है, काला राक्षस उसकी प्रिया को ले जा रहा है जब उसका भ्रम टूटता है तब वह देखता है कि -

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम्।
अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी॥ (4.7)

प्रस्तुत उदाहरण में दो चित्र हैं, एक वर्षाऋतु का, दूसरा राक्षस द्वारा उर्वशी के अपहरण का। 'सन्नद्धो' 'दूराकृष्ट' व 'कनकनिकषस्निग्धा' महत्वपूर्ण पद

7. वही 2/15, 16, 8, 22, आदि

हैं जो प्रस्तुत व अप्रस्तुत दोनों चित्रों का निर्वाह करने में समर्थ हुए हैं। सम्भवतः यह कल्पना कालिदास ने वाल्मीकि से ली हो। 'राम की, मेघ के बीच में कौंधती हुई विद्युत ऐसी लगती है मानो सीता रावण के बन्धन में छटपटा रही हो।[8] वाल्मीकि की यह उपमा बहुत ही औचित्यपूर्ण है, मौलिक एवं भावव्यंजक है। सीता के वियोग में राम की यह अनुभूति बड़ी करुणाजनक है।

पुरूरवा को वर्षा काल के चिह्नों में राजा का सारा ठाट-बाट दिखाई देता है। 'बिजली के सोने से मढ़ा मेघ छत्र है, निचुल के पेड़ मञ्जरियों के चंवर डुला रहे हैं। मधुर गान करने वाले मोर भाटों का काम कर रहे हैं और झरनों के मोती भेंट करती पहाड़ियाँ ही प्रजा है'[9]। इस प्रकार वर्षा के वर्णन में कवि ने सुन्दर बिम्बों की रचना की है।

शरद— वर्षा समाप्त होने पर स्वच्छ, सुन्दर शरद् ऋतु आती है। सब कुछ धुल-पुंछ कर साफ हो जाता है। सरिताओं का जल भी स्वच्छ हो जाता है, आकाश निर्मल हो जाता है। 'ऋतुसंहार' के तृतीय सर्ग में कवि ने शरद् का अत्यन्त सजीव व बिम्बात्मक वर्णन किया है। प्रथम श्लोक में ही शरद् का नववधू से रूपक बांधते हुए उसका मोहक चित्र कवि प्रस्तुत करते हैं—

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा
सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या।।

शरद् का जैसा स्पष्ट बिम्ब यहाँ दिया गया है, उससे भिन्न कोई पदावली उसको प्रस्तुत कर ही नहीं सकती। शरद्-सुन्दरी ने काश-कुसुमों के स्वच्छ वस्त्र पहन रखे हैं, खिले पद्म-रूपी मनोहर मुख वाली, उन्मत्त हंसों के कलरव रूप में नूपुर झनकाती, कुछ पकी धान की बालियों जैसी नम्री, पतली, सुन्दर।

शरद् ऋतु के पुष्प काश-कमल आदि हैं, अब दादुर, मोर, पपीहे नहीं, हंसों का मौसम है। धान पकने की ऋतु शरद् है। प्रत्येक ऋतु में तरु-लताएँ भिन्न भिन्न होती हैं, उनके फलने फूलने के समय भिन्न भिन्न होते हैं। इन सबको ऋतु विशेष से जोड़ना हर एक के लिये सम्भव नहीं। कालिदास ने अपने उस अनन्त और सूक्ष्म ज्ञान संचय का लाभ 'ऋतुसंहार' के माध्यम से अपने पाठकों को कराया है। अनेक लोगों ने सीधे प्रकृति के दर्शन से नहीं, 'ऋतुसंहार' के माध्यम से ही कौन कुसुम निश्चय किस ऋतु का दान है (इस बहु उपेक्षित काव्य से ही) सीखा है।'[10]

---

8 नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी।।

9 वि 4/13

10 भगवत्शरण उपाध्याय— कालिदास नमामि'

पूरे तृतीय सर्ग में शरद् का औपम्यमूलक वर्णन है। शरद् ऋतु की लताएँ नारी की कोमल भुजाएँ हैं , अशोक के लाल फूलों में चमकते चमेली के फूल, नारी के लाल होठों के बीच चमकते श्वेत दाँत है। कवि की दृष्टि, मानव से वन पर और वन से मानव पर घूमती रहती है और प्रत्येक का चित्रण इतनी सुन्दरता से किया गया है कि कुशल से कुशल चित्रकार की सामर्थ्य से बाहर है।

शरद् ऋतु में चाँदनी रात, दिन प्रतिदिन दीर्घ होती जाती है जैसे चन्द्रमुखी बाला दिन-दिन शुक्लपक्ष की चन्द्रकला की भाँति बढ़ती जाती है—

तारागणप्रवरभूषणमुद्वहन्ती मेघावरोधपरिमुक्तशशांकवक्त्रा।
ज्योत्स्नादुकूलममलं रजनी दधाना वृद्धिं प्रयात्यनुदिनं प्रमदेव बाला।। (3·7)

रजनी-बाला ने सितारों के उत्कृष्ट आभूषण पहन रखे है। मेघ का घूँघट उसके चन्द्रमुख से हट गया है। चाँदनी का दुकूल उसने धारण किया हुआ है, इस प्रकार सादृश्य के लिये लाया गया सुन्दरी का विम्ब प्रस्तुत शरद् के विम्ब को भव्यता व मनोहरता प्रदान कर रहा है।

शरत्कालीन आकाश की शोभा राजा जैसी दिखाई देती है। रजत, शंख व मृणाल जैसे गौरवर्ण, निर्गताम्बु होने के कारण हल्के फुल्के वायुवेग से इधर उधर हिलते हुए सैकड़ों मेघ, आकाशराज पर चंवर डुला रहे हैं।[11]

शरत्-काल की नदी मदालसा मन्थरगामिनि नारी है (उल्लेखनीय है कि कवि को वर्षा में सवेग बहती नदी यौवन से मदमाती युवती की भाँति प्रतीत होती है।) चंचल श्वेत शफरी समूह ही श्वेत करधनी है, श्वेत हंसमाला कण्ठहार है, विशाल पुलिन-प्रदेश नारी के नितम्ब हैं—

चंचन्मनोज्ञशफरीरसनाकलापाः
पर्यन्तसंस्थितसिताण्डज-पंक्ति हाराः।
नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बबिम्बा
मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य॥ (3·3)

इस प्रकार हम देखते है कि कवि को प्रकृति और मानव में कोई भेद नहीं दिखाई देता। वे प्रकृति में मानव व मानव में प्रकृति के दर्शन करते हैं। नदी का विम्ब प्रमदा के रूप को और प्रमदा का विम्ब नदी के रूप को स्पष्टता व सुन्दरता प्रदान करता है।

'रघुवंश' में वर्षा बीतने पर जब रघु दिग्विजय के लिये प्रस्थान करते है, कवि ने शरद् के सुन्दर चित्र दिये हैं। किन्तु यह वर्णन वीर रस के उद्दीपन रूप में अधिक है, शुद्ध ऋतुवर्णन के रूप में कम। इसीलिये, कवि, शरद् को कभी

11. ऋतु. 3/4

'पार्थिवश्रीद्वितीया' का रूप देते हैं और कभी हसो, तारो व कुमुदो मे रघु की फैली हुई श्वेत कीर्ति को देखते हैं।[12]

हेमन्त—शरदवसान के साथ ही हेमन्त का प्रादुर्भाव होता है। इस ऋतु मे अगहन व पौष के महीने होते हैं, जिनमे अच्छी सर्दी पडती है। 'ऋतुसहार' के चतुर्थ सर्ग मे हेमन्त के मुख्य लक्षण कवि प्रथम श्लोक मे ही स्पष्ट कर देता है—

नवप्रवालोद्गमसस्यरम्य प्रफुल्ललोध्र परिपक्वशालि ।
विलीनपद्म प्रपतत्तुषारो हेमन्तकाल समुपागतोऽयम् ॥

हेमन्त मे गेहूँ जौ आदि के नवांकुरो से चारों ओर बडा सुहावना लगता है। लोध्र का वृक्ष खिल जाता है, धान पक जाता है। कमल पाले मे जलकर नष्ट हो जाते हैं, पर्वतो पर बर्फ गिरने लगती है। हेमन्त के वर्णन मे कवि ने नारियो के प्रसाधन आदि का उद्दीपनात्मक वर्णन किया है। यहाँ कवि का ऐन्द्रियता का मोह चरम सीमा पर पहुँच जाता है और शालीनता व सुरुचि की सीमा को लाघता हुआ प्रतीत होता है।[13]

हेमन्त के तालाबो का सुन्दर व स्पष्ट चित्र कवि ने दिया है—
प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्बविभूषितानि ।
प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि सरासि चेतासि हरन्ति पु साम ॥
(4 9)

हेमन्त मे स्त्रियो के शृ गार का भी 'ऋतुसहार' म बिम्बात्मक चित्रण हुआ है। एक स्त्री हाथ मे दर्पण लिये, प्रात काल हल्की धूप मे बैठी अपने कमल मुख का शृ गार कर रही है और होठो को खीच-खीच कर दन्तक्षतो को देख रही है। कोई अपने सिर से मुरझाई हुई माला उतार रही है और बालो को सवार रही है।[14] उल्लेखनीय है कि ये प्रसग बिम्ब की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तो है किन्तु ऋतु के चित्रो की अपेक्षा यहाँ शृ गार की ही प्रधानता है।

शिशिर—हेमन्त की भाँति शिशिर का चित्रण भी 'ऋतुसहार' मे ही उपलब्ध है। यहाँ भी वर्णन शृ गार के उद्दीपन रूप मे ही अधिक हुआ है। कवि ने ऋतु के जो प्राकृतिक चित्र दिये हैं वे बिम्बात्मक है। शिशिर मे खेत पके धानो व गन्नो से भरे दिखाई देते है। क्रौच पक्षियो का शोर चारो ओर सुनाई देता है—

प्ररूढशालीक्षुचयावृतक्षिति
क्वचित्स्थितक्रौंचनिनादराजितम् ॥ (ऋतु 5,1)

---

12 रघु 4/14 व 19
13 ऋतु 4/69 व 7
14 4 14/16

इस समय रातें ओस गिरने से अति ठंडी हो जाती हैं, तथा चन्द्रमा की किरणें भी इस समय अति शीतल लगती हैं। श्वेत तारों से चारुता के साथ सुशोभित भी रात्रियाँ लोगों की सेव्य नहीं होती।[15]

इन प्राकृतिक चित्रों के अतिरिक्त कवि का सारा शिशिर-वर्णन संयोग-शृंगार के उद्दीपन रूप में ही हुआ है। ऋतु का मानव-मन व जीवन पर जो प्रभाव होता है, उसी का चित्रण करने में कवि तल्लीन रहे हैं, वह भी केवल उच्चवर्ग के जीवन तक ही सीमित है। शिशिर में ठंड में काँपते किसी निर्धन आदि का चित्रण भी हो सकता था, किन्तु वह कवि की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। अतः कवि ने बन्द खिड़कियों वाले कमरों के अन्दर का ही चित्रांकन किया है।

वसन्त—वसन्त कवि की प्रिय ऋतु है, जिसका वर्णन 'मेघदूत' के अतिरिक्त उनकी सभी रचनाओं में मिलता है। वसन्त ऋतुराज है और सबका मनभावन है। इसके सुन्दर शब्द-चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं। चराचर को नई सज-धज से युक्त देखकर कवि की प्रतिभा भी नई सजधज के साथ सामने आती है।

'ऋतुसंहार' मे वसन्त का मूर्तिमान् चित्रण किया गया है। अन्य ऋतुओं के वर्णनों की भाँति यहाँ भी प्रथम श्लोक में कवि ने रूपक बिम्ब दिया है—

> प्रफुल्लचूतांकुरतीक्ष्णसायको द्विरेफमालाविलसद्धनुर्गुणः।
> मनांसि वेद्धुं सुरतप्रसंगिना वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये॥

यहाँ वसन्त एक योद्धा के रूप में मूर्तिमान् हो उठा है। खिली आम्र-मंजरी उसके पैने बाण हैं, भ्रमरपंक्ति धनुष की डोरी है और लक्ष्य हैं कामियों के हृदय। 'चूतांकुर' व 'सायक' में रूप व प्रभाव का साम्य है। 'द्विरेफ' में ध्वनि का साम्य भी माना जा सकता है।

कवि प्रकृति पर एक घूमती हुई दृष्टि डालते हैं और एक व्यापक चित्र प्रस्तुत करते हैं—

> द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
> सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते॥
>
> (6·12)

कवि हर पदार्थ का वर्णन करते जाते हैं और आगे बढ़ते जाते हैं। दृष्टि के साथ मानो भाषा भी चल रही हो।

वसन्त की प्राकृतिक शोभा कवि को नारी से भी बढ़कर प्रतीत होती है। 'कोयल का रसभरा गीत सुन्दरियों की मरस बातों की खिल्ली उड़ाता प्रतीत होता है। कुन्द पुष्प दाँतों पर खिलखिला रहे हैं और लाल कोपलें नायिकाओं की

---

15. ऋतु. 5/4

हथेलियों को मात देती है।[16] प्रकृति के प्रति इतना मोह कभी किसी कवि ने नहीं दिखाया।

पलाश के लाल फूलों से ढकी वनस्थली का सुन्दर बिम्ब कवि ने प्रस्तुत किया है। वनस्थली लाल वस्त्र धारण किये नववधू सी लगती है—

> प्रादीप्तवाह्निसदृशैमरुतावधूतै
> सर्वत्र किंशुकवनैं कुसुमावनम्रैं।
> सद्यो वसन्तसमयेन समाचितेय
> रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमि॥ (6·21)

किंशुक वृक्षों के लाल रंग के लिये कवि पहले प्रदीप्त अग्नि का बिम्ब देता है और पुन, रूप के लिये 'रक्तांशुक' का बिम्ब लाता है। वायु से पलाश की कुसुमित डालियाँ हिल रही हैं मानों नववधू का लाल रेशमी वस्त्र लहरा रहा हो।

कवि वसन्त से युक्त कामदेव को विश्वविजेता के रूप में मूर्तिमान् कर दिया है—

> आम्रीमञ्जुलमञ्जरी वरशर सत्किंशुक यद्धनु—
> र्ज्यायस्यालिकुल कलकरहित छत्र मिनाशु मितम्।
> मत्तेभो मलयानिल परभृता यद्वन्दिनो लोकजित्
> सोऽय वो वितरीतरीतु वितनुर्भद्र वसन्तान्वित॥ (6 38)

वसन्त के उपचार आम्रमञ्जरी, किंशुक, अलिकुल, सिताशु, मलयानिल, परभृत आदि पर राजा के उपचारों का आरोप किया गया है, और एक संश्लिष्ट बिम्ब की रचना की गई है। वसन्त के वैभव से कामदेव का राजा बनाकर, वसन्त ऋतु में काम के प्रभावातिशय को सूचित किया गया है एव वसन्त को गौरव प्रदान किया गया है।

'कुमारसम्भव' में वसन्त एक पात्र है, अत उसका असाधारण रूप से मानवीकरण किया गया है। कामदेव के मित्र रूप में वह उसकी सहायता हेतु चराचर पर अपना प्रभाव जमा लेता है। तृतीय सर्ग में वसन्त का बड़ा सजीव व बिम्बात्मक चित्रण हुआ है। यह वर्णन उद्दीपन हेतु है अत प्रारम्भ में ही सूर्य को नायक एव दक्षिण दिशा को खण्डिता नायिका का रूप देते हुए कहते हैं—

> कुबेरगुप्ता दिशमुष्णरश्मौ गन्तु प्रवृत्ते समय विलङ्घ्य।
> दिग्दक्षिणा गन्धवह मुखेन व्यलीकनि श्वासमिवोत्ससर्ज॥
> (कु 3 25)

असमय वसन्त-विस्तार के कारण सूर्य के उत्तरायण होने एव मलयानिल बहने के प्राकृतिक व्यापार के लिये कवि ने एक संश्लिष्ट सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया

---

16 ऋ 6/13

है। नायक का समय-भंग, परस्त्री की ओर प्रस्थान, नायिका का दीर्घ निःश्वास लेना। विम्ब कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषणों पर टिका हुआ है। 'समय' (सदाचार व काल-नियम) शब्द अपेक्षित विम्ब विधान में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। सदाचार को भंग कर दूसरी स्त्री की ओर जाने वाले साहसी पति के बारे में नायिका क्या कर सकती है? वह अपने प्रेम को खण्डित देखकर गहरी सांसें ले रही है। 'दिग्दक्षिणा' से नायिका का दाक्षिण्ययुक्त होना सूचित होता है।

वसन्त ने कामदेव के लिये नए अंकुरों के पंख लगाकर आम्र-मंजरी के बाण तैयार कर दिये और एक कुशल कारीगर का दायित्व निभाते हुए, भ्रमरों के रूप में कामदेव का नाम भी बाणों पर अंकित कर दिया—

सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान् नामाक्षराणीव मनोभवस्य॥

(कु. 3·27)

यहाँ 'प्रवाल-पत्रे' व 'नवचूतबाणे' में रूपक व 'नामाक्षराणीव' में उत्प्रेक्षा मिलकर मधु को 'शिल्पी' का विम्ब प्रदान करते हैं।

कवि वनस्थली में नायिका की कल्पना करता है, मुकुल रूप में स्थित लाल पलाश, वसन्त रूपी नायक के दिये हुए नखक्षत हैं।[17] वसन्तलक्ष्मी को मूर्त रूप देता हुआ कवि उसका शृंगार प्रतीकों व उपमानों से करता है—

लग्नद्विरेफांजनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य।
रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार॥

(कु. 5·30)

मधुश्री ने भौंरों रूपी काजल से भक्ति-रचना कर ली। तिलक के फूल का टीका लगा लिया। आम की नरम पत्तियों वाले होठों का बालसूर्य की कोमल लालिमा रूपी आलते से रंग लिया। कवि की कल्पना बड़ी ही मनोरम है।

वसन्त में कोयल की कूक का मधुर प्रभाव पड़ता है अतः कवि ने उसके शृंगारोद्दीपक गुण के लिये 'कामदेव की आज्ञा' का विम्ब दिया है। वसन्त का प्रभाव पशु-पक्षियों पर भी होता है। भ्रमर प्रेम-विकल हो एक ही कुसुमरूपी पात्र में अपनी प्रिया को मधुपान करा स्वयं पान करता है। हरिण अपने सींग से प्रिया हरिणी के शरीर को खुजलाता हुआ प्रणय निवेदन करने लगता है। मृगी भी मादक स्पर्श के सुखातिरेक से आँखें मूंद लेती है।[18] स्पर्श-परक विम्ब का यह अच्छा उदाहरण है। दाम्पत्य-प्रणय की आर्द्र अनुभूति आगे भी प्रवाहित है—

---

17. कु. 3/29
18. कु. 3/36

ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः ।
अर्धोपभुक्तेन बिसेन जाया सम्भावयामास रथाङ्गनामा ॥

(कु 3 37)

जैसे कोई कामिनी पुष्पों से सुवासित मद्य मुखगण्डूष द्वारा कामी को पान कराती है, हथिनी कमल मकरन्द से सुवासित जल प्रेमार्द्र हो अपनी सूंड से गज को पिलाती है। दूसरा दृश्य अनन्य प्रेम के प्रतीक चकवा-चकवी का है। परस्पर ताम्बूल अर्पण की भांति चक्रवाक स्वयं आधा चबाकर मृणालदण्ड चक्रवाकी को खिलाता है। ये सभी वर्णन एकदम सचित्र हैं। अजन्ता के एक भित्तिचित्र में ऐसा दृश्य चित्रांकित भी है जहाँ कमलवन में जलविहार करता गजराज कमल तोड़कर हथिनी को प्रदान करता है।

वसन्त के चरम प्रभाव का वर्णन करते हुए कवि लता वृक्षों को भी सचेतनों की भांति आलिंगन-बद्ध रूप में देखते हैं—

पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः ।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥

(कु 3 39)

सांगरूपक के द्वारा कवि ने बहुत ही सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किया है। इस प्रकार 'कुमारसम्भव' का वसन्त वर्णन मुख्यरूप से उद्दीपन व मानवीकृत रूप में हुआ है।

'रघुवंश' का वसन्त वर्णन कुछ अंशों में 'ऋतुसंहार' व 'कुमारसम्भव' से मिलता जुलता है। किन्तु इन दोनों की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ व प्राञ्जल है। 'ऋतु-संहार' में युवक-युवतियों के विलास का वर्णन अधिक है 'कुमार' में वसन्त को लाने का प्रयोजन ही उन्मादक वातावरण का सृजन है, किन्तु 'रघुवंश' में ऐसा पूर्वाग्रह न होने से आलम्बन रूप में विशुद्ध चित्रण मिलता है। वसन्त के प्रादुर्भाव सूक्ष्म अंकन करते हुए कवि कहते हैं—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥

(रघु 9 26)

यहाँ भाषा की रवानगी ने मानो क्रम को मूर्त कर दिया है। वनस्थली के लिये 'द्रुमवती' विशेषण केवल यमक की सिद्धि के लिये नहीं है, यह बिम्बविधान में बड़ा सार्थक है क्योंकि यहाँ वृक्षों के पत्र-पुष्पों की ही चर्चा हो रही है, सरोवर आदि की नहीं। पेड़ों में फूल लगे और उन पर भ्रमर गुंजार करने लगे, इसके बाद नए पत्ते आए और उनके आस्वादन से कषाय-कण्ठ कोकिल कूजने लगी। आम की डालें नर्तकियों की भाँति हावभाव का अभिनय सीखने लगीं—

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा,
अमदयत्सहकारलतामनः सकलिका कलिकामजितामपि ।।

(रघु. 9·33)

मलयपवन से कम्पित पल्लवों में कवि अभिनय-अभ्यास की कल्पना करता है। इसी प्रकार कोयल की ध्वनि के लिये कवि ने अति मधुर कल्पना की है। सुगन्ध से महकती पुष्पित वन-पंक्तियों में, वसन्तारम्भ में, कोयल का यदा-कदा धीरे से कुहुकना, मुग्धावधू के द्वारा शुरू शुरू में मन्दस्वर में उच्चरित परिमित कथनों जैसे ज्ञात हुए—

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः ।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु ।।

(रघु. 9.34)

यह एक अनूठा श्रौत बिम्ब है। वसन्तागम में कोयल की टेर विरल होती है, मुग्धावधू भी आरभ में कम बोलती है।

कवि को तिलक वृक्ष वनस्थली का तिलक, रात्रि खण्डिता नायिका की भाँति पीली, उड़ते हुए पराग-कण वसन्त-लक्ष्मी का मुख प्रसाधन चूर्ण प्रतीत होते हैं। जलपक्षियों के कलरव से पूर्ण बावड़ियाँ करधनी बजाती प्रमदाओं जैसी जान पड़ती हैं।[19] इस प्रकार 'रघुवंश' का वसन्त-वर्णन सुन्दर अलंकारिक रूप में हुआ है।

कालिदास के नाटकों में भी वसन्त के सुन्दर बिम्ब मिलते हैं। राजा अग्निमित्र प्रमदवन में वासन्ती श्री को आश्चर्यभरी आँखों से देखते रह जाते हैं। उनके आगे एक सुन्दर नारी की प्रतिमा खड़ी हो जाती है, जो युवतियों की वेशभूषा को भी लजाने वाली सजधज के साथ राजा के स्वागत में खड़ी है—

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो बिम्बाधरालक्तकः
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम् ।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीमार्धवी योषिताम् ।।

(मा. 3·5)

सामान्य कवि नारी-सौन्दर्य के चित्रण के लिये प्रकृति से अप्रस्तुत बटोरते हैं। प्रकृति के विलासी कवि कालिदास प्रकृति की शोभा के सामने मानवीय सौन्दर्य सामग्री को तुच्छ सिद्ध कर देते हैं। वासन्ती श्री का शृंगार स्वाभाविक है, युवतियों का कृत्रिम रहता है। कवि ने वसन्त-शोभा को मूर्त करते हुए एक संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत किया है।

---

19. रघु. 9/41, 45 आदि

राजा दुष्यन्त विरह से व्यथित हैं, तभी वसन्त ऋतु का आगमन होता है। कालिदास यहां प्रकृति और मानव के परस्पर प्रेम व सहानुभूति के भाव को इतनी दूर तक ले जाते हैं कि राजा के दुःख में वसन्त (असाधारण रूप से) अपने प्राकृतिक व्यापार को रोक लेता है—

> चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
> सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरवकं तत्कोरकावस्थया।
> कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
> शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥

(अभि 6 4)

यहां वसन्त के उद्दीपन रूप की अपेक्षा उसके कोमल विनम्र रूप का चित्रण हुआ है। अचेतन वृक्षादि व चेतन पक्षियों को राजा के आज्ञापालकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। खिलने के लिये तैयार आम्रकलिका व कुरबक का ध्वन्यात्मक *चित्रण किया गया है जो बिम्ब रूप में है। कोयल की आवाज भी जैसे गले में ही* अटकी हुई है। एक ठिठकी हुई स्थिति का यहाँ सुन्दर चित्र है।

'विक्रमोर्वशीयम्' में वसन्त की अधखिली शोभा का निराला ही सौन्दर्य है—

> अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरबकं श्यामं द्वयोर्भागयो
> रक्ताशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति।
> ईषद्बद्धरजःकणाग्रकपिशा चूते नवा मञ्जरी
> मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्री स्थिता॥

(वि 2 7)

वसन्त की शोभा का अभी पूर्ण विस्तार नहीं हुआ है। वह अपनी किशोरावस्था व युवावस्था के मध्य में स्थित है। अर्धविकसित स्थिति के लिये मुग्धत्व व यौवन के मध्य की स्थिति अपने आप में मूर्तकथन है। इस मध्यावस्था को भी मूर्त करने के लिये कवि ने अनेक बिम्ब प्रस्तुत किये हैं— कुरबक का बीच में स्त्री नख की भांति पाटल होना व किनारों पर श्यामरंग, अशोक की लाल कलियों की भेदोन्मुखता, आम्रमंजरी पर कुछ कुछ कपिशवर्ण पराग का आगमन। कुरबक, अशोक व आम्रमंजरी की दशा विशेष से वसन्त की अवस्था विशेष को स्पष्टता प्रदान की गई है। कालिदास की रंग-सम्बन्धी संवेदना प्रशंसनीय है। रंगों के सूक्ष्म भेद उन्हें स्पष्ट हैं। यहाँ पाटल, श्याम, उपोढराग, कपिश सभी रंग पुष्पों से उधार लिये गये हैं। मधुश्री का वर्णन करते समय, यौवन की देहली पर कदम रखती किसी सुन्दरी की 'इमेज' कवि की कल्पना में है।

"इस प्रकार कवि की रचना में वसन्त शोभा के जो चित्र हैं, उनमें वसन्त के पुष्पों के विविध रंग हैं, उन्हीं के पुष्पों का मधुर मधु है, उन्हीं की मादक

सुगन्ध है तथा उन्ही के समान ही स्पर्श-मरणीय कोमलता है। इसके साथ ही इन चित्रों मे कोयल और भौरो का मधुर संगीत भी व्याप्त है। इस प्रकार रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द का अपूर्व समन्वय जो वासन्ती फूलों की विशेषता है, वह इन चित्रों की भी विशेषता है। संभवतः इसी कारण जर्मन कवि गेटे ने कालिदास की अमरकृति शकुन्तला में सर्वप्रथम झांकी वासन्ती फूलों की ही पाई थी।"[20]

ऋतु सम्बन्धी उपलक्षित बिम्ब

ऋतुओं के प्रत्यक्ष-चित्रण के पश्चात् ऋतु सम्बन्धी उपलक्षित बिम्बो को भी संक्षेप मे देख लेना उचित होगा। उपर्युक्त बिम्बों मे ऋतुएं ही वर्ण्य विषय थी। कालिदास ने कई स्थानो पर अन्य वस्तुओं की तुलना व सादृश्य के लिये ऋतुओं को अप्रस्तुत बिम्ब के रूप में भी प्रयुक्त किया है।

जिस प्रकार कवि ने ऋतु शोभा के लिये नारी का सादृश्य उपस्थित किया है, नारी की शोभा के लिये कई स्थानो पर ऋतु-शोभा का बिम्ब दिया है। मालविका के सौन्दर्य के लिये कवि ने वसन्त ऋतु की शोभा का स्मरण किया है। हल्के से रेशमी वस्त्र व अनेक आभूषण धारण करने वाली मालविका वसन्त-रजनी सी ज्ञात होती है जिसमें ओस न रहने से तारे चमकते हैं व चांद ी निकलने को रहती है—

अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी बहुभिराभरणैः प्रतिभाति मे।
उडुगणैरुदयोन्मुखचन्द्रिका हृतहिमैरिव चैत्रविभावरी॥

(मा. 5·7)

'ऋतुसंहार' मे 'काशांशुका' आदि श्लोक में शरद् को नववधू के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'कुमारसंभव' मे जब उमा के नववधू बनने का प्रसंग आता है तो कवि के मानस पटल पर अप्रस्तुत के रूप में 'काशांशुका वरा' का ही बिम्ब उभरता है—

सा मंगलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा।
निर्वृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे॥ (7·11)

इसी प्रकार पुनः नए रेशमीवस्त्रधारिणी चन्द्रमुखी पार्वती के लिये शरद् यामिनी का बिम्ब लाया गया है—

पर्याप्तचन्द्रेव शरत्त्रियामा नवं नवक्षौमनिवासिनी सा।

(7·26)

चन्द्रमुखी पार्वती शरद् की भांति लोक के लिये सुखदायी हैं। उनको देखकर शिवजी के नेत्र-कुमुद खिल जाते हैं व चित्त-सलिल प्रसन्न (स्वच्छ) हो जाता है—

---

20. 'सप्तसिन्धु' जून 1971 में प्रकाशित डा. धर्मेन्द्रकुमार गुप्त के लेख 'कालिदास-काव्य में वसन्त सुषमा' पृ. 16 मे

तया प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या प्रफुल्लचक्षु कुमुद कुमार्या ।
प्रसन्नचेत सलिल शिवोऽभूत्ससृज्यमान शरदेव लोक ॥
(7 74)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास की विराट् अनुभूति मे नारी-सौन्दर्य एव विश्व-सौन्दर्य मिल जुल कर एक हो गये हैं।

ऋतुओ के वर्णन मे मुख्य रूप से 'ऋतु सहार' के बिम्बो का ही विवेचन हुआ है। 'ऋतुसहार' के बिम्ब-विश्लेषण मे एक महत्त्वपूर्ण बात सामने आती है। वह यह कि 'ऋतुसहार' कालिदास की असदिग्ध रचना है क्योकि जो बिम्ब 'ऋतुसहार' मे प्रयुक्त हुए हैं, उनमे से कुछ ज्यो के त्यो कवि की अन्य रचनाओ मे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। ऋतु वर्णन के प्रसग 'कुमारसभव', 'रघुवश' व 'ऋतुसहार' मे परस्पर मिलते जुलते हैं। यदि 'ऋतुसहार' का कर्ता इतर कवि होता तो यह आश्चर्यजनक साम्य सभव नही था। बिम्बो का अध्ययन कवि के समग्र व्यक्तित्व का अध्ययन होता है। जो बिम्ब स्मृति, कल्पना आदि के रूप म कवि के हृदय मे रहते हैं, वे घूम-फिर कर प्रस्तुताप्रस्तुत रूप मे उसकी विभिन्न रचनाओ मे प्रकट हुआ करते है और कई महत्त्वपूर्ण गुत्थियो को सुलझाने मे सहायक होते हैं।

वेला—ऋतुओ के अतिरिक्त प्रात , दोपहर, सन्ध्या व रात्रि आदि काल-विशेष के भी बिम्ब कालिदास ने प्रस्तुत किये हैं। इनका प्रसगत चित्रण ऋतु बिम्बो मे भी हुआ है। यहाँ प्रात , सन्ध्या आदि के सामान्य बिम्ब लिये जाएगे।

प्रभात—प्रात काल का प्रभावशाली चित्र 'अभिज्ञानशाकुन्तल' मे मिलता है—

यात्येकतोऽस्तशिखर पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुर सर एकतोऽर्क ।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्या
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ (4·2)

यह वर्णन आलम्बनरूप न होकर उपदेशात्मक रूप मे हुआ है किन्तु समासोक्ति के रूप मे एक सश्लिष्ट बिम्ब उपस्थित करता है। चन्द्र एव सूर्य के लिये जो विशेषण व क्रियाए प्रयुक्त की गई हैं, उनमे दो तेजस्वी व्यक्तियो की कल्पना मस्तिष्क में उत्पन्न होती है। 'ओषधीना पति' से चन्द्रमा का प्रभावशाली व समृद्धिशाली होना सूचित होता है। वह भी विपत्तिग्रस्त हो पर्वतादि के पीछे शून्य मे प्रवेश करता है। इससे मानस बिम्ब बनता है कि अच्छे से अच्छे व्यक्ति के जीवन मे दुख का अवसर आ सकता है। सूर्य के लिये 'अरुणपुर सर' विशेषण

यह बिम्ब प्रस्तुत करता है कि सूर्य अभी उदित नहीं हुआ है, उदयोन्मुख है। साथ ही यह अर्थ भी निकलता है कि अभ्युदयशील अपने आश्रितों को भी उन्नति प्राप्त कराता है। इस उदय से मानो इस ईश्वरीय नियम की व्यवस्था हो रही है कि दुःख भी नित्य नहीं। उत्प्रेक्षा के रूप में प्रयुक्त 'नियम्यते' क्रिया महत्त्वपूर्ण है। 'शिक्षित हो रहा है' से ही एकदम, प्रथम दो पंक्तियों में स्थित, सूर्य व चन्द्र के रूप में दो प्रभावशाली व्यक्तियों का उत्थान-पतन साकार हो जाता है। इसी प्रकार का साभिप्राय वर्णन निम्न श्लोक में है—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुदवती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि॥ (4·3)

यहाँ शशि व कुमुदिनी के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग सम्बन्ध से प्रोषितभर्तृका नायिका की छवि प्रस्तुत की गई है जो दुष्यन्त-शकुन्तला के प्रस्तुत प्रकरण को भी मूर्त करने की सामर्थ्य रखती है। यहाँ भी प्रभात का विशेष स्पष्ट चित्र नहीं बनता, अपितु कुमुदिनी की शोभा के प्रसंग से अबला शकुन्तला की दयनीय अवस्था का संकेत कर कवि सहृदय को करुणभावना में आप्लावित कर देता है।

प्रकृति के बिम्बात्मक चित्रण का अवसर काव्य में अच्छा रहता है। 'रघुवंश' में अज को जगाते हुए वन्दिजन प्रातःकाल का सुन्दर वर्णन करते हैं किन्तु यह वर्णन भी मानव-सापेक्ष रूप में है, विशुद्ध आलम्बन रूप में नहीं। यथा-रात्रि में भौंरे कमल में बन्द हो जाते हैं, जैसे रात में अज की पुतलियाँ नेत्रों में बन्द थीं। प्रातः काल भौंरे कमल में और पुतलियां नेत्रों में चलायमान हैं। इधर अज के नेत्र खुले तो उधर कमल खिले।[21] कवि प्रातःकालीन गन्ध व स्पर्श का भी इसी प्रकार का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं—प्रातःकालीन वायु तरुशाखाओं में उलझे फूलों को गिरा रहा है, सूर्य-करों के स्पर्श से खिलते कमलों के गन्ध को ग्रहण कर बह रहा है। आप (अज) जागकर इसे अपने मुख-सौरभ से संयुक्त करें'।[22] प्रातःकाल लाल पत्तों पर गिरी ओस की बूंदें, कवि को स्वच्छ मोतियों के हार एवं अज के लाल होंठों से संयुक्त, स्वच्छ दन्त-प्रभा वाले मन्द हास्य के समान प्रतीत होती हैं।[23] प्रातःकालीन प्रकृति-शोभा और अज के सौन्दर्य का यह बिम्बप्रतिबिम्बभाव एक अनोखे ही काव्य-सौन्दर्य का आधायक बना है।

---

21. रघु 5/68
22. वही–69
23. वही–70

प्रातःकाल राजभवन में हाथी-घोड़ों के जागने का चित्र कुछ अधिक यथातथ्य में परिपूर्ण है। हाथी दोनों ओर करवट बदल-बदल कर नींद त्याग चुके हैं। वे अपनी जंजीरों को खींच-खींच कर बजा रहे हैं। उनके दांतों पर जब बालरवि की लाल किरणें पड़ती हैं, तो वे दांत-कटे हुए गेरू पत्थर के टुकड़े से जान पड़ते हैं।[24] बड़े-बड़े कपड़े के तम्बुओं में बंधे अरबी घोड़े जाग चुके हैं। वे अब सामने चाटने के लिये रखे सेंधे नमक के टुकड़ों को अपने मुखश्वास से मलिन कर रहे हैं।[25] जानवरों के ये वर्णन निश्चित रूप से सुन्दर व स्पष्ट बिम्बों की रचना करते हैं। ऐसा लगता है कि राजाश्रय में रहते कालिदास ने हाथी-घोड़ों के ये दृश्य अपनी आंखों से देखकर यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किये हैं।

मध्याह्न—कालिदास ने मध्याह्न के सुन्दर बिम्ब दिये हैं। ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी का बिम्बग्राही दृश्य 'विक्रमोर्वशीयम्' में मिलता है—

> उष्णार्तः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी
> निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते षट्पदः ।
> तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते
> क्रीडावेश्मनि चैष पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते ॥ (2 22)

प्रस्तुत वर्णन में एक साथ ही कई प्रकार के चित्र हैं—बगीचे में मोर वृक्ष के नीचे आलवाल में बैठा है, पौधे पर भ्रमर कनेर की कली का मुख खोलकर उसमें छिपने का प्रयास कर रहा है, तदनन्तर कवि की दृष्टि ताल की ओर जाती है, जहाँ दोपहर में जलचर गरम जल को छोड़कर, किनारे के कुमुदों में जा छिपे हैं। चौथा दृश्य भवन का है और बड़ा दयनीय है जहाँ तोता परतन्त्र होने के कारण उचित आश्रय का चुनाव भी नहीं कर सकता और प्यास से चिल्ला रहा है। इस प्रकार स्थल से जल और फिर भवन की ओर कवि की दृष्टि घूमती चली जाती है। यह बिम्ब अत्यन्त स्पष्ट और प्रभावशाली है।

'मालविकाग्निमित्रम्' में मध्याह्न का इसी प्रकार स्पष्ट चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है—

> पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां
> सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि ।
> बिन्दूत्क्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रं
> सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ॥
> (2 12)

सूर्य राजा की भांति अपने पूर्ण प्रताप से शोभायमान है। यहाँ कमलपत्रों की छाया में आश्रय खोजते हंसों से यह प्रकट होता है कि जल में भी ठंडक नहीं है।

---

24 वही–72
25 वही–73

'मुकुलितनयना' विशेषण से हंसों का कष्टभाव भी व्यंग्य है। कबूतर भवनों के छज्जों पर बैठते हैं किन्तु छतों के अत्यन्त तपने से वहाँ भी ठंडक नहीं और छज्जे खाली पड़े हैं। तीसरा दृश्य कुओं के आसपास मयूर का है जो रहट से उछलते जल-बिन्दुओं को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। ये सभी दृश्य मिलकर मध्याह्न का, अवश्य ही ग्रीष्म के मध्याह्न का, स्पष्ट बिम्ब प्रस्तुत कर रहे है।

सन्ध्या—कालिदास का सन्ध्या-वर्णन और भी मनोहर बिम्बों से परिपूर्ण है। 'कुमारसंभव' के आठवें सर्ग में सन्ध्या का आलम्बन रूप में वर्णन हुआ है। शिव, पार्वती को साथ लेकर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचते है और पार्वती को सन्ध्या का मनोहर दृश्य दिखाते हैं। यह समस्त वर्णन अतीव बिम्बग्राही और कलात्मक है। शिव कहते हैं—

> सक्षये जगदिव प्रजेश्वरः संहरत्यहरसावहर्पति : (8·30)

दिवसावसान के लिये सूर्य द्वारा दिन का उपसंहार करना—जैसे प्रजापति प्रलयकाल में संसार को समेट लेते हैं—सुन्दर बिम्ब का निर्माण करता है।

'झरनों की फुहारों से सूर्य की किरणें हटती जा रही है और उनके हटते ही फुहारों में बने इन्द्रधनुष मिटते जा रहे है।[26] पहाड़ों पर बहते झरनों के लिये यह सान्ध्य दृश्य सर्वथा स्वाभाविक है। 'सरोवर की लहरों में' देखो, पश्चिम में अस्त होते सूर्य ने हिलते प्रतिबिम्बों से सोने का पुल बाँध दिया है—

> पश्य पश्चिमदिगन्तलम्बिना
> निर्मितं मितकथे विवस्वता।
> लम्बया प्रतिमया सरोऽम्भसां
> तापनीयमिव सेतुबन्धनम् ॥ (8·34)

लगता है, जैसे कालिदास ही आँखों देखा हाल सुना रहे हों। 'सूर्य के हिलते प्रतिबिम्बों' के लिये 'सेतुबन्धन' की कल्पना बहुत सुन्दर है और प्रस्तुत वर्णन को रंग रूप से मूर्त कर देती है।

सन्ध्याकालीन आकाश का चित्र प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं—'सूर्य ने आकाश में धूप का पानी खींच लिया है, इसलिये आकाश उस तालाब के समान दिखाई दे रहा है जिसमें पूर्व की ओर अंधेरा बढ़ आने से लगता है कीचड़ ही कीचड़ है तथा पश्चिम में कुछ-कुछ उजाला रहने से ऐसा लग रहा है जैसे उधर थोड़ा पानी शेष है।[27] यहाँ आकाश में सरोवर की, धूप में पानी व अंधेरे में कीचड़ की, कल्पना की गई है। प्रस्तुत व अप्रस्तुत दोनों चित्र सर्वथा स्पष्ट हैं और कवि की प्रतिभा के परिचायक हैं।

---

26. कु. 8/31
27. वही 8/37
28. वही–39

सन्ध्या के समय कमल मुकुलित होता हुआ थोड़ी देर के लिये खुला सा रहता है। कवि कल्पना करता है मानो 'बाहर भटकने भौंरे को अन्दर प्रवेश देने के लिये ही कमल ने मुखविवर खोल रखा है'।[23] मानवीय व्यवहार के आरोप में कवि ने यहा-व्यवहार को मूर्त कर दिया है।

सूर्यास्त होने पर ससार के सभी कार्यकलाप अन्धकार में विलीन हो जाते हैं। उसके लिये सूर्य द्वारा दिन भर दिवसभार को ढोते रहने के बाद उसे समुद्र में डाल देने की कल्पना बडी मौलिक है। सूर्य के डूब जाने पर सारा आकाश गहरी नीद में सो गया है— 'ख प्रसुप्तमिव सस्थिते रवौ' यहा एक विशेष 'प्रसुप्तम' में ही आकाश की निस्तब्धता को मूर्त कर दिया गया है।

पूर्व की ओर से अन्धकार बढता आ रहा है, पश्चिम में अभी भी लाली है। मानो गेरू की नदी के किनारे तमाल वृक्षों की पक्ति खडी है—

एकतस्तटतमालमालिनी पश्य धातुरसनिम्नगा इव। (8 53)

यहाँ रग साम्य के आधार पर सुन्दर बिम्ब उपस्थित किया गया है। अधेरे के लिये काले रग की तमालपक्ति व लाल सन्ध्या के लिये गेरू की नदी। दोनों मिलकर कवि की कल्पना को दृश्यता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार 'कुमारसभव' का यह सम्पूर्ण सन्ध्यावर्णन बडा सजीव, बिम्बात्मक एव सवेदनपूर्ण है। शिव की मधुयामिनी की पूर्वसन्ध्या के वर्णन में कवि ने आत्मविभोर होकर अपनी उच्चतम कला का परिचय दिया है।

पुरूरवा के राजमहल में सन्ध्या का एक दृश्य इन्द्रियगोचर रूप में कवि ने चित्रित किया है—

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिणो।
धूपैर्जालविनि सृतैर्वलभय सदिग्धपारावता ।
आचारप्रयत सपुष्पबलिषु स्थानेषु चार्चिष्मती
सन्ध्यामगलदीपिका विभजते शुद्धान्तवृद्धो जन ॥ (वि 3 2)

यह राजमहल में 'दिन छिपे' का यथातथ्य वर्णन है—निवास-यष्टि पर निद्रालस मयूरो के लिये 'उत्कीर्णा' की कल्पना उनकी निश्चलता को प्रत्यक्ष कर देती है। झरोखो से निकलते धूम के रूप रग के लिये कबूतरो की कल्पना भी बिम्बात्मक है। अन्तःपुर के परिजनो द्वारा दीपको की कतारें सजाने के बिम्ब से, यह सन्ध्या राजभवन के दृश्य को प्रत्यक्ष कर देती है, अन्यथा यह सन्ध्या का सामान्य दृश्य होता।

उपलक्षित रूप में भी सन्ध्या के सुन्दर बिम्ब कालिदास ने उपस्थित किये हैं। 'रघुवश' में नन्दिनी गाय के लिये कवि ने तीन बार सन्ध्या का सादृश्य दिया है। उल्लेखनीय है कि तीनो बार ये उपमान, गाय के सन्ध्या समय वन से लौटने पर प्रयुक्त किये गये हैं। सन्ध्याकाल भी सामने दृश्य है और गाय भी। अत ये बिम्ब अनायास और सहज भाव से प्रतीत होते हैं। यथा—

ललाटोदयमभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला ।
बिभ्रती श्वेतरोमांकं सन्ध्येव शशिनं नवम् ॥ (1·83)

यहाँ सन्ध्या के उपलक्षित विम्ब से वस्तुतः प्रस्तुत नन्दिनी गाय का ही रूप अधिक स्पष्ट हुआ है । गाय एवं सन्ध्या दोनों का रंग किसलय की भाँति गुलावी-सा है । गाय के मस्तक का तिलक नवोदित चन्द्र की भाँति कुछ टेढा है । ये दोनों कल्पनाएँ प्रस्तुत गाय को अनुपम सौन्दर्य प्रदान करती है । पुनश्च—

सचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतगस्य मुनेश्च धेनुः ॥
(2·15)

यहाँ 'पल्लवरागताम्रा' विशेषण प्रस्तुत व अप्रस्तुत दोनों से सम्बन्धित है । क्रिया का भी पूर्ण साम्य है । सन्ध्या के भी प्रस्तुत होने के कारण यह विम्ब बहुत मनोहर लगता है । अपिच—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥
(2·20)

यह कल्पना बडी सूक्ष्म है । राजा दिन की भाँति देदीप्यमान है । सुदक्षिणा चाँद-तारों वाली रात्रि की भाँति सौन्दर्य से युक्त । उन दोनों के बीच पाटल वर्ण वाली गाय गुलावी सन्ध्या के समान स्थित है । यहाँ तीनों विम्ब मिलकर प्रस्तुत दृश्य को पूर्णता और अलौकिक सौन्दर्य प्रदान करते हैं ।

अन्यत्र भी कवि ने सन्ध्या को अप्रस्तुत बनाया है । हिमालय के शिखरों पर बहुत सी ताम्रवर्ण गैरिकादि धातुएँ है । इनसे ऐसा प्रतीत होता है मानो पर्वत ने अकाल सन्ध्या को धारण किया हो ।[29] स्त्रियों के धुले अंगरागों से युक्त सरयू-प्रवाह के लिये भी कवि ने मेघयुक्त संध्याकाल का विम्ब प्रयुक्त किया है ।[30] विस्तारभय से सभी विम्ब देना संभव नहीं है ।

स्पष्ट है कि कालिदास का सन्ध्या-वर्णन उनके प्रभात-वर्णन से अधिक सुन्दर है, अधिक विम्बपूर्ण और अधिक सरस है । लक्षित व उपलक्षित दोनों प्रकार के उनके सान्ध्य विम्ब पूर्ण कलात्मक हैं ।

निशा—ऋतुओं में ग्रीष्म व शरद आदि की रजनी के सुन्दर विम्ब आ चुके हैं । अप्रस्तुत रूप में भी वसन्त रजनी का विम्ब मालविका के सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिये हम देख चुके हैं । यहाँ सामान्य रूप से रजनी के विम्बों को देखने का प्रयास किया जायेगा । 'कुमारसंभव' के आठवें सर्ग में सन्ध्या-वर्णन के बाद रात्रि का भी सुन्दर वर्णन है । इसमें 55वें श्लोक से 73वें श्लोक तक रात्रि के एक से

29. कु. 1/4
30. रघु. 16/58

बटकर एक सुन्दर चित्र हैं। यहाँ कुछ चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। अन्धकार निरंकुश भाव से चारों ओर फैल रहा है। ऐसी स्थिति में—

> नोर्ध्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः ।
> लोक एष तिमिरौघवेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ॥ (56)

न ऊपर कुछ दिखाई देता है न नीचे, न आगे-पीछे। इसके लिये कवि कल्पना करते हैं कि सारा संसार इस प्रकार अंधेरे में लिपटा पड़ा है जैसे गर्भ की झिल्ली में बालक। इस अंधेरे में उजले व मैले, खड़े और चलने, सीधे और टेढ़े सब एक से हो गये हैं। पूर्व दिशा में चन्द्रमा का प्रकाश ऐसा दिखाई पड़ता है मानो उधर केतकी के फूलों का पराग फैला हुआ हो। जो चन्द्रमा दिन भर दिखाई नहीं दिया, वह इस समय निकला हुआ ऐसा लगता है मानो रात्रि के कहने से आकर पूर्व दिशा के सारे भेद खोले दे रहा हो इस प्रकार कवि ने अनेक कल्पनाओं से रात्रि के सौन्दर्य को दृश्यता एवं स्पष्टता प्रदान की है। आकाश में चन्द्रमा और ताल में उसकी परछाई दिखाई दे रही है, लगता है जैसे रात होने से चकवा-चकवी दूर-दूर जा पड़े हों।[31] अब धीरे धीरे उदित होते चन्द्र के वर्णन में कवि ने अनुपम कान्त कला का परिचय दिया। 'अंगुलीभिरिव केशसंचयम् आदि। [32]

कमल मुंद गये हैं और चांदनी फैल जाने से अंधेरा मिट गया है। इसलिये ऐसा लग रहा है मानो चन्द्रमा अपनी किरण रूपी उंगलियों से रात रूपी नायिका के मुख पर फैले हुए अंधेरे रूपी बालों को हटाकर उसका मुख चूम रहा हो और रात ने आनन्द से अपने कमल-नेत्र मूंद लिये हों। यह बिम्ब बहुत ही मनोहारी है। उगते हुए चांद और अन्धकार से उलझी चांदनी रात का ऐसा सुन्दर दृश्य साहित्य में अन्यत्र प्राप्य नहीं है।

चन्द्रमा की किरणों से अंधेरा मिट गया है अतः आकाश ऐसा जान पड़ रहा है मानो हाथियों की जलक्रीड़ा से कोई गदला सरोवर निर्मल हो चला हो। यहाँ अंधेरे के लिये गदला पानी व प्रकाशित नभ के लिये स्वच्छ सरोवर के उपमान सर्वथा उचित हैं और विषय को दृश्य कर देते हैं। कल्पवृक्ष पर चन्द्रकिरणें चन्द्रहार बनाती प्रतीत होती है। पहाड़ के ऊँचे-नीचे स्थानों में कहीं चांदनी और कहीं अंधकार है। कवि कल्पना करता है जैसे हाथी के ऊपर अनेक प्रकार की चित्रकारी कर दी गई हो। पत्तों के बीच से छनकर धरती पर पड़ने वाली चांदनी में पेड़ों से झड़े हुए फूलों की कल्पना अत्यन्त मनोहारी है।[33] इसमें चांदनी का दृश्य मूर्त हो गया है।

---

31 कु. 8/57,58,60 व 61

32. वही पृष्ठ 18 पर उद्धृत

33. कु. 8/64,69 व 72

यह सारा प्रसंग विम्ब रूप में ही कवि ने प्रस्तुत किया है, इसीलिये इतना मनोहर हो सका है। 'विक्रमोर्वशीयम्' में भी चांदनी रात का सुन्दर विम्ब आया है—

उदयगूढशशाकमरीचिभिस्तमसि दूरतर प्रतिसारिते।
अलकसंयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम्॥ (3·6)

यहाँ मानवीकरण द्वारा चन्द्र को नायक व पूर्वदिशा को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है, चन्द्रमा को आते देख पूर्व दिशा ने अपने मुख पर बिखरे अन्धकार रूपी केशों को संभाल लिया है।

अप्रस्तुत रूप में रात्रि को अनेक स्थानों पर कवि ने विम्ब बनाया है। गर्भिणी रानी सुदक्षिणा कृश हो जाती है, वे अपने बहुत से आभूषण उतार देती हैं, उनका मुख पीला पड जाता है अतः वे प्रभात से पहले की रात्रि जैसी जान पड़ती है—

तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी।
(रघु. 3·2)

प्रातःकाल के पूर्व रात्रि मे तारे बहुत कम रह जाते हैं, चन्द्रमा भी फीका पड़ जाता है, अतः यह सादृश्य सर्वथा उचित है तथा प्रस्तुत की छवि को मूर्त करने वाला है।

आभूषण पहने हुए नारी को कवि नक्षत्रों युक्त रात्रि से उपमा देकर अनेक बार दृश्यता प्रदान करते हैं, पार्वती 'ज्योतिर्भिरुद्यद्भिरिव त्रियामा' व मालविका 'चैत्रविभावरी' बताई गई है। नए सुन्दर वस्त्र पहन कर, पार्वती जब हाथ में दर्पण लेकर खड़ी होती है तो 'शरत्त्रियामा' की कल्पना बड़ी यथार्थ जान पड़ती है—

क्षीरोदवेलेव सफेनपुंजा पर्याप्तचन्द्रेव शरत्त्रियामा।
नवं नवक्षौमनिवासिनी सा भूयो बभौ दर्पणमादधाना॥
(कु. 7·26)

दर्पण श्वेत होता है उसको 'नव' कहने से वह और भी चमकीला होना चाहिये। उस दर्पण में नवीन रेशमी वस्त्रों की प्रतिच्छवि चांदनी रात से गम्य है, बीच में पार्वती का मुख चमक रहा है, मानो विकसित पूर्ण चन्द्रमा। यह कल्पना प्रस्तुत को पूर्णतः इन्द्रियगोचर कर देती है। इसी प्रकार निम्न प्रसिद्ध स्थलों में भी रात्रि के उपलक्षित विम्ब देखे जा सकते हैं—

'अचिरभिन्ने शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रिः।'
एवं
'नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।'

कालिदास ने दिन और रात को एक साथ उपमान बना कर भी सुन्दर विम्ब-विधान किया है—

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे ।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥

(रघु 7 24)

इन्दुमति व अज प्रदीप्त अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। कवि कल्पना करता है कि जैसे सुमेरु पर्वत के उपान्त में एक दूसरे से जुड़े हुए दिन-रात स्थित हैं। अग्नि का रंग सुमेरु की भाँति लाल है। अज दिवस के समान तेजस्वी है। इन्दुमति रात्रि के समान चन्द्रमुखी व सितारों जटित वस्त्राभूषण पहने हुए है। दिन-रात के सादृश्य से अज व इन्दुमती का यह बिम्ब स्वयं उभर आता है। शिव-पार्वती के फेरों के अवसर पर भी यही बिम्ब प्रयुक्त हुआ है।[34]

स्पष्ट है कि कालिदास ने प्रातः, सन्ध्या, रात्रि आदि के सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। विशुद्ध आलम्बन रूप में, आलंकारिक रूप में मानवीकरण के रूप में एवं सादृश्य के रूप में वेला सम्बन्धी बिम्ब कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा के प्रमाण हैं।

जलीय बिम्ब—जल से सम्बन्धित बिम्बों में समुद्र, नदी, सरोवर आदि के बिम्बों का अध्ययन किया जा सकता है। सर-सरिताएँ व्यक्ति का मन आकृष्ट कर लेती हैं। कालिदास तो प्रकृति की इन विभूतियों के प्रति इतने आसक्त हैं कि अवसर मिलते ही इनके चित्र प्रस्तुत करना नहीं भूलते। अप्रस्तुत रूप में भी वे रूप-धर्म आदि का सादृश्य नदी, समुद्र आदि से दिया करते हैं।

समुद्र—कालिदास ने समुद्र के सुन्दर बिम्ब दिये हैं। 'रघुवंश' के 13वें सर्ग में समुद्र, नदी सरोवर आदि का बिम्बात्मक वर्णन हुआ है। राम सीता के साथ लंका से विमान द्वारा लौटते हैं। पास बैठी सीता को राम सारे मार्ग का परिचय देते चलते हैं। इस वर्णन में राम की सीता के प्रति और कवि की प्रकृति के प्रति संवेदना प्रकट होती है। वर्णन में इतनी यथार्थता व दृश्यता है कि लगता है कोई आँखों देखा हाल सुना रहा हो। क्यों शत्रु के आतंक से रहित प्रिय पत्नी को पास बैठाकर राम बड़े स्नेह से सब कुछ बता रहे हैं। इससे वर्णन में सहज रागात्मकता का सन्निवेश हो गया है और ये वर्णन नीरस आलेख्यमात्र नहीं रहे। राम समुद्र दिखाते हुए कहते हैं—

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥ (2)

यहाँ कालिदास की कल्पना बड़े सुन्दर रूप में सामने आई है। वस्तुतः यहाँ दो शब्दचित्र हैं। पहला—फेन से व्याप्त, सेतु पुल से विभक्त, विशाल समुद्र का, दूसरा—शरत् के स्वच्छ आकाश का, जो तारों से जटित व छाया पथ से दो भागों में विभक्त है। दूसरा चित्र प्रस्तुत बिम्ब को अधिक स्पष्टता प्रदान करने के लिये लाया गया है।

34 देखें कु. 7/79

समुद्र के विस्तार से कवि प्रभावित है। समुद्र कभी शान्त और कभी क्षुब्ध दिखाई देता है। समुद्र की विभिन्न अवस्थाओं के लिये कवि एक अलौकिक कल्पना प्रस्तुत करता है—

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा॥ (5)

कवि समुद्र को विष्णु का उच्चतम बिम्ब प्रदान करता है। विष्णु कभी सर्जक, कभी पालक और कभी संहारक रूप को धारण कर लेते हैं, वे दसों दिशाओं में व्याप्त हैं। सागर भी कभी शांत और कभी संहारक रूप धारण कर लेता है। इसका विस्तार भी दसों दिशाओं में है। विष्णु के समान समुद्र के बारे में भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह इतना है या ऐसा है। समुद्र के लिये विष्णु का यह पौराणिक बिम्ब सर्वथा नवीनतापूर्ण व समुद्र को गौरव प्रदान करने वाला है। कल्पान्त के समय समुद्र का महत्त्व और बढ़ जाता है, जब समुद्र सब कुछ अपने में समेट लेता है। प्रलयकालीन समुद्र का बड़ा कलात्मक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव॥ (8)

पौराणिक वराहावतार की ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं कि प्रलयकाल में जब वराह ने पृथ्वी का उद्धार किया तो तरंगों के रूप में ऊँचा उछलता जल पृथ्वी का मुखाभूषण बना। इस बिम्ब का समस्त सौन्दर्य 'उद्वहन' शब्द की श्लिष्टता पर आश्रित है। इसके दो अर्थ हैं–(1) उठाना (2) विवाह। विवाह के समय मुख पर झीना सा घूंघट धारण की सांस्कृतिक परम्परा है। पृथ्वी के उद्धार के समय चमकीले पारदर्शी जल की परत विवाहकालीन यवनिका बनी। प्रलयकालीन जल की भयंकरता को विवाहकालीन घूंघट की स्पृहणीयता में परिवर्तित करने की सामर्थ्य कालिदास में ही हो सकती है।

समुद्र का वर्णन करते समय वहाँ के जीवों, शंख-शुक्तियों आदि का वर्णन भी बड़ी बारीकी से कवि ने किया है जो समुद्र के रूप का पूर्णता और दृश्यता प्रदान करता है। 'बड़ी-बड़ी मछलियाँ नदियों के मुहानों पर जन्तुओं सहित जल पी जाती हैं, तदनन्तर मुख बन्द कर छिद्रयुक्त मस्तक के ऊपरी भाग से फव्वारे की भाँति जल निकाल देती हैं'।[35] बड़े-बड़े ग्राह एकाएक उछलते हैं और बिखरा हुआ फेन उनके गालों पर चामरभाव को धारण करता है।[36] बादल समुद्र से जलग्रहण करते हैं यह एक प्राकृतिक तथ्य है। समुद्र के जल पर झुके बादल कवि को पौराणिक स्मृति दिलाते हैं—

35. र. 13/10
36. वही–11

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद्भ्रमता घनेन ।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥ (14)

भवर के वेग से जल पर झुके मेघ चक्राकार घूमते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र पुनः मथा जा रहा हो। समुद्र मन्थन की कल्पना से मेघ का पर्वताकार होना व्यंजित होता है। यहाँ समुद्र मथन की पौराणिक कल्पना भी साकार हो जाती है और प्रस्तुत चित्र भी स्पष्टता प्राप्त करता है।

समुद्र पर मानवीय भावों का आरोप करते हुए कवि उसे एक अनन्य—साधारण भोगी के रूप में प्रस्तुत करते हैं—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः ।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ॥ (9)

यहाँ रतिकाल में परस्पर अधरदान में रत प्रेमी-प्रेमिका के व्यापार का दृश्य उपस्थित किया गया है। तरंग व अधर में अभेद स्थापित कर कवि ने इस प्रेमदृश्य की सृष्टि की है। इस प्रेम दृश्य से राम भी सीता के प्रति 'बिम्बाधरबद्ध-तृष्णाम्' हो जाते हैं, 'मण्डनकालहानि' उन्हें सह्य नहीं।[37] पीछे की ओर देखते हुए तो दूर होते समुद्र में पृथ्वी जंगल सहित निकलती सी दिखाई देती है—

'एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः ।'

यहाँ 'निष्पतति' क्रिया बिम्ब का केन्द्र है। पृथ्वी समुद्र से जैसे निकल पड़ी हो। इस क्रिया ने ही पृथ्वी को मूर्त कर दिया है।

कालिदास ने समुद्र के उपलक्षित बिम्बों से अनेक स्थानों पर प्रस्तुत स्थितियों को मूर्तता प्रदान की है। समुद्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म हलचल को कवि ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से पकड़ा है। महादेव के चित्तोद्वेलन हेतु कवि द्वारा प्रयुक्त समुद्र की हलचल का बिम्ब प्रसिद्ध ही है—

हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्य—
श्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे
व्यापारयामास विलोचनानि ॥ कु 3 67

कवि ने यहाँ अत्यन्त निपुणता के साथ समुद्र के बिम्ब से शिव के चित्त-विक्षोभ को भाषा दी है। इस चित्र के बिना कवि के भाव की अभिव्यक्ति संभव नहीं थी।

कवि ने प्राय अपने सभी नायकों की गम्भीरता, उदारता, महानता, गम्भीरता आदि गुणों की व्यवस्था हेतु समुद्र का बिम्ब प्रयुक्त किया है। तेजस्वी राजा

37, र, 13,16

अग्निमित्र अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण 'प्रतिक्षण आँखों को नए-नए दिखने वाले समुद्र' से प्रतीत होते हैं—

न च न परिचितो न चाप्यगम्यश्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य।
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे भवति स एव नवो नवोऽयमक्ष्णोः॥
मा. 1·11

श्वेत छत्र वाले कुश द्वारा अयोध्या को भेजा गया सैन्य समूह चन्द्रमा द्वारा तीर पर भेजे गये समुद्र की भाँति बताया गया है।[38] इसमें सेना की अनन्तता साकार हो जाती है। नगर के समीपस्थ युवराज अज के आगमन से हर्षित राजा भोज उनसे मिलने वैसे ही जाते हैं जैसे चन्द्रोदय से प्रवृद्ध ऊर्मियों वाला समुद्र चन्द्र से मिलने बढ़ता है।[39] इसमें भोज का हर्षातिशय व्यक्त होता है।

अपने भीम व कान्त दोनों प्रकार के गुणों से दिलीप, प्रजा के लिये, जन्तुओं व रत्नों से युक्त समुद्र की भाँति, अधृष्य भी थे और अभिगम्य भी थे।[40] कुश आदि राजगण अपने देश की सीमा का उसी प्रकार अतिक्रमण नहीं करते थे और शांति से रहते थे जैसे समुद्र शान्तिपूर्वक अपनी सीमा में ही रहता है।[41] यहाँ समुद्र का बिम्ब राजाओं की मर्यादाप्रियता को सुन्दरता से अभिव्यक्त करता है। राजा दशरथ मुनि के शाप को अपने अन्दर उसी प्रकार धारण करते हैं जैसे समुद्र बड़वानल को धारण करता है।[42] दशरथ के हृदय की अमूर्त व्यथा को मूर्त करने के लिये यह बिम्ब बड़ा उपयुक्त है।

स्पष्ट है कि समुद्र कवि को बहुत प्रिय है, इसके लक्षित व उपलक्षित अनेक बिम्ब कालिदास की कविता में उपलब्ध हैं।

नदियाँ—कालिदास के प्राकृतिक बिम्बविधान में नदियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हें भारत की नदियों से विशेष लगाव है। आश्चर्य होता है कि आवागमन के विशेष साधनों के अभाव में भी कालिदास को भारत की प्रायः सभी नदियों का आँखों देखा परिचय है। उनकी रचनाओं में, आलम्बन रूप में गंगा, यमुना, संगम, मन्दाकिनी, गोदावरी, सरयू, कावेरी, मुरला (सभी रघुवंश) सरस्वती, रेवा, वेतवा, निर्विन्ध्या, कालीसिन्ध, शिप्रा, गंभीरा, चम्बल (सभी पूर्व मेघ) नदियों के वर्णन हैं। इनका कालिदास कृत वर्णन प्रत्यक्ष देखा हुआ सा जान

---

38. र. 16.27
39. वही 5·61
40. वही 0'16
41. वही 16·12
42, वही 9·82

पड़ता है। इस आधार पर अन्य नदियों के चित्र भी सच्चे माने जा सकते हैं। आकाश गंगा (कुमारसंभव) का वर्णन भी कवि ने प्रत्यक्ष-सा कर दिखाया है। इन नदियों के अतिरिक्त कई अन्य नदियों के उल्लेख भी कवि ने किये हैं। नदी सामान्य में भी लक्षित व उपलक्षित बिम्ब कवि ने प्रस्तुत किये हैं। रूप, गुण, क्रिया का सादृश्य प्रस्तुत करने के लिये कवि प्राय नदी को उपमान बनाते हैं।

संगम—'रघुवंश' में विमान से जाते राम गंगा-यमुना व सरस्वती के संगम का हृदयहारी वर्णन करते हैं। बिम्ब-सिद्धान्त की दृष्टि से यह वर्णन अनुपम है

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः ॥
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ।

सर्ग 13 54 से 57 तक

उपर्युक्त वर्णन कालिदास की समृद्ध व उर्वर बिम्बविधायिनी प्रतिभा का अनुपम उदाहरण है। प्रयाग में नीली धारा वाली यमुना श्वेत जलवाली गंगा से मिलती है। श्वेत व श्याम वर्णों के मेल से निर्मित इस दृश्य को साकार करने के लिये कवि ने एक से बढ़कर एक सुन्दर सात अप्रस्तुत दिये हैं। (1) इन्द्रनीलमणियों से गुंथा हुआ श्वेत मोतियों का हार (2) बीच-बीच में नीलकमलों से गुंथी हुई सितपङ्कजों की माला (3) नीले हंसों से मिश्रित श्वेत हंसों की पंक्ति (4) पृथ्वी पर कालागुरु और श्वेतचन्दन से रचित अल्पना, (5) पत्तों की काली छाया से मिश्रित वृक्षों के नीचे लेटी चांदनी (6) श्वेत शरन्मेघमाला, जिसके बीच-बीच में से नीला आकाश झांक रहा है और (7) काले सर्पों से लिपटा, भस्म पुता शिवजी का शरीर। ये सभी पदार्थ आकृति में भिन्न हैं किन्तु कवि के कल्पना-सूत्र द्वारा एक लड़ी में पिरो दिये गये हैं। ये संगम के दृश्य को सजीवता, पवित्रता एवं गौरव प्रदान करते हैं।

गंगा-यमुना के संगम को, अप्रस्तुत रूप में भी, कवि ने श्वेतश्याम की विरोधी योजना का गोचर बनाने के लिये स्मरण किया है। 'झुके हुए नीले मेघ की छाया के संक्रमण से गंगा ऐसी प्रतीत होती है, मानो संगमस्थान, प्रयाग से भिन्न स्थान में यमुना से संगम हुआ हो।'[43] गंगा को 'मेघदूत' में 'सगरतनयस्वर्ग-

43, पू मे 54

सोपानपंक्ति' कहकर एक पद में ही कवि ने पौराणिक घटना के सन्दर्भ में गंगा की पवित्रता व महानता को रूपायित किया है। इसी काव्य में ईर्ष्या भाव की चित्र-रचना करते हुए कवि ने गंगा के फेन को उसका हास एवं उर्मियों को उसके हाथ बताकर गंगा को नायिका के रूप मे प्रस्तुत किया है, और सौतिया डाह का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।[44] शिव के सिर पर स्थित गंगा को कवि ने 'त्र्यम्बकमौलिमालाम्'[45] कहा है। इससे गंगा की मस्तक पर स्थिति रूपायित होती है।

आकाश-गंगा का वर्णन 'कुमारसंभव' में बड़ा मनोरम है। कल्पना पर आधारित होने पर भी वर्णन मे सश्लिष्टता व चित्रात्मकता है। 'आकाशगंगा का जल अप्सराओं के घुले अंगराग मे रंग जाता है। वहाँ बालुकामयतट पर देवकन्याएँ खेलने आती है। मन बहलाने के लिये बैठी देवांगनाओ की जल मे पड़ती छाया पथिको का मन मोह लेती है।

'रघुवंश' मे गंगा को अप्रस्तुत बनाया गया है। शय्या पर स्थित नवजात राम के पास 'शातोदरी' कौशल्या, शरद् मे कृश हुई गंगा के समान बताई गई है, जिसके किनारे उपहार का कमल रखा हुआ है।[46] गंगा का बिम्ब यहाँ पूरी स्थिति का स्पष्ट चित्र बना देता है।

कवि ने 'मन्दाकिनी' का सुन्दर सचित्र वर्णन किया है—

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मंदाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः॥
(रघु. 13·48)

'प्रसन्न' विशेषण से मन्दाकिनी का मन्द प्रवाह व स्वच्छ जल वाली होना प्रकट है। दूर से कृश दिखाई देने से उसके लिये 'मुक्तावली' की कल्पना ठीक बैठती है। पर्वत के क्रोड़ में बहने वाली मन्दाकिनी का यह बिम्ब सुन्दर, स्पष्ट व भव्य है।

सरयू—नदी रघुवंश से अभिन्न रूप से सम्बन्धित है। इसका चित्रण कवि ने ऐतिहासिक सन्दर्भ में किया है। इक्ष्वाकुवंशी राजा इसके तीर पर यज्ञयूप स्थापित करते रहे हैं। अश्वमेघ यज्ञ के पश्चात् किये गये पावन स्नानों से इसका जल पवित्र है।[47] सरयू को 'धात्री' का बिम्ब देते हुए कवि कहते है—

---

44. वही 53
45. रघु 13/48
46. रघु 10/69
47. वही 13/61

या सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे सम्भावयत्युत्तरकोसलानाम्॥

(रघु 13 62)

यहाँ तीन महत्त्वपूर्ण शब्द हैं—'सैकतो' 'पयोभि' व 'सामान्यधात्री' सैकत में गोद का आरोप किया गया है। 'पय' शब्द के प्रकृति श्लेष (जल व दूध) का प्रयोग कवि की कुशलता का सूचक है। रेतीले किनारे पर खेलकर रघुवंशी बड़े हुए हैं अतः उसे धाय की गोद कहना बडा सार्थक है। सरयू के जल का पान कर व कृषि आदि मे उपयोग कर राजा पुष्ट हुए हैं। अतः धाय का बिम्ब सरयू के असाधारण महत्त्व का सूचक है।

कुश की जलक्रीडा के प्रसग में सरयू का चित्रण है। कवि नारी के अगों मे सरयू के प्राकृतिक रूप को चाक्षुष करते हैं—

आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गा भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम्।
जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम्॥

(रघु 16 63)

'मेघदूत' मे कवि ने अनेक नदियों के रागात्मक चित्र दिये हैं। नदियाँ मेघ की प्रेयसी हैं, मेघ के जलदान के लिये व्याकुल। मेघ भी उनके जलपान के प्रति उत्सुक बनाया गया है। रामगिरि से अलका तक के मार्ग में पडने वाली नदियों के मनोहारी बिम्ब कवि ने दिये हैं।

नर्मदा—विन्ध्य की तलहटी में फैली नर्मदा का दृश्यात्मक चित्रण कवि ने किया है—

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य॥ (पू मे 19)

काव्य में बिम्बविधान के पक्षपाती नव्यालोचक उपमानों की नवीनता का बडा आग्रह रखते हैं। प्रस्तुत उपमान भी सर्वथा मौलिक व नवीन है। नर्मदा विन्ध्य के विषम शिलाखण्डो म अटकती हुई बहती है। उसके लिये गज के शरीर पर बलबूटो से की गई पत्ररचना का बिम्ब नदी के टेढी-मेढी अनेक धाराओं वाले रूप को इन्द्रियग्राह्य बना देता है। यहाँ विन्ध्य व नर्मदा मे नायक-नायिका सम्बन्ध भी व्यग्य है। नर्मदा का जल हाथियों के मद की तेज सुगन्ध से सुवासित रहता है। तटवर्ती जामुन के पेडो से प्रवाह मन्द पड जाता है।[48]

वेत्रवती को नायिका के रूप मे कवि ने प्रस्तुत किया है—

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।

48 पू मे 20

तीरोपान्तस्तनितसुभग पास्यसि स्वादु यस्मा-
त्सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥ (पू मे. 24)

वेत्रवती का चंचल लहरों वाला जल, भ्रूभंग से युक्त मुख है जिसके लिये 'स्वादु' विशेषण का प्रयोग स्वादिष्ठ जल व रसीले मुख (या अधर) को व्यक्त करता है। मेघ को कामुक नायक के रूप में चित्रित करते हुए उसे वेत्रवती के पयपान (अधरपान–नायिका के सन्दर्भ में) के लिये उद्यत बताया गया है। इससे नदी व मेघ के वर्णन मे सरसता आ गई है और नदी तथा मेघ का सम्मिलित बिम्ब पाठक के दृश्य मे अंकित हो जाता है।

निर्विन्ध्या—निर्विन्ध्या नदी में भी कवि ने हाव-भाव प्रदर्शित करती स्त्री का रूप देखा है—

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकांचीगुणाया:
संसर्पन्त्या स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभे: ।
निर्विन्ध्याया: पथि भव रसाभ्यन्तर: संनिपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ (पू. मे. 29)

निर्विन्ध्या, लहरो के क्षोभ से कलरव करने वाले पक्षियों के रूप में करधनी खनखना रही है। मानो मद के कारण लड़खड़ाती चल रही है और अपनी भंवर रूपी नाभि दिखा रही है। इस प्रकार मानो अपने हावभाव या विलास दिखाकर प्रियतम (मेघ) से प्रणय निवेदन कर रही है। 'विहगश्रेणी' पर 'कांचीगुण' का आरोप कर कवि ने ध्वनि को मूर्त किया है। 'आवर्त' पर 'नाभि' के आरोप से आवर्त की रूपरेखा गोचर हो जाती है। 'रस' के दो अर्थ हैं—जल व शृंगार रस। इस प्रकार सागरूपक के आधार पर एक संश्लिष्ट बिम्ब द्वारा कवि ने नदी को एक प्रणयातुर नायिका का जो रूप दिया है उससे कवि की प्रकृति के प्रति गहरी संवेदना का परिचय मिलता है। काली सिन्ध नदी का विरहिणी नायिका के रूप में चित्रित किया गया है—'काफी दिनो से मेघ से वियुक्त होने के कारण नदी कृश हो गई है, विरह में उसका रंग पीला पड़ गया है (तटवर्ती वृक्षों के पीले पत्तों से जलधारा पीली दिखाई देती है। मेघ से मिलकर (वर्षा होने से) नदी की कृशता भी दूर हो जावेगी और पीले पत्ते गिरना बन्द होने से, वह पुनः हरी भरी हो जाएगी।' नायक-नायिका के विरह व मिलन के इस बिम्ब से नदी व मेघ के पारस्परिक सम्बन्ध को सरस रूप मे व्यंजित किया गया है।

गम्भीर-नदी को नवोढा नायिका का बिम्ब दिया गया है जो लज्जावंश केवल मधुर चितवन का प्रदर्शन करती है

गम्भीराया: पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते प्रवेशम् ।
तस्मादस्या : कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥ (पू. मे. 43)

गम्भीरा का जल विलासादि से अनभिज्ञ चित्त की भांति निर्मल बताया गया है। स्वच्छ जल मे छाया स्पष्ट दिखाई देती है। इस प्रकार नारी के निर्मल चित्त मे, जो पहले से किसी के प्रति अनुरक्त नही है, प्रियतम की आत्मा शीघ्र स्थान बना लेती है। कालिदास की यह कल्पना जितनी सुन्दर व सूक्ष्म है उतनी ही स्पष्ट भी। कुमुद के समान श्वेत मछलियो का उछलना ही नदी की, चचल चितवन है, जिसको सफल करने के लिये यक्ष मेघ को प्रेरित करता है। मछलियों के उद्वर्तन का चितवन से साम्य सर्वथा मौलिक है। अगले पद्य मे कवि गभीरा के साथ मेघ का शृ गारिक चित्र प्रस्तुत करते है। 'मेघ के द्वारा जलपान कर लेने से नदी का नीला जल, कम होकर तट से हट जायेगा, जिसे बेंत अपनी झुकी डालो मे छू रहे होगें। उस समय ऐसा प्रतीत होगा मानो नितम्ब से खिसकते वस्त्र को गम्भीरा नायिका ने अपने हाथो से पकड रखा हो।' नदी के इस वर्णन मे नायिका के व्यवहार के समारोपण द्वारा कवि ने बेंत के झुरमुटो मे होकर बहती नदी को तो चाक्षुष कर दिया है किन्तु शृ गार प्रिय, कवि हृदय की यह कल्पना अश्लीलता की परिधि मे ले जाने लगती है।

चर्मण्वती (चम्बल) नदी को महाराज रन्तिदेव की कीर्ति का ही मूर्तरूप कहा गया है।[49] कीर्ति का रग श्वेत माना गया है अत कीर्ति की श्वेत जलधारा रूप मे बहने की कल्पना नदी को पवित्रता प्रदान करती है। श्वेत चम्बल के बीच मे बडे से नीले मेघ मे ऊपर से देखने पर, श्वेत मोतियो की माला में इन्द्रनील मणि की कल्पना की गई है।[50] यह कल्पना बिम्बाधायिनी है। 'जलधार' के लिये 'मुक्ताहार' व मेघ के लिये 'इन्द्रनीलमणि' मे रग व आकार दोनो का साम्य है।

कावेरी व मुरला नदी के बिम्ब 'रघुवश' मे रघु के दिग्विजय प्रसग मे मिलते हैं। कावेरी का वर्णन शृ गारिक रूप मे किया गया गया है—

स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना।
कावेरी सरिता पत्यु शकनीयामिवाकरात्॥ (4 45)

मानवीकरण का पुट देते हुए श्लिष्ट शब्दों से कवि ने कावेरी के स्नानादि से मथे जल मे पति समुद्र द्वारा शका का अवसर उपस्थित किया है।

कालिदास का यह बिम्बविधान, आधुनिक युग के हिन्दी कवि निराला व पन्त आदि छायावादी श्रेष्ठ कवियो की कल्पनाओ के लिये आधार प्रस्तुत करता है जिसमे कवि सन्ध्या को 'सुन्दरी परी' व गगा को 'तापसबाला' तन्वगी' आदि के रूप मे प्रस्तुत करते हैं।

---

49 पू म 48
50 वही 49

उपर्युक्त विशेष नदियों के अतिरिक्त कवि ने नदी सामान्य के भी सचित्र वर्णन किये हैं। 'ऋतुसंहार' में वर्षाकालीन संवेग बहती नदी को यौवन से मदमाती नारी कहा गया है और शरद् की नदी को 'मदालसा मन्थरगामिनी प्रमदा' के रूप में उपस्थित किया गया है।[51] जिस प्रकार कवि ने यहाँ नदी के रूप को स्पष्ट करने के लिये नारी का सादृश्य उपस्थित किया है, उसी प्रकार नारी को नदी रूप में देखा है। नारी का रूप-रंग, हाव-भाव, गति आदि को दृश्यता प्रदान करने के लिये कवि ने अनेक बार नदी का सादृश्य उपस्थित किया है। राजा पुरूरवा को चंचल लहरों वाली पहाड़ी सरिता, अनेक समानताओं के कारण, उर्वशी प्रतीत होती है। 'नदी की तरंग उर्वशी का भ्रूभंग है। शब्द करते पक्षिगण बजती करधनी है। तेज बहाव से उत्पन्न फेन राशि, क्रोध से अस्तव्यस्त होने वस्त्र हैं। तेजी के कारण उर्वशी नदी रूप में लड़खड़ाती भागी जा रही है।[52] यहाँ नदी व नारी के दोनों रूप बड़े स्पष्ट हैं और एक दूसरे को मूर्त करते चलते हैं।

अन्यत्र भी मूर्च्छा से जगती उर्वशी को कवि ने नदी में रूपायित किया है—

'गंगारोधःपतनकलुषा गच्छतीव प्रसादम्'।

लुप्तसंज्ञा की पुनःप्राप्ति जैसी अमूर्त स्थिति को इस छोटी सी उपमा ने एकदम मूर्त कर दिया है।

अन्तःसत्त्वा सुदक्षिणा के लिये 'अन्तःसलिला सरस्वती' का विम्ब व्यंजना पूर्ण है।[53] अनेक राजाओं को छोड़ते हुए, अज की ओर अग्रसर होने वाली इन्दुमती के लिये 'सागर-गामिनी' नदी का सादृश्य उपस्थित किया गया है, जो मार्ग में पड़ने वाले पर्वतों को छोड़ती जाती है—

'महीधरं मार्गवशादुपेतं स्रोतोवहा सागरगामिनीव'।

इस विम्ब में 'महीधर' की श्लिष्टता से कलात्मकता का सन्निवेश किया गया है 'सागर' के उपमान से 'अज' की महानता व गुणाधिक्य भी व्यंजित होता है।

पार्वती को समस्त विद्याएँ उसी प्रकार स्वतः प्राप्त हो जाती हैं जैसे शारदी गंगा में हंसमाला स्वतः उड़ आती है।[54] शरत् की गंगा के साथ तन्वी उमा व शुभ्रहंसमाला के साथ शुभ्र विद्या एवं दोनों की स्वतः गति में एक सुकुमार साम्य है। विवाहावसर पर, शुक्लागुरु से लिप्त अंगों वाली एवं गोरोचना की पत्ररचना से युक्त पार्वती के लिये कवि पुनः 'चक्रवाकों' से युक्त, श्वेत सैकतवाली

---

51. देखें पृष्ठ 101
52. वि. 4/28
53. रघु.3/6
54. कु. 1/30

गर्गा'[55] का पवित्र रूप सामने उपस्थित करते हैं। अचानक शिवदर्शन से उत्पन्न, पार्वती की मानसिक व शारीरिक ठिठकन के लिये कवि नदी का ही चित्र उपस्थित करते हैं—

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धु
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।[56]

यहाँ रास्ते में आ गये पर्वत से आकुल सिन्धु का सुन्दर दृश्य बड़ी कलात्मकता से चित्रित किया गया है।

मार्ग भूल जाने के कारण कुश की सेना विन्ध्याटवी में कई मार्गों में बट जाती है। सेना के गभीर गर्जन से पर्वत गुफाएँ गूंजने लगती हैं। इस नीरस कथन को नर्मदा के निम्नलिखित सादृश्य ने सरस व सजीव कर दिया है—

मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना।
चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि॥

(रघु 16 31)

नर्मदा भी विन्ध्य-पर्वत श्रेणी में कई धाराओं में बहती है। पर्वतकुहरों में भयंकर आवाज करती है। रूप-ध्वनि का साम्य यहाँ बहुत सच्चा है अत दोनों चित्र एक दूसरे को इन्द्रियगम्य कर रहे हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी अनेकश कवि ने नदियों का उपमान बनाकर बिम्ब-सृष्टि की है।[57]

सरोवर—'रघुवंश' में राम पम्पा सरोवर का चित्रात्मक वर्णन करते हैं। 'पम्पा सरोवर बेंत के वनों से घिरा हुआ है। झुरमुटों के बीच से चंचल सारसों के झुण्ड अस्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। वहाँ चकवा-चकवी परस्पर कमल केसर देते हुए देखे जा सकते हैं।[58] यहीं शातकर्णी' मुनि के 'पंचाप्सरस' नामक सरोवर का वर्णन है। सरोवर का चित्र कवि ने आलंकारिक रूप में गोचर कराया है—

आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम्॥

(रघु 13 38)

स्वच्छ सरोवर चारों ओर वनों से घिरा हुआ है, जो दूर से ऐसा दिखाई पड़ता है मानो मेघों के बीच में से चन्द्रमण्डल झाँक रहा हो। रूप-रंग के सुन्दर सादृश्य ने प्रस्तुत वर्णन को पूर्णत चाक्षुष कर दिया है।

ऋतुओं के अन्तर्गत भी सरोवरों के बिम्ब मिलते हैं। शरद् ऋतु के स्वच्छ सरोवर हृदयहारी हैं—

---

55 वही 7/15
56 वही 5/84
57, देखें वि 5/122, रघु 12/32, कु 4/44 आदि
58 रघु 13/31–32

सोन्मादहंसमिथुनैरुपशोभितानि स्वच्छप्रफुल्लकमलोत्पलभूषितानि ।
मन्दप्रभातपवनोद्गतवीचिमालान्युत्कण्ठयन्ति सहसा हृदयं सरांसि ।।
(ऋतु. 3·11)

हंसों के जोडे, प्रफुल्ल कमल, मन्द लहरों की स्थिति से शान्त सरोवर का स्पष्ट रूप उपस्थित हो जाता है। हेमन्त में भी सरोवरों के ऐसे ही विम्ब प्रस्तुत किये गये हैं।[59]

गृह-वापियों के भी सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं। ग्रीष्म में सूखती बावड़ी का विम्ब पहले देखा जा चुका है।[60] 'मेघदूत' में यक्ष के घर की सुन्दर बावड़ी का विशद और भव्य चित्र मिलता है—

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ।। (उ.मे. 13)

'मरकतशिला.' विशेषण से सीढ़ियों की स्पष्ट रूप-रेखा सामने आती है। सुनहरे कमल व उनकी चिकनी वैदूर्य जैसी डंडियाँ बावड़ी को असाधारण सौन्दर्य प्रदान करते हैं। उस वापी में सुन्दर राजहंसों का विचरण दिखाकर कोई चित्रकार सुन्दर चित्र-रचना कर सकता है।

सादृश्य प्रस्तुत करने हेतु भी कवि ने जलाशय के रूप व गुणों को माध्यम बनाया है। इसमें भी सुन्दर विम्ब-योजना हुई है। इन्दुमती स्वयंवर के बाद अजपक्ष के लोग अत्यन्त प्रसन्न होते है। अन्य उम्मीदवार नृपगण उदास हो जाते हैं। उस समय के स्वयंवर-वितान को कवि प्रातःकाल के सरोवर से दृश्य बनाते हैं। प्रातः काल सरोवर में कमल खिलने लगते हैं और कुमुद मुकुलित होने लगते हैं—

प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम् ।
उपसि सर इव प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत् ।।
(रघु. 6·86)

प्रातःकाल के आभाहीन कुमुदों से, मुँह लटकाए बड़े राजाओं का दृश्य सर्वथा साकार हो गया है। इस सादृश्य के बिना प्रस्तुत स्थिति का नेत्रगम्य रूप बन ही नही सकता था। पुनः विवाह के अवसर पर, मन ही मन कुढ़ने वाले किन्तु ऊपर से प्रसन्न दिखने वाले राजाओं की भावना को ताल के उस निर्मल जल से अभिव्यक्त किया गया है जो ऊपर से तो स्वच्छ दिखाता है लेकिन जिसके अन्दर घड़ियाल छिपे रहते हैं—

---

59. ऋतु. 4/9
60. पृष्ठ 95

'ह्रदा प्रसन्ना इव गूढनक्रा'

यहाँ राजाओं के अमूर्त भावों को चित्रभाषा प्रदान की गई है।

दिलीप की सन्तानहीनता की समस्या को सुनकर ऋषि वशिष्ठ आँखें मूँदकर ध्यान करने लगते हैं। उस समय वे ऐसे सरोवर के समान प्रतीत होते हैं जिसकी सारी मछलियाँ सो गई हों—'सुप्तमीन इव ह्रद'।

'कुमारसम्भव' में 'जलसंघात' को भी कवि ने बिम्ब का स्रोत बनाया है। कामदेव क्षण भर में ही, सम्बन्ध तोड़कर, रति को उसी प्रकार अकेली छोड़ जाते हैं, जैसे जलसंघात बाँध को तोड़ कमलिनी को छोड़ बह जाता है।[61] कमलिनी का जीवन जल ही होता है। यदि सरोवर का जल पाल आदि के टूटने से बह जाय तो कमलिनी का अस्तित्व असंभव है। रति यहाँ कमलिनी के समान है, संसार उसके लिये सरोवर की भाँति और कामदेव उसका जीवन-प्रदाता जल है। इस सादृश्य ने बिम्ब को करुण भाव से ओतप्रोत कर दिया है।

इस प्रकार जल से संबंधित सुन्दर बिम्ब, कालिदास की रचनाओं में देखने को मिलते हैं।

आकाशीय बिम्ब—

आकाश व उससे सम्बन्धित सूर्य, चन्द्र आदि के बिम्ब बहुत कुछ ऋतुवर्णन व प्रात सन्ध्या के बिम्बों में आ चुके हैं। अत यहाँ शेष बिम्बों की ही समीक्षा की जायगी। ऋतु एवं वेला के परिवेश में पृथक् जो बिम्ब कवि ने आकाशीय वस्तुओं से ग्रहण किये हैं, वे ही यहाँ अभीष्ट हैं।

आकाश—'रघुवंश' में आकाश को अप्रस्तुत बनाकर कई स्थानों पर भावों को मूर्त किया गया है। प्रसवोन्मुखी सुदक्षिणा पति दिलीप को उस आकाशस्थली सी लगती है जिसमें वर्षोन्मुख मेघ घिरे हों—

पति प्रतीत प्रसवोन्मुखी प्रिया ददर्श काले दिवमभ्रितामिव।'

(रघु 3 12)

मेघों से परिपूर्ण आकाश को देखने से जो आशा व प्रसन्नता होती है, दिलीप का वही आशा व प्रसन्नता का भाव यहाँ अभिव्यक्त होता है।

राजा रघु सन्यास लेकर शान्ति का जीवन-यापन करने चले और युवा राजा अज राज्यारूढ हुए। उस समय के सूर्यवंश की स्थिति को कवि ने प्रात कालीन आकाश से दृश्यता प्रदान की है जिसमें एक ओर चन्द्रमा छिप रहा है और दूसरी ओर सूर्य निकल रहा है।

प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनेतनेश्वरम्।
नभसा निभृतेन्दुना तुलामुदितार्केण समारुरोह तत्॥

(रघु. 8 15)

61 रघु 4 6

इसी प्रकार जिस सूर्यवंश में एक मात्र क्षयरोग ग्रस्त अग्निवर्ण रह गये हैं, वह कुल उस आकाश की भांति दिखाई दिया जहां पश्चिम दिशा में एक कलामात्र से चन्द्र स्थित हो—

'व्योमपश्चिमकलास्थितेन्दु'— यहां आकाश के सूने पन से वंश की अवनति मूर्त कर दी गई है।

सूर्य—'मेघदूत' के निम्नलिखित श्लोक में कवि ने बड़ी संवेदनशीलता के साथ सूर्य को एक प्रेमी के रूप ने चित्रित किया है—

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्ति नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः।
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः॥ (पृ 42)

सूर्य प्रातःकाल कमलिनी रूपी खण्डिता नायिका के ओस-कणों को पोंछने आ रहा है। यदि मेघ ने सूर्य का बढ़ा हुआ कर (किरण व हाथ) रोका तो सूर्य बहुत नाराज होगा। यहाँ सागरूपक के आधार पर कवि ने एक सुन्दर बिम्ब की रचना की है। यह भाव-चित्र संस्कृत भाषा के समृद्ध शब्द-भण्डार व व्याकरणगत वैशिष्ट्य के कारण संभव हो सका है। 'कर' का प्रकृतिश्लेष व 'कमलवदनात्' का पदश्लेष इसमें प्रमुख कारण हैं।

सूर्य का समस्त सौन्दर्य वेला सम्बन्धी बिम्बों में अभिव्यक्त हुआ है। सूर्य के तेज, प्रभाव, सार्वभौमिकता आदि के आधार पर कवि ने अपने नायक राजाओं के गुणों व धर्मों को बिम्बात्मक अभिव्यक्ति दी है।

शत्रुओं के नष्ट होने पर रघु का प्रचण्ड प्रताप सर्वत्र फैल गया जैसे वर्षा ऋतु बीतने पर मेघादि के नष्ट होने से सूर्य का प्रचण्ड प्रकाश आकाश में सर्वत्र फैल जाता है।[62] रघु के शासन मे प्रजा में दुःख का नाम भी नही रहता जैसे सूर्य के रहते हुए अंधेरे को स्थान नही मिलता—

सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।
(रघु. 5·13)

राजा दिलीप की कर-नीति की प्रशंसा करते हुए कवि सूर्य का ही साधर्म्य प्रस्तुत करते हैं। सूर्य सहस्रगुणा बरसाने के लिये ही जल सोखता है। राजा दिलीप भी प्रजा की सुख-सुविधा के लिये ही उनसे नाम मात्र का कर लेते थे।[63]

---

62. रघु. 4/15
63. वही–1/18

कमलबन्धुओं को खिलाने वाला और शत्रु रूपी पंक को सुखाने वाला प्रतापी अवन्तिराज सूर्य से तुलनीय है। किन्तु कुमुद्वती-स्वरूपा इन्दुमती को वह नहीं रुचता।[64] ऋषि-ऋण, देव-ऋण व पितृ-ऋण से मुक्त हुए राजा अज, परिधि से छूटे सूर्य से उपमित किये गये हैं।[65] जैसे तेजस्वी सूर्य अपने प्रकाश से उत्तर व दक्षिण दोनों दिशाओं को पवित्र कर देता है, राजा अतिथि ने माता और पिता दोनों के कुलों को पवित्र कर दिया।[66] उन्होंने चारों और दूतों का ऐसा जाल बिछा दिया कि प्रजा की कोई बात उनसे छिपी नहीं रही क्योंकि जब आकाश में सूर्य का किरण जाल फैल जाता है, तो कुछ भी अदृष्ट नहीं रहता।[67] उदित सूर्य की भांति अतिथि राजा के दर्शन से प्रजा के पाप नष्ट हो जाते थे और उनके ज्ञानप्रकाश से अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता था।[68] इसीलिये 'मालविकाग्निमित्र' व 'विक्रमोर्वशीय' में सूर्य को राजाओं के समस्त गुणों से युक्त कहा है—

मा —अर्कैरूस्त्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्ति।

वि —तुल्योद्योगस्तव दिनकृतश्चाधिकारो मतो नः।

कालिदास के सूर्योदय व सूर्यास्त के बिम्ब, उत्थान-पतन व आशा-निराशा के प्रतीक हैं।,

चन्द्र—आकाश का सर्वाधिक आकर्षण चन्द्रमा से है। आदिकाल से यह कवियों व भावुकों के मन में कल्पना की सृष्टि करता आ रहा है। यह सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता है। 'मुखकमल' से भी अधिक 'मुखचन्द्र' एक रूढ उपमान है। चन्द्रमा के आकर्षक वैभव का चित्रण 'ऋतु' व 'रात्रि' वर्णन में आ चुका है। उसमें स्पष्ट है कि कालिदास ने चन्द्रमा से युक्त रात्रि, अन्धकार, चाँदनी आदि के अनेक सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। चन्द्र से सम्बन्धित बिम्ब कवि की व्यापक दृष्टि के प्रमाण हैं। चन्द्र के बिम्ब, रूप और सौन्दर्य के लिये, कलंक रहित, सकलंक, ग्रहण से ग्रस्त, पूर्णिमा के चन्द्र, द्वितीया के चन्द्र आदि अनेक रूपों में मिलते हैं।

'रघुवंश' में उज्ज्वल वेश वाले दिलीप व सुदक्षिणा की शोभा 'तुषार' विनिर्मुक्त चित्रा से युक्त चन्द्रमा के सामने बताई गई है।[69] भाइयों सहित राम जब पताका से सुशोभित पुष्पक विमान पर सवार होते हैं, तो लगता है मानो बुध व बृहस्पति के साथ चन्द्रमा रात में चंचल बिजली युक्त मेघ समूह पर गमन करता

---

64. वही 6/36
65 वही 8/30
56 वही 17/2
67 वही 17/48
68 वही—17/74
69, रघु 1/49

है। पहले बिम्ब में चन्द्रमा की उज्जवलता से दिलीप के वेष की उज्जवलता चाक्षुष की गई है। दूसरे बिम्ब में राम को चन्द्र के समान बताकर उनकी दर्शनीयता को रूप प्रदान किया गया है। यहाँ भरत व लक्ष्मण को बुध व बृहस्पति, विमान को मेघ, पताका को विद्युत से उपमित कर पूरा चित्र उपस्थित किया गया है।

गाय नन्दिनी के मस्तक पर श्वेत, तिरछी, रोमावली द्वितीया के चन्द्र सी प्रतीत होती है।[71] सन्तान हेतु व्रत से कृश हुए दिलीप को प्रजा उदित हुए द्वितीया के चन्द्र की भाँति एकटक होकर देखती है।[72] पहले बिम्ब में रूप व दूसरे में कृशता के धर्म को वाणी दी गई है। विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्वदान करके दरिद्र हुए चक्रवर्ती राजा रघु उस चन्द्रमा के समान बड़े सुन्दर लगते हैं जिसकी समस्त कलाएँ देवताओं ने पी डाली हों।[73] यहाँ चन्द्र के कलादान के सादृश्य से रघु के दान को महत्ता प्रदान की गई है। सोते हुए शत्रु राजाओं के बीच में विजयी राजा अज की शोभा को मुँदे हुए कमलों के बीच मे चमकते चन्द्र से दृश्यता प्रदान की गई है—

निमीलिता नामिव पंकजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशांकम्।
(रघु. 7.64)

मृत इन्दुमती के पीले शरीर को गोद में लिटाए हुए राजा, प्रातः काल के उस चन्द्रमा की भाँति दिखाई देते हैं जिसकी गोद मे मृग की धुंधली छाया हो।[74] निर्मल जल मे एक ही चन्द्रमा के अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं। चन्द्र के इस गुण को भी कवि ने बिम्ब बनाया है। 'एक ही विष्णु कौसल्या आदि दशरथ की तीनों रानियों के गर्भों में अलग-अलग निवास कर रहे थे जैसे प्रसन्न जलों में चन्द्र की प्रतिमाएं।[75] सीता के निर्वासन से दुःखी, राम की आँखों से टप टप आँसू गिरने लगते हैं जैसे पोष मास का ओस गिराने वाला चन्द्रमा—'तुषारवर्षीव सहस्य-चन्द्रः।[76] चन्द्रमा के उपमान से यहाँ राम के मौन अश्रुप्रवाह को बिम्बित किया गया है।

कामदेव के भस्म हो जाने पर शोक से कृश हुई रात दिन में निस्तेज दिखाई देने वाली चन्द्र किरण सी दिखाई देती है और कामदेव के शापान्त की उसी प्रकार प्रतीक्षा करती है जैसे चन्द्रिकरण सन्ध्या की प्रतीक्षा किया करती है—

---

69. रघु. 1/46
70. वही 13/76
71. वही 1/83
72. वही 2/73
73. वही 5/16
74. रघु. 8/42
75. वही 10/65
76. वही 14/84

शशिन इव दिवातनस्य लेखा
किरणपरिक्षततूसरा प्रदोषम् । (कु 4 46)

यहाँ एक प्राकृतिक दृश्य से कवि ने प्रस्तुत वर्ण्य की स्पष्टता व भावात्मकता प्रदान की है। तपस्या में अत्यन्त कृश हुई पार्वती के लिये भी कवि ने यही बिम्ब प्रस्तुत किया है—'शशाङ्करेखामिव दिवा'। इस प्रकार कवि ने चन्द्र सम्बन्धी अनेक बिम्ब प्रस्तुत किये हैं।

चन्द्र के साथ चाँदनी के भी सुन्दर बिम्ब कालिदास ने प्रस्तुत किये हैं। 'मालविकाग्निमित्रम्' में मालविका को चान्दनी व धारिणी को मेघावली का रूप दिया गया है—

'किन्तु मेघावलोरुद्धज्योत्स्नेव पराधीनदर्शना नक्रमवनी मालविका' (अक-2)

यहाँ ईर्ष्या आदि भावों से पूर्ण रानी के लिये 'मेघावली' का बिम्ब व्यञ्जनापूर्ण है। मालविका के लिये ज्योत्स्ना का बिम्ब उसकी सुन्दरता के कारण है। राजा मालविका के दर्शन नहीं कर पाता, उसमें धारिणी बाधा है। अत यहाँ 'मेघावली' में अवरुद्ध चाँदनी' की कल्पना बडी सार्थक है।

नक्षत्र—ग्रह-नक्षत्र को भी कवि ने बिम्ब का विषय बनाया है। अलकापुरी में यक्षों के मणिजटित भवन पुष्पों से भरे रहते हैं, मानो तारों से प्रतिबिम्बित हों।[7] मणियों व पुष्पों के लिये नक्षत्रों का उपमान सामान्य सा है, किन्तु उन्हें 'तारों के प्रतिबिम्ब' कहना नवीनता की सृष्टि करता है। इन्दुमती-स्वयंवर में राजाओं को नक्षत्र-तारा-ग्रहों से बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव स्थापित किया गया है।

मंगलग्रह को उपमान बनाकर कवि ने 'मालविकाग्निमित्र' में मनोरंजक बिम्ब सृष्टि की है—

'तावच्छीघ्र मपक्रमाव यावदङ्गारको राशिमिव अनुवक्र प्रतिगमन करोति'।
(अक–2)

यहाँ विदूषक इरावती की तुलना मंगल ग्रह से करता है। मंगलग्रह का रंग लाल माना जाता है, इरावती क्रोध से लाल हो रही है, यह वर्ण सादृश्य यहाँ स्पष्ट है। मंगल ग्रह अपनी राशि में तीव्रगति से मुडने पर बुरा फल देता है, इरावती के मुडकर वापस आने पर राजा के प्रेम-व्यापार में बाधा रूप बुरा फल होगा। यहाँ थोडे से शब्दों में यह पूरा अर्थ व्यञ्जित है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में लोगों को ज्योतिष का खूब ज्ञान था। उस समय के पाठक के मन में इस प्रकार के अप्रस्तुत बिम्बोद्बोधन में समर्थ रहे होंगे। आज का सामान्य पाठक इसमें स्पष्ट बिम्ब-ग्रहण करने में असमर्थ रहता है।

---

77 उ मे. 5

'विक्रमोर्वशीयम्' से संगमनीय मणि के लिये 'मंगलग्रह' का उपमान भी बिम्बाधायक है—

आभाति मणिविशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः।
नक्तमिव लोहिताग : परुषघनच्छेदसंयुक्तः ।। (5·4)

गृध पक्षी के द्वारा दूर ले जाया गया विशिष्ट मणि रात्रि के समय काले बादल खण्ड के समीपस्थ मगलग्रह-सा शोभित होता है। उपमा सुन्दर है। गीध की चोंच में लाल रंग की मणि है। गीध का रग बादल से दृष्टिगम्य किया गया है। मंगल का रंग लाल होने से मणि के लिये यह उपमा रूप-रंग में सटीक बैठती है। विशिष्टता यह है कि दोनों दृश्य आकाश के ही हैं। प्रस्तुत दृश्य-गृध्र का मणि ले जाना, कल्पना की वस्तु है, पाठक की देखी हुई नहीं, किन्तु मेघ-परिवेष्टित ग्रह का दृश्य प्रत्यक्ष-सिद्ध है। कवि की यह कल्पना सर्वथा मौलिक है।

अन्यत्र भी कवि ने नक्षत्रों को उपमान बनाया है।[78]

मेघ—कालिदास के प्राकृतिक बिम्बों में, स्रोत के रूप में, मेघ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 'मेघदूत' काव्य तो एक 'बिम्ब-काव्य' ही है। यह सम्पूर्ण काव्य मेघ के रूप, रंग, नाद आदि से सम्बन्वित चित्रों से सुशोभित है। कवि ने मेघ को एक सचेतन प्राणी के रूप में देखा है। वस्तुतः इसके बिना काव्य की कल्पना ही नहीं हो सकती थी। मेघ के वैज्ञानिक स्वरूप-अचेतन स्थिति से भी कवि अनभिज्ञ नहीं है। कालिदास जानते हैं कि मेघ, धूम, ज्योति, सलिल, मरुत् का संघटित रूप' मात्र है. किन्तु साहित्य मे विज्ञान के सत्य से बढकर शिवं एवं सुन्दरं का स्थान होता है। कालिदास मेघ को 'उच्चवंशोत्पन्न' मानते हैं। वह दूर-दूर तक जाने वाला है। प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न होने के साथ-साथ मेघ शिवम्-जनकल्याण की भावना से भी ओत-प्रोत है। वह सतप्तों का रक्षक है। मेघ को देखते ही जन-मन में उत्कण्ठा, आशा व प्रेमभाव का संचार हो जाता है। इन्ही गुणो के आधार पर कवि ने मेघ का मानवीकृत बिम्ब खड़ा किया है। मेघदूत का यक्ष मेघ को 'साधु' 'सुभग' 'सौम्य' 'मित्र' आदि शब्दों से सम्बोधित करता है। मेघ के रूप, वर्ण व गर्जन को कवि ने बिम्बों में प्रस्तुत किया है। मेघ की क्रिया व गुणों के भी बिम्ब दिये गये हैं।

कालिदास के मेघ-सम्बन्धी बिम्बों को निम्नलिखित पांच रूपों मे देखा जा सकता है—

(1) **लक्षित बिम्ब**—जहां स्वाभावोक्ति के आधार पर मेघ के प्राकृतिक रूप को इन्द्रिय संवेद्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये बिम्ब सर्वथा अलंकृत हैं। 'मेघदूत' के प्रारम्भ में ही गगन में गतिमान मेघ का एक सुन्दर, सजीव चित्र है—

---

78. देखें रघु. 11/36 व 18/32

मन्द मन्द नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वा
वामश्चाय नदति मधुर चातकस्ते सगन्ध ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमाला
सेविष्यन्ते नयनसुभग खे भव त बलाका ॥ (पू मे 10)

मेघ आकाश मे गतिमान है । मन्द-मन्द वायु उसे प्रेरित कर रही है । एक ओर चातक मधुर पुकार-रत है । बलाकाए साथ-साथ लगी हुइ ह । यहा रूप, स्पर्श व शब्द का सम्मिलित दृश्य है । यह बिम्ब-विधान का विशुद्धतम उदाहरण माना जा सकता है । शब्दो का चयन भी अत्यन्त अनुकूल है । श्री भगवतशरण उपाध्याय के शब्दो मे–'यह नेचुरलिज्म' व 'इमेजिज्म' का सम्मिलित दृश्य है । वेदर्भीवृत्ति है । श्लोको से ही जैसे मधुर ध्वनि निकल रही है ।'[79]

अगले पद्य मे इसी दृश्य मे इतना सयोजन और हो जाता है कि मेघ के साथ नभ मे राजहस भी कमलनाल के टुकडो को मुख मे दबाकर उडने लगते हैं—

आकैलासा द्बिस किसलयच्छेदपाथेयव त' ।
सपत्स्य ते नभसि भवतो राजहसा सहाया ॥ (11)

(2) लक्षितालकृत बिम्ब—मेघ से सम्बन्धित दूसरे प्रकार के बिम्ब वे हैं जहा मेघ के प्राकृतिक रूप को आलम्बन तो बनाया गया है किन्तु उसका आलकारिक वर्णन करते हुए उसे किसी अप्रस्तुत रूप मे भी देखा गया है । ये बिम्ब भी दो प्रकार के हैं—(क) जिनमे तुलना के लिये लाया गया सादृश्य भी प्रस्तुत की भाँति वर्ण्य है । (ख) जिनमे मेघ की किसी अप्रत्यक्ष उपमान से तुलना की गई है । मेघ के इस प्रकार के अलकृत बिम्ब 'मेघदूत' मे अत्यन्त सजीव व सरस हैं । 'क' प्रकार के बिम्ब, जिनमे दोनो ही विषय वर्ण्य हैं, अतिशय चमत्कार के आधायक हैं । 'उत्तर-मेघ' मे यक्ष अलकापुरी के प्रासादों की प्रशसा करते हुए मेघ व भवनो का एक बिम्ब-प्रतिबिम्ब चित्र प्रस्तुत करता है—

विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा
सगीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगभीरघोषम् ।
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तु गमभ्र लिहाग्रा
प्रासादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैविशेषै ॥ (1)

ऊँचे-ऊँचे भवन अपनी अनेक विशिष्टताओ के कारण मेघ से बराबरी करने मे समर्थ हैं—'मेघ में है विद्युत, अलका के प्रत्येक प्रासाद मे हैं ललित वनिताएँ, जो विद्युत् की ही भाँति लास्यमयी एव अपनी रूपप्रभा से आँखो को चकाचौंध करने वाली है । मेघ मे है इन्द्रधनुष, प्रासादो में है विभिन्न वर्णों का

---

79 'कालिदास के सुभाषित' पृ 35

चित्रण, मेघ की है स्निग्ध गंभीर ध्वनि और अलका के प्रासाद-प्रासाद में है संगीत के लिये प्रहत मृदंग का गुरु-मंद्र-रव, जैसे मेघ अन्तस्तोय है, अर्थात् जलपूर्ण होने के कारण तरलाकार है, अलका के प्रासादों के मणिमय स्वच्छ आंगन भी वैसे ही हैं। मेघ जैसे गगनस्पर्शी है, प्रासाद भी वैसे ही गगनस्पर्शी है। इसलिये सब ओर से वे समान हैं। इस बिम्ब में यह कहना कठिन है कि मेघ अप्रस्तुत है और प्रासाद प्रस्तुत: कवि ने अगल-बगल में दो सुन्दर चित्र सजा दिये हैं इसी प्रकार अन्यत्र—

> तस्यास्तीरे रचितशिखर: पेशलैरिन्द्रनीलै:
> क्रीडाशैल: कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीय: ।
> मद्गेहिन्या: प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
> प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वा तमेव स्मरामि ॥ (उ. मे. 17)

बावड़ी के किनारे, सुन्दर नीलम मणियों से बने हुए शिखरों वाला एवं सुनहरी कदली की बाड़ से दर्शनीय क्रीड़ा-पर्वत है। किनारों पर चमकती विद्युत् से युक्त मेघ को देखकर, यक्ष को, उसकी याद सताने लगती है। पर्वत नीलमणियों से जटित है, मेघ भी नीला है। दोनों में रूप-रंग का साम्य है। चंचल कनक-कदली विद्युत् के समान है। यहां दोनों दृश्य एक दूसरे के रूप को स्पष्टता प्रदान कर रहे हैं। ये दोनों ही चित्र वर्ण्य वस्तु की भांति हैं, अलंकार्य व अलंकार जैसी पृथक् स्थिति इनकी नहीं है।

मेघ के अनेक बिम्ब ऐसे हैं जहां मेघ की स्थिति को अनेक सदृश वस्तुओं में मूर्त रूप प्रदान किया गया है। 'मेघदूत' में इस प्रकार के बिम्ब अधिकता से मिलते हैं। रामगिरि के शिखरों को जब मेघ स्पर्श करता है, तो लगता है मानो कोई मतवाला हाथी अपने दांतों से पर्वत पर टूंसा मारने का खेल खेल रहा हो।[80] आकार, रंग व ध्वनिसाम्य के कारण गज का मेघ से सादृश्य रूढ़ सा हो गया है, किन्तु प्रस्तुत उदाहरण में गज को एक विशेष क्रिया में रत बताने से रूढ़ता समाप्त हो गई है। 'ऋतुसंहार' में भी मेघ को 'मत्तकुंजर' कहा गया है।[81]

जब मेघ आकाश में उड़ता है तो सिद्ध बालाओं को ऐसा लगता है कि जैसे पवन पर्वत-शिखर को उड़ाए लिये जा रहा है—

> अद्रे: शृंगं हरति पवन: किंस्विदित्युन्मुखीभि: । (पू.मे. 14)

यहां पर्वत-शिखर का उपमान मेघ को एक विशेष आकार प्रदान करता है।

---

80. पू. मे. 2
81. 2/1

मेघ विभिन्न स्थानों पर गमन करता है और अनेक रूप धारण करता है। कालिदास की उर्वर कल्पना उन्हें सादृश्यों से प्रत्यक्ष करती चलती है। आम्रकूट पर्वत पर स्थित मेघ का एक सुन्दर शब्द चित्र कवि ने खींचा है—

छन्नोपान्त परिणतफलद्योतिभि काननाम्रै
त्वय्यारूढे शिखरमचल स्निग्धवेणीसवर्णे।
नून यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्था
मध्ये श्याम स्तन इव भुव शेषविस्तारपाण्डु ॥ (पू मे 18)

कालिदास की कल्पना यहाँ आकाश की ऊचाइयो को छूने लगती है। कवि ने मेघ के लिये दो बिम्ब प्रस्तुत किये है। पृथ्वीवासियो के लिये —'स्निग्धवेणीसवर्ण' और नभचारियो के लिये पर्वत सहित मेघ का दृश्य 'स्तन इव भुव'। उल्लेखनीय है कि यह दूसरा दृश्य आकाश से ही दिखाई दे सकता है। कवि के ऐसे अनुपम बिम्बो के लिये ही शेक्सपीयर का कथन याद आता है कि कवि की दृष्टि पृथ्वी से स्वर्ग और स्वर्ग से पृथ्वी तक विचरण करती रहती है।[82]

चम्बल के जल मे मेघ का रूप स्थूल इन्द्रनीलमणि जैसा लगता है तो गगा के प्रवाह मे यमुना के सगम जैसा। सन्ध्या के समय महाकाल मन्दिर मे लाल आभा वाला मेघ रक्त से भीगे गजचर्म की शोभा धारण करता है। बर्फ से ढके हिमालय शिखर पर लिपटे मेघ के लिये कवि शिवजी के सफेद बैल के द्वारा सीगो से उखाड़ी कीचड का बिम्ब देता है।[83] मेघ के रग के लिये कीचड, शिखर के लिये शृग व पर्वत के लिये नान्दी का उपमान मिलकर एक स्पष्ट बिम्ब का निर्माण करते हैं।

क्रौंचद्वार के छोटे मार्ग से प्रविष्ट होने पर तिरछे आकार वाले मेघ की शोभा, वामनरूपधारी विष्णु के तिरछे एव लम्बे आकार वाले श्यामल चरण से रूपायित की गई है। श्वेत कैलास पर स्थित मेघ के लिये, भगवान बलराम के कन्धे पर पड़े नीलवस्त्र की कल्पना मनोहर बिम्ब का विधान करती है। कैलास पर्वत पर विचरण करता मेघ अपने शरीर से, सोपान की भाँति ऊचे-नीचे खण्ड सजा देता है, जिससे शिव-पार्वती उस सीढ़ी पर पैर रखकर मणितट पर आरोहण कर सकें। बड़ी पवित्र कल्पना है। ऐरावत के मुख पर शोभित मेघ के लिये मुख पर पड़े झीने वस्त्र की कल्पना और भी मनोहर है।[84]

स्पष्ट है कि मेघ के रूपो को कवि ने अनेक उपमानो से दृश्यात्मकता प्रदान की है। मेघ के सावले रग के लिये 'शार्ङ्गिणो वर्णचौर' एव 'भर्तु कण्ठच्छ-

---

82 देखें—मूल, इसी प्रबध के प्रथम अध्याय मे पृष्ठ 10

83 देखें—पू मे 59,54,39 व 55

84 देखे क्रमश श्लोक स 60,62,63,65

विरिति' अप्रस्तुत लाये गये है। उसकी ध्वनि को नगाडों की आवाज से श्रुतिगम्य किया गया है।[85] 'विक्रमोर्वशीयम्' मे मेघ को विमान का रूप दिया गया है, विद्युत् जिसकी पताका है इन्द्रधनुष सुन्दर चित्र है।[86]

(3) **मानवीकृत बिम्ब**—मेघ के तीसरे प्रकार के बिम्ब वे है जिनमें मेघ को एक संवेदनशील प्राणी के रूप में देखा गया है। उस पर मानवीय भावों का आरोप किया गया है। 'मेघदूत' मे इसीलिये उसे एक संवेदनशील दूत के कार्य में नियुक्त किया गया है। उसे रामगिरि पर्वत का मित्र बनाया गया है और उससे विदा माँगने के लिये कहा गया है।[87] विभिन्न नदियो के सन्दर्भ में उसे एक चाटुकार व कामी नायक का बिम्ब दिया गया है। नदियों के सन्दर्भ मे ये बिम्ब देखे जा चुके हैं। महाकाल मन्दिर मे कवि उसे भक्त के रूप मे देखता है। वह परोपकारी है। रामगिरि से अलका तक के मार्ग में वह सभी का कुछ न कुछ उपकार करता चलता है। मेघ यक्ष के लिये तो 'दयिताजीवनावलम्बनदाता' है। प्रोषितपतिकाओं को आश्वासन देने वाला और कृषको का सर्वस्व है। उज्जयिनी मे मालिनें धूप मे फूल बीनते-बीनते पसीने मे परेशान हो उठती है। मेघ उनके मुखो पर छाया करके बड़ा उपकार करता है—

गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां।
छायादानात्क्षणपरिचित. पुष्पलावीमुखानाम्॥ (पू.मे. 27)

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के सहज व्यापारों को भी कवि अपनी कल्पना से संवेदनायुक्त कर अलौकिक आनन्द की सृष्टि करता है। राजा पुरूरवा मेघ से चेतन प्राणी की भाँति अपनी प्रिया को ढूंढ लाने को कहता है। यतः मेघ सर्वत्र विचरणशील है, वह उसकी प्रिया को अवश्य खोज सकता है। एकाएक तो उसे लगा था कि उर्वशी को यह कोई राक्षस ले जा रहा है लेकिन भ्रम टूटने पर वह देखता है कि यह तो मेघ और विद्युत् है।

(4) **उद्दीपन रूप में**—उद्दीपन के रूप मे भी मेघ के बिम्ब आए है यद्यपि ये अन्य रूपों की भाँति कलात्मक नही हैं। मेघ को देखकर सुखी जन्तु भी उत्कण्ठित हो जाते है। 'ऋतुसंहार' में मेघ का उद्दीपन रूप वर्णित है। विरही जनों का दुःख मेघदर्शन से बढता है। 'रघुवंश' में पुष्पक विमान से लौटते समय मेघ के जो दृश्य आते है वे राम के विरहोद्दीपन के कारण बने थे—

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद् घनगर्जितानि॥
(13·28)

---

85. देखें—पू.मे. 49,36
86. 4/74
87. पू.मे. 12

(5) उपलक्षित बिम्ब—मेघों को, अन्य वस्तुओं के रूप गुण इन्द्रियगम्य कराने हेतु, अप्रस्तुत रूप में भी अनेकधा लाया गया है। इस प्रकार के बिम्ब सूर्य, चन्द्र, वर्षा आदि शीर्षकों के अन्तर्गत आ चुके हैं। विस्तार भय से अब इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार 'मेघदूत' में मेघ के आद्योपान्त जो सुन्दर बिम्ब मिलते हैं उनके सन्दर्भ में श्री आर के मूर्ति का यह कथन बड़ा उचित है—

> "The start of the cloud along with the crane—
> couples, followed by the romantic pictures of
> a rainbow as a peacock feather and a mountain
> as the earth's breast, etc set tone and colour
> to the love scenes of the picture gallary,"[88]

आकाशीय उपादानों में मेघ से सम्बन्धित विद्युत इन्द्रधनुष आदि के बिम्ब स्वत ही आ गए हैं। जैसाकि कहा गया है, 'मेघदूत' के एक श्लोक में इन्द्रधनुषयुक्त मेघ का सुन्दर बिम्ब है जिसमें इन्द्रधनुष का सादृश्य मयूरपंख से स्थापित किया गया है—

> रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्
> वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनु खण्डमाखण्डलस्य।
> येन श्याम वपुरतितरा कान्तिमापत्स्यते ते
> बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णो ॥ (पू मे 15)

यह एक बहुत ही सुन्दर कल्पना है। इन्द्रधनुष को रत्नों की झिलमिल और मोर मयूरपंखों से उपमित करना सर्वथा मौलिक है। कृष्ण को, ग्वाले के वेष में, मयूरपिच्छ धारण किये हुए मेघ के उपमान रूप में प्रस्तुत करना, मेघ को अलौकिक रूप व महत्त्व प्रदान करता है।

विद्युत को वर्षा के सन्दर्भ में व मेघ की सहचरी के रूप में कवि ने देखा है। इसको पताका, सुन्दरी, नारी आदि के उपमानों में मूर्त किया है। 'रघुवंश' में इसे कंकण का बिम्ब दिया गया है। विमान से बाहर निकले सीता के हाथ पर मेघ, विद्युत् का कंगन पहना देता है।[89] कवि ने नारी की करधनी के लिये विद्युत का बिम्ब दिया है। 'आंसुओं की बरसाती, सोने की करधनी से गजा का लाहन करती इरावती उसे मूसलाधार वर्षा करती उस मेघमाला सी जान पड़ती है

---

88 त्रिवेणी भाग 37, अप्रैल, 1968 में प्रकाशित लेख—"Dhvani in Meghdoot" p 19 में उद्धृत।

89 रघु 13/21

जो विजली की शृंखला से विन्ध्याचल को तोड़ा करती है।[90] सुदक्षिणा को भी कवि ने विद्युत् का रूप दिया है।[91] इसी प्रकार के विम्ब अन्यत्र भी देखे जा सकते हैं।[92]

इस प्रकार आकाशीय विम्ब कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं उच्च कलात्मकता के परिचायक है।

पार्थिव विम्ब

कालिदास के काव्य मे सुन्दर पार्थिव चित्र मिलते है। इनमे पृथ्वी वन-प्रदेश, पर्वत, लता-वृक्ष, फल-फूल, खनिज आदि के अनेक विम्ब कवि ने प्रस्तुत किये है। इसी वर्ग मे मार्ग, घास, कण्टक, धूलि आदि के विम्ब रखे गये है। कालिदास ने अपने चतुर्दिक् देखी वस्तुओ का अभिनव विम्ब-विधान किया है। उनके कुछ पार्थिव चित्र तो बहुत ही सुन्दर है और संश्लिष्ट हैं। उन्हे पर्वत, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि विभिन्न वर्गो में रखकर नही परखा जा सकता। वस्तुतः कवि की दृष्टि बहुमुखी (Horizontal) होती है, एकमुखी (Vertical) नही। वह किसी एक नियत दिशा में नही बढती, अपितु कृशानु की भाँति सभी दिशाओ मे एक साथ प्रसृत होती है। 'शकुन्तलम्' मे दुष्यन्त कण्व के आश्रम का एक सुन्दर दृश्य चित्रांकित करना चाहते हैं। कालिदास स्वयं चित्रकार बन जाते है और कहते हैं—

> कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
> पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
> शाखालम्बितवल्कलस्यचतरोः निर्मातुमिच्छाम्यधः
> शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयन कण्डूयमानां मृगीम्॥ (6·17)

मालिनी नदी का स्रोत और उसके दोनों और सैकतलीन हंसमिथुन, सरित् के दोनो ओर हिमालय की पवित्र ढलानें जहाँ हरिण विश्राम कर रहे है। इतना ही नहीं, पृष्ठभूमि में एक सुन्दर वृक्ष, डालियो पर सूखते हुए वल्कल वस्त्र और डालियों के नीचे—परम विश्वस्त भाव से कृष्णमृग के सींग से अपने वामनेत्र को खुजलाती हरिणी। यहाँ कवि ने आस-पास के परिवेश को समेटते हुए एक बहुत सुन्दर शब्दचित्र खीचा है।

इसी नाटक में एक दूसरा चित्र है, लेकिन यह आकाश मे बैठकर उतारा गया चित्र है, उड़ते हुए विमान से—

> शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
> पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पदपाः।

---

90. मा. 3/21
91. रघु. 1/36
92. देखो—रघु. 6/65 व 17/15

सतानैस्तनुभावनष्टमलिला व्यक्ति भजन्त्यापगा
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवन मत्पार्श्वमानीयते ॥ (7·8)

लगता है किसी ने वायुयान मे बैठकर 'मूवी 'मरा' घुमा दिया हो। तेज से नीचे उतरते रथ के कल्पनात्मक चित्रण म आश्चर्यजनक सच्चाई है। चारो स्थितियाँ सर्वथा स्पष्ट हैं, उनका श्रम प्रशसनीय है। अतिम पक्ति मे 'पृथ्वी के ऊपर उछालने की कल्पना' अत्यन्त कलात्मक है। वास्तव मे रथ पृथ्वी के पास जा रहा है किन्तु राजा को लगता है पृथ्वी उसके पास किसी के द्वारा उछाली जा रही है। *यह कालिदास की सर्वोच्च उत्प्रेक्षाओ मे से एक मानी जा सकती है।*

अब पार्थिव बिम्बो मे पृथक् पृथक् पृथ्वी, पवत आदि के बिम्बो को देखते है।

पृथ्वी—पृथ्वी का लक्षित रूप मे वर्णन अनेक प्रसगो मे आ चुका है। उपर्युक्त पद्य मे भी पृथ्वी का स्पष्ट बिम्ब उपलब्ध है। 'रघुवश' के 13वें सर्ग म विमान मे बैठे राम के द्वारा पृथ्वी के सुदर बिम्ब दिये गये हैं। अप्रस्तुत रूप मे पृथ्वी से अनेक स्थानो पर बिम्ब-सृष्टि की गई है। लिंग और गुणसाम्य के आधार पर स्त्रीपात्रो की क्षमा, उदारता आदि को पृथ्वी से उपमित किया गया है। रानी धारिणी ईर्ष्या को भूल, सुसज्जिता मालविका के साथ आती हुई राजा को, राज्यलक्ष्मी सहित वसुमती जैसी ही ज्ञात होती है। 'वसुमती' के उपमान से कवि धारिणी की सहनशीलता को अभिव्यक्त करना चाहता है।[93] क्रुद्ध कैकेयी के लिये मेघसिक्त भूमि का बिम्ब दिया गया है, जो बिल मे घुसे दो सर्पों की भाति दो वरो को उगल देती है।[94] राजा दिलीप नन्दिनी गाय की रक्षा अपनी रक्षा पृथ्वी की भाँति ही करते हैं—

पयोधरीभूतचतु समुद्रा जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥ (रघु 2 3)

रघुवश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण की आपन्नसत्वा रानी से, प्रजा, सावन मास मे बोए गए बीज से युक्त पृथ्वी की भाति, उत्तराधिकारी रूपी फलप्राप्ति की आशा लगाए रहती है।[95] पृथ्वी को कवि ने राजा की भोग्या के रूप मे प्रस्तुत किया है,[96] और रानियो की सपत्नी बनाया है।[97] राम सीता को उसी निस्पृहभाव से त्याग देते हैं जैसे पिता की आज्ञा से पृथ्वी को त्यागा था।[98] पचाग्नि तप से पार्वती वैसी ही तप जाती हैं जैसे ग्रीष्म से पृथ्वी। वर्षा की प्रथम

---

93 मा 5/6
94 रघु 12/5
95 वही 19/57
96 वही 8/28
97 वही 6/63
98 वही 14/39

बूंदें उनके शरीर पर तप्त धरा पर गिरने वाली बूंदों की ही भाँति ऊष्मा का कारण बनती हैं—

तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणममुंचदूर्ध्वगम् ॥
(कु. 5·23)

इस प्रकार कवि ने अधिकतर नारियों के गुणों को पृथ्वी द्वारा ही इन्द्रिय-गोचरता प्रदान की है।

पर्वत—पर्वत-शिखरों, कन्दराओं, घाटियों, प्रस्तरखण्डों व सम्बद्ध झरनों, प्रपातों आदि के सुन्दर दृश्य, प्रस्तुत व अप्रस्तुत रूप में कालिदास के काव्यों में बिखरे पड़े हैं। संभवतः स्वयं पर्वत प्रदेश काश्मीर की सन्तान होने के कारण कवि पर्वतों से अत्यन्त प्रभावित हैं। किस ऋतु में कौन सा पर्वत कैसी शोभा धारण करता है? उसके वृक्ष, पुष्प-फल, जीव-जन्तु आदि कौन-कौन से हैं? वहाँ के निवासियों की क्या विशेषताएँ हैं? पत्थरों में कौन-कौन से खनिज छिपे हुए हैं? इन सबका विस्तृत ज्ञान कालिदास को था। इसीलिये पर्वतों के आलम्बनात्मक विम्ब, उनके काव्यों में प्रभूत संख्या में मिलते हैं। उन्होंने भारत के लगभग सभी प्रमुख पर्वतों का उल्लेख किया है। हिमालय व उसके विभिन्न भाग-कैलाश, हेमकूट, गन्धमादन आदि, आम्रकूट, चित्रकूट, दर्दुर, देवगिरि, गोवर्धन, महेन्द्र, मलय, माल्यवान्, मन्दर, मेरु, नीचैः, पारियात्र, रामगिरि, सह्य, त्रिकूट व विन्ध्य आदि की सही सही स्थिति का उल्लेख कवि ने किया है। 'कुमारसंभव' व मेघदूत' के तो घटनास्थल ही पर्वत-प्रदेश हैं।

हिमालय से कवि को विशेष प्रेम है। 'कुमारसंभव' में पौराणिक कथाओं के आधार पर कवि ने हिमालय को न केवल मानव-स्वरूप, अपितु देवस्वरूप प्रदान किया है। 'प्रथम-सर्ग' में कवि ने हिमालय के रूप गुण, वैशिष्ट्य का वर्णन करते समय, उसकी प्राकृतिक स्थिति का भव्य खाका प्रस्तुत कर दिया है। सर्वप्रथम उसके विस्तार को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ (1)

यहाँ उत्प्रेक्षा के आधार पर एक सुन्दर विम्ब प्रस्तुत है। 'मापने का दण्ड' की कल्पना हिमालय की स्थिति को हमारे नेत्रों में बिलकुल स्पष्ट कर देती है। प्रकृति की भव्यतम विभूति के वर्णन में कवि की भव्यतम कल्पना प्रकट हुई है। 'पृथ्वी का मानदण्ड' इस छोटे से विम्ब में विशाल अर्थ समाया हुआ है। बिना किसी कृत्रिमता के सरल व स्वल्प शब्दों में वर्ण्य का सजीव व भव्य रूप खड़ा कर देना हमारे कवि की ही सामर्थ्य है।

हिमालय हिम का आलय है, लेकिन उसका यह दोष चन्द्रकलंक की भाँति नगण्य है, क्योंकि वहाँ अनेक बहुमूल्य खनिज भी छिपे पड़े हैं। उसकी अनेक चट्टानें गेरू आदि धातुओं से रंग-बिरंगी हैं। उन चट्टानों पर बादलों के टुकड़े भी चट्टानों की छाया से रंग-बिरंगे हो जाते हैं, मानो असमय में सन्ध्या हो गई हो—

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम्॥ (1 4)

'अकाल सन्ध्या' की कल्पना सचित्र है। सन्ध्याकाल में बादल रंग बिरंगे हो जाते हैं। हिमालय की धातुमयी चोटियों की छाया से बादल सदा ही रंग-बिरंगे बने रहते हैं। 'अकाल सन्ध्या' का उपमान यहाँ प्रस्तुत विषय को एक झटके में साकार कर देता है। शृंगारिक कवि थोड़ा आगे बढ़ जाते हैं और अप्सराएँ सन्ध्या जान, असमय में ही शृंगार करने में व्यस्त हो जाती हैं। वह धातुमत्ता ही तो शृंगार की सम्पादयित्री है। गेरू आदि का प्रयोग अप्सराएँ शृंगार-सामग्री के रूप में करती हैं। यहाँ खनिज सम्पत्ति के विषय को बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत कर प्रभावशाली बना दिया गया है।

हिमालय की ऊँचाई का वर्णन कवि सीधा न करके कई घटनाओं व बिम्बों के माध्यम से करते हैं। हिमालय की चोटियाँ मेघों से ऊपर निकल जाती हैं, तब मेघ शिखरों के चारों ओर मेखला सी बना लेते हैं। वहाँ के निवासियों के क्या कहने? जब इच्छा हुई नीचे उतरकर मेघों की छाया व बरसात का आनन्द लिया और जब बरसात से ऊब गये ऊपर चढ़कर धूप में बैठ गये—

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृंगाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥
(1 5)

यहाँ पदों का लालित्य प्रशंसनीय है। पदों की धीरगामिनी ध्वनि 'आमेखलं संचरतां घनानाम्' ही मेघों के संचरण को प्रत्यक्ष कर देती है। आगे कवि सूर्य को भी शिखरों से नीचे घूमता हुआ बताते है। हिमालय के उच्चभागों में स्थित सरोवरों में कमल नीचे घूमने वाले सूर्य की ऊर्ध्वमुख किरणों द्वारा खिलाये जाते हैं।[99]

चवरी गायें हिमालय की गिरिराज पदवी को सार्थक करती हैं—

लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः॥
(1 13)

---

99 कु 1/16

कालिदास ने यहाँ उच्चासन पर विराजमान एक सम्राट के बिम्ब की कल्पना की है, जिसे चंवर डुलाये जा रहे है। यह कल्पना हिमालय को गौरव प्रदान करने में सहायक है। चँवर राजसी वैभव का प्रतीक होता है। चमरी गाय की पूंछ हिलने-डुलने से चंवर की क्रिया मूर्त हो गई हैं। चवर का रूप भी 'चन्द्रमरीचिवत्' गौर कहकर स्पष्ट कर दिया गया है।

हिमालय की गुफाओं के दृश्य भी कवि ने अपनी कल्पना से अलंकृत कर प्रस्तुत किये हैं—

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किम्पुरुषांगनानाम् ।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ॥

(1·14)

प्रियतम-कृत वस्त्रापहार से लज्जित किन्नरियों के लिये गुफा-द्वार पर मेघ का अचानक परदा बन जाना, मौलिक कल्पना है।

'कुमारसंभव' का यह हिमालयवर्णन अत्यन्त हृदयग्राही व बिम्बात्मक है। कल्पनाएं सर्वथा अछूती है और हिमालय की विभूति व सौन्दर्य को स्पष्ट करने वाली हैं।

कैलास का बिम्बात्मक चित्रण 'मेघदूत' में हुआ है। उसे देवांगनाओं का दर्पण व शिवजी का एकत्रित अट्टहास कहा गया है—

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतःप्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ (पू.मे. 61)

कैलास की चिकनी स्फटिक जैसी शुभ्रता को चाक्षुष करने के लिये 'देवांगनाओं का दर्पण' का उपमान सर्वथा सार्थक है। इससे श्वेतता के साथ बिम्ब-ग्राह्यता भी सूचित होती है। 'दशमुख' आदि विशेषण से पौराणिक सन्दर्भ में कैलास को मूर्तता प्रदान की गई है। कुमुदवत् स्वच्छ उच्च चोटियों से उच्चता व विस्तार को प्रकट किया गया है। चौथी पंक्ति में कवि ने उच्चतम कोटि की कल्पना प्रस्तुत की है। हास का रंग साहित्य-रूढ़ि में श्वेत माना जाता है। शिवजी का अट्टहास होने से उसकी शुभ्रता और भव्यता बढ़ जाती है। शिवजी का दिन-प्रतिदिन का अट्टहास परत-दर-परत बढ़ता बढ़ता राशिरूप हो गया है। राशीभूत से हिम की कठोरता भी व्यंग्य है। पवित्र कैलास पर एकत्रित अपार हिमराशि के लिये और सुन्दर उपमान क्या होगा? यद्यपि उपमान रूढ़ व अमूर्त है किन्तु कल्पना में हिमराशि को मूर्त बनाने में सर्वथा सफल है।

आम्रकूट पर्वत का सुन्दर बिम्ब मेघ के सन्दर्भ में स्पष्ट किया जा चुका है, जहां उसे पृथ्वी रूपी नायिका का स्तन बनाया गया है। मलय एवं दर्दुर शिखरों को,

जो पास-पास स्थित हैं व चन्दन वृक्षों से युक्त हैं, दक्षिण दिशा के दो स्तनों के रूप में देखा गया है।[100] मलयाचल की गन्ध को कवि ने गजमद की गन्ध से मवद्य किया है।[101] सह्यपर्वत को मेदिनी के स्रस्तांशुक नितम्ब का रूप दिया गया है, समुद्र ही उसका खिसका हुआ नीला अधोवस्त्र है।[102] बिम्ब सुन्दर है। नीचै नामक पर्वत शिखर को मेघ के मिलन से चेतनवत् पुलकित बताया गया है। खिले हुए कदम्ब-पुष्पों से वह रोमांचित दिखाई देता है—

'त्वत्सम्पर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पै कदम्बै ।'

व 'य पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणाम ' आदि (पू मे 27)

यहाँ प्रथम पंक्ति में स्पर्श व द्वितीय में पर्वत की गन्ध को संवेद्य किया गया है—

चित्रकूट का सुन्दर चित्रांकन 'रघुवंश' में मिलता है —

'धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंक ।

बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्त, ककुद्मानिव चित्रकूट ॥

(13 47)

चित्रकूट को एक मस्त साँड का बिम्ब दिया गया है। झरझर बहते झरनों वाली गुफा, सशब्द झाग गिराता, साँड का मुख है। मेघयुक्त शिखर, कीचड़ सने सींग हैं। यहाँ अप्रस्तुत साँड का दृश्य प्रस्तुत पर्वत को दृश्यता प्रदान करता है। यद्यपि इन दोनों में कोई निकट सम्बन्ध नहीं है किन्तु 'धारास्वनो' व 'शृंगाग्र' विशेषणों से रूप, रंग, ध्वनि में साम्य स्पष्ट कर दिया गया है। दोनों की विशालता शृंग (शिखर व सींग), मेघ व कीचड़ का रूप-रंग परस्पर तुलनीय हैं। गुफा व खुले मुख में रूप-सादृश्य है, गुफा से निकली ध्वनि व साँड के शब्द में ध्वनि-साम्य है। ककुद्मान् के सादृश्य से पर्वत की गुफा व शिखरों की स्थिति मूर्त कर दी गई है।

पर्वतों को मेघ, नदी आदि के सन्दर्भ में मानवीय भावों से संयुक्त करके भी प्रस्तुत किया गया है। 'विक्रमोर्वशीय' में पर्वत को सचेतन प्राणी की भाँति राजा को प्रत्युत्तर देते हुए बताया गया है। पर्वत को अप्रस्तुत बनाकर भी कवि ने बिम्ब योजना की है। राजा दिलीप को बल, तेज व विशालकायत्व से युक्त होने के कारण सुमेरु के सदृश बताया गया है।[103] रात्रि के समय दीपक हाथ में लिये दासियों से घिरे राजा पुरूरवा जब प्रस्थान करते हैं तो उनके लिये पर्वत का बिम्ब सर्वथा अनुपम है—

---

100 रघु 4/51
101 वही –47
102 वही –52

गिरिरिव गतिमानपक्षलोपादनुतट पुष्पितकर्णिकार यष्टि, । (वि. 3·3)

पर्वत से राजा का विशाल डीलडोल सूचित होता है । पंख न कटने के कारण गतिमान पर्वत राजा की धीमी गति को प्रकट करता है । दोनों ओर पुष्पित कर्णिकार, दीपक-युक्त दासियो को मूर्त कर देते हैं । वैदिक कथा के आधार पर इन्द्र ने पर्वतों के पंख काट दिये थे । यहाँ पर्वत की पंख कटने से पहले की स्थिति को उपमान बनाया गया है, जो एकदम मौलिक है ।

कालिदास ने राजाओं के लिये बहुधा पर्वतों के सुन्दर उपमान दिये हैं जिनसे कई स्थानों पर सुन्दर विम्ब बने हैं । कुछ को सुन्दरियाँ पिचकारियों से रंग-विरंगे जल छोड़कर रंग देती हैं । उस रंगीन पानी से कुछ बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं, जैसे गैरिकादि धातुओं के निष्यन्द से हिमालय अति सुन्दर लगता है ।[104]

वनस्थली

'रघुवंश' में दिलीप का 'गोचारण,' दशरथ का 'आखेट.' राम-सीता का 'वनवास' वनस्थली मे ही सम्पन्न होता है । राजा पुरूरवा विरह-विह्वल हो वन में भटकता रहता है । इन स्थलों में वन के सुन्दर विम्ब देखने को मिलते हैं । वन का एक स्पष्ट दृश्य इस प्रकार है—

स पत्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखवर्हिणानि ।
ययौ मृगाध्यामितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥
(रघु. 2·17)

वन चारों ओर श्याम ही श्याम दिखाई दे रहा है । कही तलयों से साँवले रंग के वराह-झुंड बाहर आ रहे हैं, कही हरे-नीले मयूर हरे-हरे वृक्षों की ओर मुख किये हैं, हरी-हरी घास में कृष्णसार मृग बैठे हुए हैं । यहाँ थोड़े मे शब्दों में जंगल का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

कालिदास ने वनों मे नरत्व व देवत्व का आरोप किया है । वे अनेक स्थानों पर वन-देवियो का उल्लेख करते है । राजा दिलीप जब गोसेवा हेतु वन भ्रमण करते हैं तो वनदेवियाँ लतागृहों में 'वेणुवादन' के साथ उच्च स्वर में राजा का यशोगान करती हैं ।[105] यक्ष जब स्वप्न में आकाश में भुजाएँ फैलाकर प्रिया का आलिंगन करने मे असफल रहता है, तो वनदेवियाँ ओस के रूप मे मोटे-मोटे अश्रुकण गिराती हैं ।[106] पतिगृह को प्रस्थान करती शकुन्तला का शृंगार भी वनदेवियाँ ही पूरा करती हैं—

---

103. रघु. 1/13
104. वही 16/70
105. रघु. 2/12
106. उ. मे. 46

क्षौम केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृत
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै
दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।। (अभि 4 4)

पर्वभाग तक उठे हुए वनदेवताओं के हाथों ने सहृदयों के समक्ष अलौकिक वर्णन को प्रत्यक्षसा कर दिखाया है। कवि के ऐन्द्रजालिक वर्णन से मुग्ध पाठक को चेतनाचेतन का भान ही नहीं रहता । कोकिल स्वर में वनस्थली शकुन्तला का विदागान प्रस्तुत करती है।[107] सीता के शोक में उसके साथ आंसू बहाती है ।[108] वही वनप्रदेश वर्षाऋतु में खिलखिलाकर हंसता हुआ बताया गया है।[109] कृष्णसार मृग वनदेवी का कटाक्ष है—

कृष्णसारच्छविर्योऽसौ दृश्यते काननश्रिया ।
वनशोभावलोकाय कटाक्ष इव पातितः ।। (वि 4 31)

कल्पना सुन्दर है। वनलक्ष्मी वनशोभा को देखने के लिये एक तिरछी दृष्टि डालती है। कृष्णसार के रूप में कवि उस चितकाबरी मनोहर दृष्टि को मूर्त रूप में उपस्थित कर देता है। इस प्रकार कवि ने वनों को सप्राण रूप में उपस्थित किया है।

वनस्थली को उपमान बनाकर भी सुन्दर बिम्ब-योजना की गई है—

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभूव ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली ।। (रघु 15 66)

लव-कुश मधुर स्वर में राम-कथा को सभा में प्रस्तुत करते हैं। करुणा-प्रधान गाथा को सुनकर सभा निश्चल-निस्पन्द व अश्रुपूर्ण हो जाती है। इसके लिये कवि प्रातःकालीन वनस्थली का चित्र लाते हैं, जब वायु न होने से निश्चलता रहती है व धीरे-धीरे ओस गिरा करती है। यह चित्र सभा का स्पष्ट बिम्ब सामने प्रस्तुत कर देता है।

तपोवन—तपोवन आधुनिक पाठक के लिये अदृष्ट हैं किन्तु कालिदास व बाणभट्ट सरीखे कवियों ने तपोवन के इतने स्पष्ट चित्र खींचे हैं कि तपोवन हमें अनदेखे से नहीं लगते। यह उनकी कविता की बिम्ब-प्रधानता का प्रमाण है। वन से तपोवन की भेदविभाजक रेखा को स्पष्ट करते हुए कवि तपोवन का स्पष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं—

---

107 अभि 4/10
108 रघु 14/69
109 ऋतु. 2/24

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः ।
प्रस्निग्धाः क्वचिदिंगुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः ।
विश्वासोपगमादभिन्नगतय- शब्दं सहन्ते मृगा—
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाकिताः ।।

(अभि. 1·13)

इस श्लोक में कण्व के तपोवन का सूक्ष्म चित्रांकन हुआ है। प्रथम चित्र नीवार नामक जंगली धान्य का है। घोंसलों में बैठे तोतों से गिरा हुआ धान्य वृक्षों के नीचे बिखरा हुआ है। इससे तपोवन में नीवार का बाहुल्य सूचित होता है। दूसरी पंक्ति में इतस्ततः चिकने पत्थरों का दृश्य है, जिनसे वहां तपस्वियों के निवास की स्वीकृति है। तीसरे चरण मे नृप-वाहन के कोलाहल से बेपरवाह हरिण आश्रम में जीवों की निर्भयता की घोषणा कर रहे हैं। चौथी पंक्ति में तपोवन वासियो का एक दैनन्दिन दृश्य प्रस्तुत कर पूरे विम्ब को सजीव कर दिया गया है। इसी प्रकार का स्वाभाविक तपोवन-वर्णन महाकवि भास ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में प्रस्तुत किया है।[110]

अभयारण्य का एक विम्ब निम्न श्लोक में प्रत्यक्ष है—

गाहन्ता महिषा निपानसलिलं श्रृंगैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ।
विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ।।

(अभि. 2·6)

आश्रमकन्या पर अनुरक्त दुष्यन्त मृगया से विरक्त हो जाते हैं और अरण्य को अभयारण्य पर घोषित कर देते हैं। फलतः कवि कल्पना करता है कि भैंसे बार-बार सींगों से जल को विलोडित करते हुए जलाशयों में स्नान कर रहे हैं। मृग-झुण्ड चैन से वृक्ष तले बैठकर जुगाली कर रहे हैं। तीसरा दृश्य सूकरों का है जो सर्वसंवेद्य है। चौथी पंक्ति में धनुष को भी मूर्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। धनुष के अचेतन होने से 'विश्रामंलभताम्' से उसकी संगति नहीं बैठती। वास्तव में विश्राम राजा स्वयं करना चाहते हैं, लेकिन कवि-कौशल से धनुष पर उसका आरोप विम्बाधायक है।

उपवन– राजसी वर्ग से सम्बद्ध कथानकों के कारण, कालिदास की सभी रचनाओं में प्रमदवन व बगीचों का वर्णन है, इनमें सबसे अधिक स्पष्ट व विशद चित्र, यक्ष ने अपनी वाटिका का, मेघ के सामने प्रस्तुत किया है–

---

110. देखे—'विश्रब्धाः हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्ययाः' अंक 1/12

'अलकापुरी में कुबेर के भवनों से उत्तर की ओर हमारा निवास है। बाहरी द्वार इन्द्रधनुष जैसे तोरण से सज्जित है। जिसके पास ही मेरी प्रिया द्वारा सवर्धित बाल मन्दार वृक्ष है। (उसकी अल्पकायता के लिये बिम्ब प्रस्तुत करते हुए कहते हैं) इतना छोटा कि उसके पुष्पगुच्छ हाथ से प्राप्त किये जा सकते हैं। घर में एक सुन्दर बावडी है, जहाँ मरकत की सीढियाँ, सुवर्ण-कमल व राजहंस हैं। बावडी के किनारे क्रीडा शैल है जिसकी बाड सुनहरी केलियों की व शिखर नीलम-जटित हैं। क्रीडा पर्वत पर कुरबक से घिरे माधवी लताकुंज हैं। उनके समीप ही अशोक व मौलसिरी के वृक्ष हैं। उन वृक्षों के बीच मोर के बैठने की वासयष्टि है। स्वर्णयष्टि नए बाँस जैसी आभावाली मणियों से जटित है जिस पर स्फटिक का चबूतरा है। उस पर सन्ध्या समय मयूर बैठता है और यक्षिणी के द्वारा दी गई ताल पर नृत्य करता है।'

'मेघदूत' के उपर्युक्त अंश में वैभवशाली नागरिकों के गृह-उद्यान का सुन्दर व स्पष्ट चित्र उदात्त भाव में अंकित है।

वनस्पति-जगत्—प्राकृतिक दृश्यों की रचना में वृक्ष, लता, पत्र, पुष्पादि का प्रमुख योग रहता है। कालिदास को भारत के वनस्पति-जगत का आश्चर्यजनक ज्ञान है। वनस्पति-क्षेत्र को उपादान बनाकर उन्होंने सफल बिम्ब-रचना की है। सवप्रथम हम वृक्षों को लेते हैं।

वृक्ष—कवि ने पर्वतों व मैदानों पर होने वाले वृक्षों के सुन्दर बिम्ब ऋतु, पर्वत, वन, आदि के दृश्यों में दिये हैं। कवि ने वृक्ष सामान्य के भी बिम्ब दिये हैं और विशेष वृक्षों के भी। 'रघुवंश' के नवम सर्ग में कुरबक, पलाश, आम्र, तिलक आदि वृक्षों के सुन्दर शब्द-चित्र हैं। कुरबक के रूप-रंग को दृश्य बनाते हुए कवि कहते हैं।—

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषका।
मधुलिहां मधुदानविशारदा कुरबका रवकारणतां ययौ॥ (29)

वसन्त में कुरबक के रंगीन फूलों से भर जाने हेतु वसन्त द्वारा वनलक्ष्मी के कपोल पर की गई नई पत्र रचना की कल्पना बहुत कमनीय है। पराग युक्त पुष्पों पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। पूरे चित्र में वृक्ष के खिले हुए रूप, रंग, उसकी गन्ध, मधु के स्वाद व भ्रमर-नाद की इन्द्रिय-संवेदना जागृत होती है।

बकुल के वृक्ष की सुगन्ध मुख-मदिरा के समान है। लम्बी-लम्बी कतारों में भ्रमर आकर बकुल को आकुल कर देते हैं।[111] वसन्तागमन से पलाश में कलियाँ फूट पड़ती हैं। सारा वृक्ष लाल फूलों से ढक जाता है, जैसे कामिनी नायिका द्वारा कामावेश में प्रियतम-वृक्ष पर नखक्षत कर दिये गये हों।[112] आम्रवृक्ष की डालियाँ

---

111 रघु. 9/30
112 वही—31

बौरो से युक्त हो मलयपवन से झूम उठती है, मानो हावभाव का अभ्यास करती नर्तकी हो।[113] तिलकवृक्ष वनस्थली के तिलक लगा रहा है और पुष्पों पर बैठे भ्रमर कज्जल की सुन्दर बिंदिया लगा रहे हैं।[114] उसके श्वेत पराग युक्त पुष्प-गुच्छ भ्रमरों मे जटित है, मानो किसी सुन्दरी ने केशों मे मोतियों से गुथी ज़ाली पहन रखी हो।[115]

वृक्षराज वट का भव्य चित्र निम्न श्लोक मे प्रस्तुत है—

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति॥

(रघु. 13·53)

वट-वृक्ष का आकार विशाल होता है, इसलिये कवि ने उसे मरकत मणियों का ढेर कहा है। विशेषकर विमान से लिये गये चित्र में यह कल्पना सर्वथा उचित है। वट-वृक्ष में फूल नही आते। पत्तो के बाद सीधे फल लगते हैं। कवि ने पत्तों व फलो के सन्दर्भ में ही वट का बिम्ब दिया है। लाल रंग के फलों को पद्मराग मणियो मे प्रत्यक्ष कराया है। 'पद्मराग-जटित गारुड मणियों की राशि' का बिम्ब, वृक्ष के आकार व पत्रों-फलों के रूप-रंग की सच्ची कल्पना उत्पन्न करता है।

कल्पवृक्ष यद्यपि पौराणिक कल्पना मे सम्बन्धित है, किन्तु कवि की कल्पना मे वह इतनी स्पष्टता से अंकित है कि वे उसके प्रस्तुत व अप्रस्तुत स्पष्ट बिम्ब-निर्माण में सक्षम हैं। हिमालय के औषधिप्रस्थ नगर के चारों ओर स्थित, वस्त्र-पल्लव-धारी कल्पवृक्ष, स्वतः सिद्ध झंडियो का काम करते हैं। 'विक्रमोर्वशीय' में वर्षा ऋतु में नृत्य करते हुए कल्पवृक्ष का बिम्ब बड़ा मनोहारी है—

गन्धोन्मादितमधुकरगीतै :
वाद्यमानपरभृततूर्यै :।
प्रसृतपवनोद्वेलितपल्लवनिकरः
सुललितविविधप्रकारं नृत्यति कल्पतरुः॥ (4·12)

नृत्य के समस्त अंग, गीत, वाद्य व अभिनय यहाँ प्रस्तुत हैं–भ्रमर, कोयल व पल्लवसमूह के द्वारा।

आकाश में विचरण करते नारद के सादृश्य हेतु कवि ने, 'जंगमकल्पवृक्ष' का बिम्ब प्रस्तुत किया है—

गोरोचनानिकषपिंगजटा कलापः।
संलक्ष्यते शशिकलामलवीतसूत्रः।

---

113. वही–33
114. वही–41
115. वही–44

मुक्तागुणानिशयसभृतमण्डनश्री
हेमप्ररोह इव जगमकल्पवृक्ष ॥ (वि 5 19)

दिव्यवृक्ष मे पत्ता-फलो के स्थान पर वस्त्र, रत्न आभूषण आदि रहते हैं। नारद मुनि की पिगल जटाएँ, निर्मल यज्ञोपवीत, मोतियो की माला क्रमश गोरोचना, शशिकला, रत्नाभूषणो से दृष्टिगम्य की गई हैं। चलते फिरते कल्पवृक्ष की कल्पना बहुत ही सुन्दर है। पुरूरवा और उर्वशी की मनोकामना पूरी करने वाले नारद के लिए कल्पवृक्ष की तुलना सर्वथा उचित भी है।

कालिदास ने रूप, गुण आदि के आधार पर वृक्ष को अप्रस्तुत बनाकर बिम्बविधान किया है। राजगद्दी पर नये नये बैठे, प्रजा के मन म अच्छी तरह से न जमे हुए राजा को, नये लगाये हुए और अच्छी तरह न जमी हुई जडो वाले वृक्ष की भाँति सहज उखाडा जा सकता है।[116] दूसरी ओर प्रजा मे अनुरक्त राजा अतिथि, नये होने हुए भी मजबूत जडो वाले वृक्ष की भाति जम गये है।[117] गुरु वसिष्ठ के स्नेहपात्र किन्तु नि सतान दिलीप अपनी समता उस आश्रम के वृक्ष से करते हैं जो ऋषि के स्नेह से सीचा जाकर भी वन्ध्य रहा हो।[118] दिलीप के हृदय की व्यथा 'वन्ध्यवृक्ष' से पूर्णतया अभिव्यक्त है। मालविका के पैर पर लगी महावर की लकीर राजा को ऐसी लगती है मानो भस्म हुए काम रूपी वृक्ष की लाल कोपल फूट आई हो।[119] आगे प्रेम मे वृक्ष का सुन्दर रूपक बाँधते हुए कवि कहते हैं—

तामाश्रित्य श्रुतिपथगतामाशया लब्धमूल
सप्राप्ताया नयनविषय रूढरागप्रवाल ।
हस्तस्पर्शैर्मुकुलित इव व्यक्तरोमोद्गमत्वात,
कुर्यात्क्लान्त मनसिजतरुमा रसज्ञ फलस्य ॥ (मा 4 1)

यहाँ राजा के मालविका के प्रति प्रेम को, काम-वृक्ष के रूप मे चित्रित किया गया है। नाम सुनकर मालविका की आशा करना ही वृक्ष की जडें हुई। सगीतशाला मे उसको देखकर राग की कोपलें फूटी। मालविका को छूकर जब राजा को रोमाच हुआ मानो कलियाँ भी खिल गईं और जब राजा उस प्रेमवृक्ष का फल चखने के लिये आतुर बैठा है। यहाँ अमूर्त प्रेम भाव को मूर्त वृक्ष का रूपक देकर सुन्दर बिम्ब की सृष्टि की गई है। इसमे दृष्टि व स्पर्श तत्त्व तो है ही, स्वाद तत्त्व की प्रतीक्षा है।

---

116 मा 1/8
117 रघु 17/44
118 वही 1/70
119 मा 3/11

कवि ने वृक्षों पर मानवीय भावों का आरोप करके भी विम्ब सृजन किया है। यथा-वायु के अभाव में निष्कम्प खड़े वृक्ष, ऋषियों के आश्रम में उनके साथ ध्यान करते बताए गए हैं।[120] दिलीप के गोचारण के समय, पक्षियों द्वारा जयशब्द का उच्चारण करते है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में वृक्षो को सगे सम्बन्धियों की भांति प्रस्तुत किया गया है जिससे पाठक के लिये उनका असाधारण महत्त्व हो जाता है। वृक्ष शकुन्तला के 'वनवास-बन्धु' हैं। वह स्पष्ट कहती है—'अस्ति मे सोदरस्नेहः एतेषु'। वह छोटे-छोटे पौधों को प्रेम के साथ पालती है। जब ऋषि कण्व अपने गुरु गंभीर स्वर में उद्घोष करते हैं—'भो भोः सन्निहितास्तपोवनतरवः।[121] तो पाठकों के मन मे वृक्षों के प्रति रही सही जड़ता की भावना भी पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

देवदारु वृक्ष के प्रति पार्वती का वात्सल्य-भाव वर्णित है। वृक्ष की त्वचा छिलने पर, पार्वती को, देवासुर संग्राम मे कार्तिकेय के घायल होने जैसी व्यथा होती है।[122] तपस्या-निरत पार्वती सावधानी से घट रूपी स्तन के प्रस्रवण द्वारा छोटे-छोटे पौधों को पालती है।[123]

आश्रयगुण के आधार पर राजा दुष्यन्त के लिये वृक्ष का बिम्ब लाया गया है। राजा स्वयं कष्ट उठाकर प्रजा को सुख देते है जैसे वृक्ष स्वयं तीव्र ताप को सहकर अपनी छाया से आश्रितो के परिताप को दूर करता है। यहाँ वृक्ष के सादृश्य ने अमूर्त प्रजा-पालन के भाव को नेत्रगोचर कर दिया है।

लता—लताओं मे कालिदास किसी कोमल-काया कामिनी के दर्शन करते है। वसन्त वर्णन के अवसर पर लताओं का निम्नलिखित विम्ब द्रष्टव्य है—

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः॥

(रघु. 9·35)

यहाँ हावभावपूर्वक नृत्य करती उपवन की लताओं के लिए तीन बिम्ब दिये गये हैं (1) 'श्रुतिसुख.' से लताओं मे होने वाली भ्रमरों की गीतध्वनि, (2) 'कुसुमकोमल.' से दाँतों की शोभा वाले श्वेत चमकते पुष्प, (3) 'किसलयै.' में हाव-भावपूर्ण अभिनय मे पत्तो की विभिन्न प्रकार की गति। इन बिम्बो मे लता का रूप मूर्त हो जाता है।

---

120. रघु. 13/52
121. अभि. 4/8
122. रघु. 2/36
123. कु. 5/14

कवि ने अपनी सभी नायिकाओं की कोमलता व मनोहरता को व्यंजित करने के लिये लता के बिम्ब का प्रयोग किया है। उल्लेखनीय यह है कि कवि 'लता' को मात्र उपमान रूप में सकेतित कर छोड नही देते अपितु उसका सर्वांगपूर्ण बिम्ब पाठकों की कल्पना मे उतार देते हैं। यथा—मालविका विरहावस्था मे पीली पड गई है। उसने कुछ ही आभूषण पहन रखे हैं। राजा को वह कुन्दलता-सी प्रतीत होती है जिसके पत्ते वसन्त मे पीले-पीले हो गये हैं और फूल जिसम कम रहते हैं—'माघवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता'।[124]

निषिद्ध कुमारवन मे उर्वशी को लता बनाना ही कवि को अभीष्ट हुआ। राजा भी लता को पूर्णतया उर्वशी ही समझता है—'मेघ से जलार्द्र पल्लव वाली वह आँसुओं मे भीगे ओठो वाली उर्वशी है। विरहवश शून्यपुष्पाभरणा है। मधुकरों का शब्द न होना उर्वशी के चिन्तावश मौन का सूचक है। कोपनशीला वह उर्वशी पहले मेरा तिरस्कार कर अब मानों पश्चाताप कर रही है।[125] यक्ष श्यामा लताओं म ही अपनी प्रियतमा की अगयष्टि को खोजता फिरता है।[126] गर्भिणी रानी सुदक्षिणा दोहृद कष्ट का अतिक्रमण कर पुष्ट होते अवयवों मे सुन्दर प्रतीत होती है। इसके लिये कवि लता का ही साम्य चुनता है—मानो पुराने पत्तो को गिराकर लता नए सुन्दर पत्तो से सुशोभित हो।[127]

शकुन्तला तो है ही प्रकृतिपुत्रि। प्रियम्वदा जब केसरवृक्ष के पास खडी शकुन्तला स, वृक्ष को 'लतासनाथ इव' अनुभव करती है, तो दुष्यन्त शकुन्तला और लता के पूर्ण साम्यभाव की इस प्रकार व्याख्या करते हैं—

अधर किसलयराग कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीय यौवनमगेषु सन्नद्धम्॥ (अभि 1 18)

यहाँ लता का सम्पूर्ण रूप दृश्य है जो प्रस्तुत शकुन्तला के चित्र से मिलकर एक सुन्दर काव्य-बिम्ब की सृष्टि करता है। 'किसलयराग' से ओठो की रक्तिमा 'कोमलविटप' मे भुजाओं की कोमलता व आकृति, और 'कुसुममिव' से युवावस्था की चित्ताकर्षकता दृश्य व आस्वाद्य बनाई गई है।

इसी प्रकार शिव की समाधि भग करने के लिय उमा जब वसन्तपुष्पाभरण का समस्त सभार धारण कर चलती है, तो असाधारण कल्पनाशक्ति का परिचय देते हुए कवि लता का ही बिम्ब सर्वथा नए रूप म स्मरण करते हैं—

---

124 मा 3/8

125 वि 4/67

126 उ मे 46

127 रघु 3/7

आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां
वासो वसाना तरुणार्करागम् ।
पर्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा
संचारिणी पल्लविनी लतेव ।। (कु. 3·54)

उमा का शरीर स्तनभार से किंचित् आगे को झुक गया है। उस पर बाल सूर्य का सा गुलाबी वस्त्र शोभित है। उमा चली जा रही है, जैसे - कोमल किसलयों वाली, लता चली जा रही हो – पर्याप्त पुष्प गुच्छों से तनिक झुकी सी। यह विम्ब बहुत मौलिक है और इसमें ताजगी है। फलीफूली लता का चलना कितना मधुर लग सकता है।

नारी पात्रों की भावनात्मक अमूर्त अवस्थाओं को मूर्त करने के लिये भी कवि ने लता के गुण-धर्मों का आश्रय लिया है। यथा-दशरथ की मृत्यु से शोचनीय दशा को प्राप्त माताएँ (कौशल्या और सुमित्रा) राम और लक्ष्मण को, उन दो लताओं जैसी दिखाई देती है, समीपस्थ वृक्ष के कट जाने से जिनकी शोचनीय अवस्था हो गई हो।

इसी प्रकार, लक्ष्मण द्वारा अपने निर्वासन की आज्ञा सुनकर सीता जब परम कारुणिक अवस्था को प्राप्त होती है, तब भी कालिदास को 'लता' का ही विम्ब अर्थवहन के योग्य जचता है—

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ।।

(रघु. 14·54)

यहाँ तेज हवा के लगने से लता का एकाएक पृथ्वी गिरना–इस अनुभूत दृश्य को पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर कवि ने सीता की स्थिति को मूर्त कर दिया है। सीता के लिये लता का विम्ब सर्वथा उचित है। सीता ने भी धरित्री से उसी प्रकार 'मूर्तिलाभ' किया है, जैसे लता पृथ्वी से जन्म लेती है। अकारण परित्याग का अपमान सीता के लिये जबरदस्त धक्का(शॉक) है, जैसे लता पर आँधी का प्रहार। 'प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना.' से सीता के आभूषण लतापुष्पों की भाँति स्वतः गिरते बताए गये हैं। रूपक व उत्प्रेक्षा पर आधारित प्रस्तुत विम्ब ने सीता की करुण अवस्था को परम करुण बना दिया है।

लता/वृक्ष—कालिदास ने लताओं का वृक्ष के सहभाव में वर्णन कर नायक-नायिका के मधुर व्यवहार के दृश्य अंकित किये हैं। डा. गुप्त के शब्दों में "कालिदास के काव्यों में अनेक स्थानों पर बाह्य प्रकृति ने मनुष्य के साथ समान रूप से काव्य के नायक-नायिकाओं का अंश ग्रहण किया है। इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ने कहा है—"अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक में जिस तरह अनसूया,

प्रियम्वदा, दुष्यन्त आदि पात्र हैं, उसी तरह तपोवन की प्रकृति भी एक पात्र है'।[128]

इसीलिये शकुन्तला वनज्योत्स्ना को निहारती हुई प्रकृति में मधुर प्राण-सम्बन्धों के दर्शन करती है—

'हला रमणीये खलु काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकर संवृत्त। नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना, बद्धपल्लवतयोपभोगक्षम सहकार'।[129]

'वनज्योत्स्ना एवं सहकारतरु यहाँ मूक प्रकृति के केवल अंग मात्र नहीं हैं। उनके साथ यौवन की प्रच्छन्न आशा-आकांक्षाएँ हृदय में छिपाए हुए एक नवीन दम्पती का अभेद सिद्धान्त है, उस अभेदसिद्धान्त को अपने मूल में रखकर ही यह समस्त दृश्य इतना सजीव एवं सरस हो उठा है'।[130]

इसी भाव में आबद्ध तरु की चारुविलासिनी लता न केवल तरु का अपितु सभी का मन मोह लेती है—

> अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया मन ।
> कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ॥
>
> (रघु 9 42)

समीपस्थ अशोकलता के नवपल्लव को अपने पल्लव में पकड़कर सहकार वृक्ष जिस प्रकार सुशोभित होता है नवपरिणीता वधू का हाथ अपने हाथ में लेकर अज भी उसी प्रकार शोभित हुए।[131]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बिम्बों के स्रोत के रूप में कालिदास ने लता-वृक्षों के प्रति विशेष मोह प्रदर्शित किया है।

पुष्प—कालिदास ने अपनी रचनाओं में चालीस से अधिक फूलों का उल्लेख किया है जिनमें से कुछ के सुन्दर बिम्ब मिलते हैं। कालिदास के पुष्प प्राय बगीचों व तडागों में खिलने वाले हैं। कवि पुष्पों के जन्मस्थान ही नहीं उनके विकास-काल से भी अभिज्ञ हैं। फूलों के रूप, रंग व गन्ध के आधार पर उन्होंने सुन्दर बिम्ब दिये हैं। ऋतु-बिम्बों में भी उनकी कुछ समीक्षा की जा चुकी है।

बिम्ब के रूप में कवि ने कमल का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसके लगभग 20 पर्यायों का उन्होंने प्रयोग किया है। कमल का सूर्योदय के साथ विकसित होना व सूर्यास्त के साथ मुकुलित होना प्रसिद्ध है। इस प्रसिद्धि के आधार पर मानवीय भावों को (सविता बोधयति पंकजान्येव' की भाँति) अभिव्यक्ति दी गई है।

---

128 'उपमा कालिदासस्य' पृ 74
129 अभि प्रथम अंक
130. 'उपमा कालिदासस्य' पृ 77
131 रघु 7/21

कमल को लक्ष्मी का निवास बताया गया है। सुन्दर स्त्री और पुरुष के मुख, कोमल शरीर, कर, नेत्र व चरण आदि के सादृश्य के लिये भी कमल का विम्ब प्रस्तुत किया गया है।

नायिका पार्वती व शकुन्तला वल्कलवस्त्र पहने भी सुन्दर लगती हैं। जैसे कमल काई से घिरा होने पर भी सुन्दर लगता है।[132] पार्वती का युवावस्था को प्राप्त शरीर सूर्य की किरणों से खिलाये गये अरविन्द की भाँति खिल जाता है।[133] उनके कटाक्ष हिलते हुए नीलकमल से दृष्टिगम्य किये गये है।[134] तपस्यन्ती पार्वती का मुख सूर्य किरणों से अभितप्त होकर कमल की भाँति खिल जाता है।[135] तप की कठोरता को देखते हुए कवि पार्वती के लिये काल्पनिक विम्ब का प्रयोग करते है। पार्वती का शरीर 'कांचनपद्मनिर्मित' है।[136] इससे पार्वती के शरीर की सुन्दरता व ससारता व्यक्त होती है। शिशिर की रात्रि में सरोवर की कमल-सम्पत्ति हिम से नष्ट हो जाती है। जलवास करती हुई पार्वती का मुख सरोवर में कमल की भाँति खिला हुआ है। उसकी गन्ध भी 'पद्मसुगन्धि' है। अधर कमलपत्र की भाँति वेपमान है। लहर-लहर मे जब पार्वती के मुख की छाया पड़ती है' तो लगता है सरोवर पुनः कमलो से भर गया है। 'कमल-सन्धान' के विम्ब ने पूरे दृश्य को चाक्षुप कर दिया है।[137]

विरहिणी यक्षिणी की दशा 'शिशिरमथिता पद्मिनी' के उपमान से मूर्त की गई है। आसन्न मेघ की ओर उन्मुख यक्षिणी की दृष्टि के लिये कमल का विम्ब सर्वथा नए ढंग से प्रयुक्त किया गया है—

> त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शंके मृगाक्ष्याः
> मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ (उ.मे. 35)

प्रियतम का सन्देश लाने वाले मेघ के आगमन से मृगनयनी का नेत्र ऊपर के भाग में फडकने लगेगा। उस समय उसकी शोभा मछली द्वारा हिलाए गये चंचल कमल से दृष्टिगम्य कराई गई है।

कालिदास ने कमल को घिसा-पिटा अप्रस्तुत नहीं बनाया अपितु उसे नए नए मौलिक रूपो में दृश्य बनाया है। मृत इन्दुमती का भाषणशून्य मुख, बन्द हुए

---

132. अभि. 1/19 व कु. 5/9
133. कु. 1/32
134. वही 46
135. वही 5/21
136. वही 19
137. वही 27

उस कमल जैसा लगता है जिसके अन्दर रात्रि में भ्रमर सो गये हों।[138] इससे इन्दुमती की कोमलता व्यक्त होती है। रावण के मस्तक कमलवत् कोमल तो नहीं हैं लेकिन राम के लिये कमलसमूहवत् आसानी से काटने योग्य है।[139] राम शम्बूक का सिर भी आसानी से नाल से कमल की भाँति पृथक् कर देते हैं।[140]

कालिदास ने झरोखों से राजमार्ग का दृश्य अवलोकन करती स्त्रियों के लिये कमल का विम्ब ग्रहण किया है। मदिरापान से गन्धयुक्त व चंचल नेत्ररूपी भ्रमर वाले मुख से झरोखों में जब वे आकर खड़ी होती हैं तो लगता है मानो झरोखे कमलों से ठसाठस भर गये हों।[141] कमल में गन्ध व भ्रमर रहते हैं। यहाँ मदिरा-गन्ध व चंचल नेत्र हैं।

राजा को मालविका का कुछ-कुछ दिखाई देते दाँतों वाला मुख उस कमल जैसा लगता जिसका केसर पूरा पूरा दिखाई न देता हो।[142] कवि एक ही उपात्त वस्तु को रूढ़ता से बचाने के लिये सदा नये-नये विम्बों का नये ढंग से प्रयोग करते हैं। सुख व दुःख का एक साथ अनुभव करते राजा को अपने हृदय की अवस्था उस कमल सी लगती है जिस पर धूप में बौछारें पड़ती हों।[143]

मूर्च्छा से सजग हुई उर्वशी के विशाल पलक उसी प्रकार धीरे-धीरे खुलते हैं जैसे प्रत्यूष काल में पद्मिनी अपने दल आहिस्ता-आहिस्ता खोलती है।[144] 'शाकुन्तलम्' में कवि ने एक पंकज का सुन्दरतम चित्र दिया है—

> प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।
> अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपंकजम् ॥
>
> (7 16)

खिलौने के लिये फैलाया गया, जाल के समान परस्पर गुंथी उंगलियों वाला बालक का हाथ और उषा काल की लालिमा में कुछ कुछ विकसित और जिसके दलों का अन्तर स्पष्ट दिखाई न देता हो ऐसा एक कमल, परस्पर रूप-रंग व कोमलता में तुलनीय है। चक्रवर्ती के हस्तचिह्न एक अस्पष्ट सी वस्तु है। किन्तु पंकज के स्पष्ट बिम्ब ने उसे बोध्य बना दिया है। विषय जितना ही अस्पष्ट होता है कालिदास की कला उतने ही स्पष्ट बिम्बों का सृजन करने में समर्थ है।

---

138 रघु 8/55
139 वही 10/44
140 वही 15/52
141 रघु 7/11 व 11/93
142 मा 1/10
143 वही 5/3
144 वि 1/5

कालिदास ने कमलनाल से भी बिम्बरचना की है। उर्वशी का प्रेमपत्र पढ़कर पुरुरवा अत्यन्त हर्षित व रोमांचित होते है। उनके सात्त्विक भावों का चित्र मात्र एक शब्द में समाया हुआ है—'ननु भणितमेव कमलनालायमानैरंगैः'[145] कमलनाल पर स्थित हल्के कांटों से राजा का रोमाच दृश्य है।

कमल के बाद कुमुद को लिया जा सकता है। लिङ्गापेक्षा से उसी को कुमुदिनी या कुमुद्वती भी कहा गया है। यह रात में खिलता है अतः इसके चन्द्र प्रेम के आधार पर विम्ब बनाए गये है। श्वेत बिन्दुओं की उपमा रंग के आधार पर कुमुद से दी गई है। कुमुदिनी की प्रातःकालीन अवस्था से शकुन्तला की दीनदशा को इन्द्रियगम्य कराया गया है।[146] प्रेमी-प्रेमिका के उपमान रूप में इसका बहुधा प्रयोग हुआ है।[147]

जल से भरे हुए लाल कन्दली पुष्पों में पुरुरवा अपनी प्रेयसी के, क्रोध से भरे अश्रुवाले, नेत्रों का दर्शन करता है।[148] केले के फूल की आकृति बड़े नेत्रों से मेल खाती है, उसका लाल रग क्रोध में आंखों के लाल रंग को दृश्य करता है।

शिरीष का पुष्प अत्यधिक कोमलता को चाक्षुष करने के लिये प्रयुक्त हुआ है। नवमालिका पुष्प द्वारा भी कोमलता व्यक्त की गई है। शकुन्तला को 'नवमालिकाकुसुमपेलवा' कहा गया है तपस्वी कण्व को पुत्री के रूप में प्राप्त कोमल कमनीय शकुन्तला आक के वृक्ष पर गिरे नवमालिका पुष्प जैसी है—

अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्। (अभि. 1·8)

कवि ने अज के शोक को रूपायित करने के लिये 'प्लक्षप्ररोह' का उपमान दिया है—

तस्य प्रसह्य हृदयं किल शोकशंकुः प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद (रघु. 8·94)

यहां अज के शोक रूपी कांटे की तीक्ष्णता को रूप प्रदान किया गया है।

कवि ने कोमलता व लाल रंग के लिये किसलय को विम्ब बनाया है। आंधी से कम्पित किसलय से भयजनित कम्प को 'प्रवातकिसलय इव वेपमाना'[149] द्वारा चाक्षुष किया है। इन्दुमती स्वयंवर में राजाओं की विविध शृंगारिक चेष्टाओं जैसे शारीरिक विकारों के लिये वृक्ष की प्रवाल-शोभा का उपमान विम्बाधायक है—

---

145. वही 2 गद्य
146. अभि. 4/3
147. देखे–कु. 7/74, वि. 3/16 रघु. 6/36 आदि
148. वि. 4/15
149. मा. 4/गद्य

ता प्रत्यभिव्यक्तमनोरथाना महीपतीना प्रणयाग्रदूत्य ।
प्रवालशोभा इव पादपाना शृगारचेष्टा विविधा बभूवु ॥
(रघु 6 12)

पत्तो से, अति सूक्ष्म विकारो को चाक्षुप बनाने की क्षमता, कालिदास म ही हो सकती है।

अन्यत्र—कास्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।
मध्य तपोधनाना किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम ॥ (अभि 5·13)

यहाँ गैरुए वस्त्र धारी ऋषियो के बीच सुन्दरवस्त्रा से ढकी शकुन्तला के लिये पीले पत्तो के बीच, नए लाल किसलय का दिखाई देना सुन्दर कल्पना है। सटीक उपमान से प्रस्तुत चित्र सर्वथा सजीव हो उठा है।

इसी प्रकार नए प्रवाल पर रखे गये पुष्प से (पुष्प प्रवालोपहित यदि स्याद) कवि ने पार्वती के लाल होठो पर बिखरी शुभ्र स्मित का परिचय कराया है।

कालिदास ने कलम (धान्य-विशेष) को भी बिम्ब का विषय बनाया है—

आपादपद्मप्रणता कलमा इव ते रघुम् ।
फलै सवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिता ॥ (रघु 4 37)

रघु ने राजाओ को हराकर पहले उन्हें राजपद से हटाया, उदारतावश पुन राजपद पर स्थापित किया। वे नृपगण उखाड कर प्रत्यारोपित किये गये शालि-कलमो की भाँति रघु के चरणकमलो तक झुक गये और उन्होने फलो से (धान्य व धन से) रघु को सर्वधित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि जगत् की कोई वस्तु ऐसी नही जो श्रेष्ठ कवि के लिये उपादान न बन सके। 'निर्मली का बीज' पानी में डालने से पानी साफ हो जाता है। कालिदास ने इसे भी अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनाया है।[150]

सक्षेप में कह सकते हैं कि वनस्पति-जगत् से सम्बन्धित बिम्ब कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के परिचायक हैं। उनमे नवीनता व ताजगी है और वे कवि के प्रकृति प्रेम के प्रमाण हैं।

वायव्य-बिम्ब

कालिदास के काव्य मे मात्रा मे अपेक्षाकृत कम होने पर भी स्पष्ट वायव्य चित्र मिलते हैं। इस वर्ग मे वायु, आँधी, धूलि आदि को रखा गया है। कवि ने वायव्य वस्तुओ को तीन रूपो म चित्रित किया है (1) आलम्बन (2) सचेतन व (3) अप्रस्तुत रूप म। आलम्बन रूप मे वायु की मन्द या तीव्र गति, शीतल या उष्ण स्पर्श व उसकी गन्ध को ऐन्द्रिय किया गया है। अप्रस्तुत रूप मे गति या

---

150 मा चतुर्थ अक (गद्य भाग)

क्रोध की तीव्रता आदि को मूर्त करने के लिये वायु व आँधी आदि के विम्ब लाये गये हैं।

'ऋतुसंहार' में सभी ऋतुओं में बहने वाली वायु के पृथक्-पृथक् विम्ब दिये गये हैं। चक्षु का विषय न होने के कारण ये दृश्य तो नहीं हैं किन्तु ऐन्द्रिय न हों, ऐसा नहीं है। ये त्वग् इन्द्रिय द्वारा अनुभूत किये जाने वाले हैं। उनकी ध्वनि श्रुति का व गन्ध नासिका का विषय है।

'वर्षा-ऋतु का पवन सर्ज, कदम्ब, अर्जुन और केतकी से भरे हुए जंगल को कंपाता है, वृक्षों की गन्ध से वासित हो चन्द्रमा व बादलों से शीतलता ग्रहण कर सभी को आनन्दित करता है'।[151] इसी प्रकार वसन्त-वायु—

> आकम्पयन्कुसुमिताः सहकारशाखाः
> विस्तारयन्परभृतस्य वचांसि दिक्षु।
> वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां
> नीहारपातविगमात्सुभगो वसन्ते॥ (ऋ. 6·24)

इस वासन्ती पवन में आम्रबौर की महक, कोयल की कूक व ओस की अनुपस्थिति से सुभगस्पर्शत्व हैं।

हिमालय का पवन सूखे हुए भूर्जपत्र के वनों में मर्मरशब्दयुक्त व कीचक वंशवृक्षों में वंशी की ध्वनि वाला है।[152] वह पवन देवदारु की नई कोपलों को फाड़कर उसके दुग्ध-प्रवाह से सुगन्धित हो जाता है।[153]

वायु को अप्रस्तुत बनाकर अमूर्त भावों, विचारों को स्पष्ट किया गया है। यथा—रघु अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले हैं, न अधिक कठोर, न अधिक मृदु। जैसे दक्षिण वायु नातिशीतल अनत्युष्ण होने से सबको मनोहर लगता है।[154] मध्यम अवस्था को अभिव्यक्त करने के लिये पुनः मध्यम गति से बहने वाले वायु का अप्रस्तुत लाया गया है—न बहुत तेज न बहुत मन्द गति से बहने वाली वायु जिस प्रकार वृक्षों को न उखाड़ती हुई उन्हें झुका भर देती है, उसी प्रकार मध्यम शासन करने वाले अज ने राजाओं को नष्ट न करते हुए उन्हें झुका दिया।[155] यहाँ वायु-वृक्ष के सम्बन्ध ने प्रस्तुत विषय में ऐन्द्रियता व रोचकता का समावेश कर दिया है।

---

151. ऋ. 2/17
152. रघु. 5/73
153. उ.मे. 47
154. रघु. 4/8
155. वही 8/9

कवि ने वायु को सचेतन भावों से युक्त करके सुन्दर चित्रों की सृष्टि की है। शिप्रा नदी का वायु प्रियतम की भाँति चाटुकार है।[156] वायु रघु जैसे सम्राट की आज्ञा का एक विनीत शिष्ट नागरिक की भाँति पालन करता है और मार्ग में सोई हुई अभिसारिकाओं के वस्त्रों से छेड़छाड़ नहीं करता।[157]

'विक्रमोर्वशीय' में वायु पर कामी के व्यवहार का आरोप करते हुए एक सुन्दर काव्य-बिम्ब की सृष्टि की गई है—

निषिञ्चन्माधवीमेता लता कौन्दीं च नर्तयन्।
स्नेहदाक्षिण्ययोर्योगात्कामीव प्रतिभाति मे॥ (3 4)

राजा पुरूरवा जो स्वयं अपनी रानी के प्रति दक्षिण भाव रखता हुआ उर्वशी पर आसक्त है, वायु को भी कामी के रूप में देखता है। प्राकृतिक तथ्य यह है कि दक्षिण दिशा से आने वाला वायु कौन्दी व माधवीलता के ऊपर से बह रहा है। लेकिन अपनी शब्द सामर्थ्य से कवि ने सामान्य प्राकृतिक व्यवहार को रोमांटिक रंग देकर सुन्दर शृंगार चित्र की सृष्टि की है। माधवी लता वसन्त में खिलती है और कौन्दी दो माह पूर्व माघ में। अतः इनमें मुग्धा व प्रौढ़ा नायिका की कल्पना कर माधवी को स्नेह से सींचने व कौन्दी का दाक्षिण्यवश (औपचारिकता वश) नृत्य में लगाकर प्रसन्न करते हुए बताया गया है। यहाँ श्लिष्ट शब्दों द्वारा दक्षिण वायु को दक्षिण नायक के रूप में मूर्त कर दिया गया है जो प्रस्तुत नायक पुरूरवा के अभिनिवेश की भी व्याख्या प्रस्तुत करने के कारण रोचक लगता है।

'आँधी' को विनाश और भयङ्करता के हेतु रूप में प्रस्तुत किया गया है। ताडका, 'तीव्रवेग से मार्ग के वृक्षों को झकझोरती हुई, प्रेतों के फटे वस्त्र पहने, भयंकर स्वर से गरजती हुई, श्मशान से उठी हुई आँधी के समान राम के पास पहुँचती है।'[158] समान रूप, ध्वनि-क्रिया और वेग के कारण आँधी से ताडका का साम्य सर्वथा बिम्बग्राही है। राजा अग्निवर्ण क्षयरोग को उसी प्रकार सहन नहीं कर पाते जैसे दीपक आँधी को।[159] यहाँ आँधी का अप्रस्तुत रोग की भयङ्करता को स्पष्ट करना है।

धूलि का बिम्बात्मक चित्रण अज के युद्धप्रसंग में हुआ है। यथा-'युद्ध में घोड़ों की टापों से जो धूलि उठी, उसमें रथ के पहियों से उठी हुई धूलि मिलकर और घनी हो गई। हाथियों के कानों के हिलाने से उस धूलि ने क्रमशः नेत्रों से प्रारम्भ कर सूर्य तक को ढक लिया। वायु के कारण, सेना की मत्स्यध्वजों के मुख

156 पू मे 32
157 रघु 6/75
158 वही 11/16
159 वही 19/53

खुल गये। उनमें जब धूल घुस रही थी तब ऐसा लगता था मानो सच्ची मछलियाँ वर्षा का गंदला पानी पी रही हों।[160] इसी प्रकार दशरथ के घोड़ों के खुरों से उठी धूलि आकाश को छोटा करती प्रतीत होती है।[161]

इस प्रकार कालिदास की रचनाओं में वायव्य विषयों से स्पष्ट शब्द चित्र बनाए गए है।

तेजस बिम्ब

अग्नि व उससे सम्बन्धित ताप, तेज, राख व धूप आदि के बिम्ब इस वर्ग में रखे जा सकते है। 'ऋतुसहार' में कवि ने 'दावाग्नि' के रूप में, अग्नि का प्रभावशाली वर्णन किया है, यह हम 'ग्रीष्म' शीर्षक के अन्तर्गत देख चुके है। अप्रस्तुत रूप में भी अग्नि के पर्याप्त बिम्ब मिलते है। तेज व प्रताप को रूपायित करने के लिये अग्नि का बिम्ब बड़ा समर्थ है। अतः तेजस्वी ऋषियो व राजाओं के लिये अग्नि का सादृश्य प्रस्तुत किया गया है।

दुर्वासा ऋषि को अग्नि के समान जलाने वाला बताया गया है—'कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति'। अरुन्धती से युक्त वसिष्ठ स्वाहा देवी से संयुक्त अग्नि के समान दिखाई देते है।[162] पिता से दिये हुए राज्य को पाकर रघु सायंकाल सूर्य द्वारा स्थापित तेज को धारण करने वाली अग्नि के समान अधिक सुशोभित होते हैं।[163] यहाँ अग्नि का बिम्ब अतिशय तेज को प्रकट करता है।

अग्नि व धूप से सम्बन्धित एक सुन्दर उपलक्षित बिम्ब अज व राजाओं के बीच युद्ध के अवसर का है—'युद्ध में भयंकर धूलि उठती है जो पृथ्वी तल पर रक्त से लाल हो गई है और ऊपर हवा से इधर उधर घूम रही है। लगता है, जैसे अग्नि का पूर्वोत्थित धुआँ आकाश में विचरण कर रहा है और लाल अंगारे पृथ्वी पर शेष हैं।[164]

निस्संतान दशरथ के लिये ऋषि का शाप (कि आप भी पुत्रशोक से मृत्यु को प्राप्त करेंगे) जलाने वाला तो है ही, साथ ही एक अनुग्रह भी है। कवि ने अग्नि के बिम्ब से उनकी भयंकरता व स्पृहणीयता दोनों भलीभाँति स्पष्ट की हैं—'जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि घास-फूस आदि से युक्त, जोतने योग्य भूमि को जलाती हुई भी उसे उर्वरा-बीजांकुरोत्पादनक्षमा बना देती है।[165] राम जब परशुराम का

160. रघु. 7/39–40
161. वही 9/50
162. वही 1/56
163. वही 4/1
164. रघु 7/43
165. वही 9/80

दैवी धनुष चढ़ा देते हैं, तो परशुराम 'धूमशेष अग्नि' की भाँति निस्तेज हो जाते हैं।[166] प्रयुक्त बिम्ब, परशुराम के स्वाभाविक तेज, किंतु वर्तमान निस्तेज भाव, दोनों को वहन करने में समर्थ है।

कवि, लवणासुर और चिता की अग्नि में पूर्ण साम्य स्थापित करते हुए, अग्नि और राक्षस का एक सर्वांग सश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत करते हैं—

धूमधूम्रो वसागन्धी ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः ।
क्रव्यादगणपरीवारश्चिताग्निरिव जङ्गमः ॥ (रघु 15 16)

इस श्लोक के सभी पद श्लिष्ट हैं और प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनों पक्षों पर लागू होते हैं। अग्नि धुएँ से काली दिखाई देती है राक्षस धुएँ के समान काला है। चिताग्नि की गन्ध के समान राक्षस से चर्बी की गन्ध आ रही है। अग्नि की लपटों के समान पीले-पीले राक्षस के बाल हैं। चिताग्नि मांसभक्षियों (गिद्धों) से व्याप्त रहती है, राक्षस भी मांसभक्षी राक्षसों से घिरा हुआ है। संस्कृत में 'अग्नि' पुल्लिंग होने से यहाँ लिंग वचन का भी साम्य है। अन्तर यही है कि चिताग्नि स्थिर रहती है जबकि लवणासुर विचरण कर रहा है। इसीलिये जङ्गम-चिताग्नि' की कल्पना की गई है।

कालिदास ने शकुन्तला के गर्भस्थ तेजस्वी बालक को भी अग्नि का रूपक दिया है—

'अवेहि तनयां ब्रह्मन् अग्निगर्भां शमीमिव'। (अभि 4 4)

कालिदास ने तेज की अधिकता को ऐन्द्रिय करने के लिये अग्नि को वायु के संयोग में प्रस्तुत किया है। उन्होंने ब्रह्मतेज से युक्त क्षत्रियतेज को वायु तथा अग्नि का समागम कहा है। वसिष्ठ से अभिषिक्त अज, इसीलिये, शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष हो जाते हैं।[167]

इस प्रकार आग्नेय बिम्ब ताप व तेज को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करते हैं।

जीव-जन्तु

प्राकृतिक क्षेत्र में मानवेतर प्राणियों का क्षेत्र भी आता है। कालिदास ने पशु पक्षी तथा अन्य जन्तुओं के विविध चित्र तथा अप्रस्तुत दिये हैं। पशु-पक्षियों की स्वाभाविक आदतों का जितना सूक्ष्म अध्ययन व वर्णन कालिदास ने किया है, बाणभट्ट को छोड़कर कोई और कवि उसकी समता नहीं कर सकता। कालिदास ने जीवों की न केवल बाह्य आकृति और स्वभाव का चित्रित किया है, अपितु उनके संवेगों एवं भावनाओं को भी सहज रूप से उभारा है। अप्रस्तुत विधान हेतु भी

---

166 वही 16/81
167 रघु 8/4, व 10/40 व 82 भी द्रष्टव्य

पशु-पक्षियों के कार्यकलापों को कल्पना का विषय बनाया गया है। अपनी सूक्ष्म अवलोकन-शक्ति का परिचय देते हुए कालिदास ने सजीव व निर्जीव दोनों प्रकार के पदार्थों के सादृश्य पशु-पक्षियों से दिये हैं। सुविधा की दृष्टि से इस वर्ग को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—(1) पशु, (2) पक्षी (3) अन्य जन्तु।

पशु—यद्यपि कालिदास ने लगभग 17 पशुओं का उल्लेख किया है किन्तु उनके काव्य-विम्बों में मुख्यतया गज, हरिण, अश्व, गाय, सिंह, महिष व वृषभ महत्त्वपूर्ण हैं।

गज—उनके वर्ण्य विषय राजसी होने के कारण गज का वर्णन सर्वाधिक प्राप्त होता है। 'शाकुन्तलम्' में हाथी की क्रुद्ध अवस्था का स्वाभाविक वर्णन हुआ है। राजा दुष्यन्त को न देखकर हाथी विगड़ जाता है और तेजी से दौड़ता हुआ तपोवन में तबाही मचा देता है। पेड़ों को तोड़ डालता है, लताओं को रौंद डालता है, हरिणों को तितर-वितर कर देता है। तपस्वियों को वह मूर्तिमान् विघ्न जान पड़ता है—

तीव्राघातप्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासंगसंजातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः॥ (1·29)

यहाँ गज को 'तपस- मूर्तो विघ्ने' का विम्ब देकर उसकी भयंकरता व तपस्वियों की आकुलता को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

हाथी को जल में क्रीड़ा करना बहुत प्रिय है। 'ऋतुसंहार' में हाथी का स्वाभाविक वर्णन मिलता है। ग्रीष्मऋतु में हाथी धूप और प्यास से बेचैन होकर अपने मुख से झाग फेंकते हुए पानी की खोज में इधर उधर घूमते हैं। उस समय वे सिंह से भी नहीं डरते।'[168] जब कोई जलाशय मिल जाता है तो—

समुद्धृताशेषमृणालजालकं
विपन्नमीनं द्रुतभीतसारसम्।
परस्परोत्पीडनसंहतैर्गजैः
कृतं सरः सान्द्रविमर्दकर्दमम्॥ (ऋतु. 1·19)

उतावली मे सभी हाथी परस्पर झगड़ा करते हुए जलाशय की कमल-सम्पत्ति को तहस नहस कर देते हैं। मछलियों को विपत्ति में डाल, सारसों को भयभीत कर भगा देते हैं। सारा जलाशय कीचड़ के रूँधने से मलिन हो जाता हैं। लक्षित विम्बों मे ही गजमिथुन के परस्पर भाव-प्रकाशन का यह चित्र भी उल्लेख-नीय है—

---

168. ऋतु. 1/15

ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणु ।[169]

वसन्त ऋतु के आगमन से हाथियों पर भी कामदेव का असर होता है और जैसे कामिनी स्त्री सुगन्धित पुष्पों से सुवासित मदिरा का मुखगण्डूप द्वारा प्रेमी को पान कराती है, उसी प्रकार अत्यन्त प्रेम से हथिनी कमलों के पराग से सुगन्धित मधुर जल का अपनी सूंड से हाथी को पान कराने लगी। विक्रमोर्वशीय में भी इसी प्रकार का प्रेमचित्र है।[170]

कवि ने उपलक्षित रूप में भी गज की अनेक क्रियाओं व आदतों के बिम्ब दिये हैं। गज के विशाल आकार, पराक्रमी प्रवृत्ति व गुरु-गभीर चाल के कारण उसे राजाओं का उपमान बनाया गया है। पुरूरवा, दुष्यन्त रघु अग्निवर्ण, दिलीप, अज, कुश, अतिथि आदि प्रसिद्ध नायकों के लिये गज या गजेन्द्र का अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है। गज एक कामी पशु है[171] और हथिनी के साथ न रहने पर विरहोन्मत्त हो जाता है। गज की काम प्रधानता के आधार पर 'अग्निवर्ण' को हाथी व उसकी स्त्रियों को हथिनी की भांति कामक्रीडा में रत बताया गया है।[172] 'विक्रमोर्वशीय' में विरही हाथी को विरही राजा के प्रतीक रूप में अनेक बार प्रयुक्त किया है। यथा—'प्रिया के विरह से दुःखित गजेन्द्र वृक्षों के कुसुम-किसलयों से भूषित हो गहन वन में मारा-मारा फिरता है।[173] राजा गज से मित्रभाव स्थापित करता हुआ अपनी प्रिया का अता पता पूछता है। हाथी की मन्द गर्जन में उत्तर पा कर वह बड़ा प्रसन्न होता है और सहानुभूति की आशा में गज से अपना साम्य बताता हुआ उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है—

> मामाहुः पृथिवीभृतामधिपतिं नागाधिराजो भवान्,
> अव्युच्छिन्नपृथुप्रवृत्ति भवतो दानं ममाप्यर्थिषु।
> स्त्रीरत्नेषु ममोर्वशी प्रियतमा यूथे तवेयं वशा,
> सर्वं मामनुते प्रियाविरहजा त्वं तु व्यथा मानुभूः ॥ (वि 2 47)

उपर्युक्त श्लोक में राजा पुरूरवा एवं गजेन्द्र में पूर्ण साम्य स्थापित किया गया है।

मृगया के व्यायाम से गठित शरीर वाले मृगया प्रेमी दुष्यन्त किसी गिरिचर नाग' की भांति प्राण के सार को धारण करने वाले हैं, लम्बे चौड़े डीलडौल के कारण जिनकी कृशता दिखाई नहीं देती—

---

169 कुमार 3/37
170 वि 4/4
171 संस्कृत काव्यों में पशु पक्षी, ले डा रामदत्त शर्मा, पृ 14
172 रघु 19/11
173 वि अंक 4 श्लोक सं 5,19,22,28,29 व 35

अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति । (अभि. 2·4)

प्रजा-तंत्र से थक कर विश्राम करते हुए दुष्यन्त के लिये भी द्विपेन्द्र के विश्राम-काल का विम्ब प्रयुक्त हुआ है—

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा
निषेवते शान्तमना विविक्तम् ।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः
शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ।। (अभि. 5·5)

गज की वप्रक्रीडा प्रसिद्ध है। ,मेघदूत' में पर्वत पर स्थित मेघ के लिये ,वप्रक्रीडापरिणतगज' का चित्र प्रसिद्ध है।[174] कवि ने भूजत्वचा पर स्थित लाल बिन्दुओ को हाथी के शरीर पर स्थित रक्त बिन्दुओं से बिलकुल सही स्थापित किया है।[175] यह कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचायक है। दो सर्वथा पृथक् वस्तुओ मे सुन्दर साम्य देखा है। पार्वती की जाँघ के लिये हाथी की सूँड का आकार-सादृश्य दिया गया है।[176] दिलीप गोसेवा हेतु राजचिह्नों को न्यस्त किये हुए भी तेजोविशेष से राजा ही जान पड़ते है। उस समय वे 'आसीदनाविष्कृतदान-राजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः' मे तुलनीय थे।[177] राजा दिलीप गर्भिणी सुदक्षिणा के मिट्टी मे सुगन्धित मुख को उसी प्रकार अतृप्त होकर सूंघते है, जैसे हाथी वर्षा की प्रथम बूंदो मे सिंचित, मिट्टी की सोंध वाले पोखर को सूंघ कर तृप्त नहीं होता।[178] इस प्रकार अपनी कल्पना-शक्ति का प्रयोग कर कालिदास ने गज की विभिन्न क्रियाओं व उसके स्वरूप के विविध प्रकार से बिम्ब उपस्थित किये हैं।

मृग—पशुओं में हरिण कालिदास को सर्वाधिक प्रिय है। वन विशेषकर तपोवन का प्रसग आते ही वे मृगो का वर्णन अवश्य करते हैं। मृग सुन्दर जानवर है, कालिदास ने इसके अनेक प्रिय प्रस्तुत विम्ब दिये हैं। हरिण शान्तिप्रिय और शाकाहारी पशु है। वे झुंडों मे चलते है। समूह मे चलते हुए मृगों का एक सुन्दर बिम्ब' रघुवंश' में है। —

तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावैः
व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात् ।
आविर्बभूव कुशगर्भमुखं मृगाणां
यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम् ।। (9·55)

174. और भी रघु. 5/44
175. कुमार. 1/7
176. कुमार. 1/36
177. रघु. 2/7
178. रघु. 3/3

मृगों का झुण्ड दशरथ के समक्ष आया, जिसमें हरिणियाँ बार-बार रुक-रुक कर चल रही थीं-क्योंकि एण-शावक कुश चबाते हुए अपनी माँ का स्तन पान करने के लिये प्रणय करने लगते थे। झुण्ड का नेतृत्व एक गर्वीला हृष्ट-पुष्ट कृष्णसार कर रहा है—जिसके मुख में कुश है। 'शाकुन्तलम्' से भी मृगों के झुण्डों का चित्र है—

'छायाबद्धकदम्बक मृगकुल रोमन्थमभ्यस्यतु।'

मग-मृगी द्वारा प्रेम विह्वल अवस्था में परस्पर नेत्र खुजलाने के बिम्ब भी कालिदास ने दिये हैं—

शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीमकण्डूयत कृष्णसार।[179]

और भी 'शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयन कण्डूययानाम् मृगीम्'।[180]

प्रथम उद्धरण में मृग द्वारा मृगी के शरीर कण्डू का चित्र है, किन्तु दूसरे में मृगी को स्वत प्रेम विश्वास के साथ मृग के सींग से नेत्र खुजलाते दिखाया गया है।

मृग की क्रियाओं में चौकड़ी भरना एक प्रमुख क्रिया है। भय की आशंका होते ही वह फुर्ती से भागता है। राजा दुष्यन्त द्वारा पीछा किये जाने पर सत्रस्त अवस्था में दौड़ते हुए मृग का स्वाभाविक चित्र पूर्वोद्धृत[181] 'ग्रीवाभङ्गाभिराम मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टि' में दर्शनीय है।

मृग के मानस पटल पर उभरे संवेगों की परिणति का इतना सहज एवं सजीव चित्र शायद ही साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध हो।

वसन्त ऋतु में जब सर्वत्र पराग उड़ने लगता है तो हरिण के नेत्रों में भी यदा-कदा पराग गिर जाता है। इससे वे देखने में असमर्थ हो जाते हैं और पवन से गिराए गए सूखे पत्तों पर मर्मर ध्वनि करते हुए वनस्थली में दौड़ने फिरते हैं—

मृगा प्रियालद्रुममञ्जरीणा रज कणविघ्नितदृष्टिपाता।
मदोद्धता प्रत्यनिलं विचेरुर्वनस्थलीमर्मरपत्रमोक्षा।

(कु 3 31)

आश्रमों में ऋषि, मृगों को पालते थे। नीवार धान्य खिलाकर इङ्गुदी तैल से चिकित्सा कर वे उन्हें सन्तानवत् रखा करते थे। कालिदास ने ऋषियों के तपोवन में मृगों के बड़े वात्सल्यपूर्ण चित्र दिये हैं—

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभि।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः॥ (रघु 1 50)

---

179 कु 3/36
180 अभि 6/17
181 इसी प्रबन्ध में उद्धृत पृष्ठ 12

वसिष्ठ के आश्रम में सन्ध्या समय पर्णशाला की कुटियों पर हरिण दरवाजा रोके खड़े हैं। वे ऋषिपत्नियों से, उनके शिशुओं की भाँति, नीवार धान्य पाने के हकदार जो हैं। शकुन्तला का हरिणों से विशेष प्रेम दिखलाया गया है। उसके द्वारा मृगछौने को पालने व विशेषकर राजा द्वारा दोने में लाए गये जल को पिलाने का चित्र बड़ा मनोरम है।[182] कालिदास ने अनेक स्थानों पर, मानव से दुःख में समवेदना प्रदर्शित करते हुए हरिणों को घास चरना बन्द करते हुए दिखाया है। दशरथ द्वारा मृग पर निशाना साधने पर मृगी बाण और मृग के बीच इस भाव से खड़ी दिखाई गई है कि मृग को बाण न लगकर मुझे ही लगे।[183]

मृग के अप्रस्तुत बिम्ब भी कालिदास की रचनाओं में मिलते हैं। मृग के नेत्र बहुत सुन्दर होते हैं। नेत्रों की विशालता और चंचलता के लिये अनेक स्थानों पर मृग के नेत्रों का सादृश्य दिया गया है।[184] मृग द्वारा शिकारी को दूर तक भगा ले जाने का दृश्य दो स्थानों पर अप्रस्तुत बनाया गया है।[185] हिमालय पर्वत पर विचरण करती हुई, सुन्दर पूँछवाली, चमरी (मृगी विशेष) हिमालय को चंवर डुलाती हुई सी उसके गिरिराज पद को सार्थक करती है।[186] सीता को जब लक्ष्मण वन में अकेली छोड जाते हैं तो सीता अत्यन्त भयाकुल हो क्रन्दन करने लगती है। सीता की इस दशा को भयभीत मृगी के विलाप से बिम्बायित किया गया है।[187]

इस प्रकार मृग के रूप, कार्य, स्वभाव आदि के विविध बिम्ब कालिदास के काव्य में मिलते हैं।

अश्व—तेज गति से दौड़ते हुए रथ में जुते हुए घोड़ों का सुन्दर प्रस्तुत बिम्ब 'अभिज्ञान.' मिलता है—

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः ।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः ॥ (1·8)

यहाँ तेज दौड़ते घोड़े के कई छोटे-छोटे चित्र दिये हैं—(1) 'निरायतपूर्वकायाः' शरीर के अग्र भाग का फैलना (2) निष्कम्प.—चवरों का स्थिर दिखाई

---

182. अभि. 4/13 व 5/21 गद्य
183. रघु. 9/57
184. ऋ. स. 4/10, उ. मे. 37, कु. 5/12, 72, र. 8/59 वि. 4/8, मा. 3/1, उ. मे. 46, शा. 2/3 व 4/57 आदि
135. अभि. 1/5 व 6
186. कु. 1/13
187. रघु. 14/68

देना, (3) निभृत कानों की निश्चल स्थिति और (4) रजोभि —उठी हुई धूलि का बहुत पीछे रह जाना। इन सकेतो से सरपट दौड़ते घोड़े की कल्पना बिम्ब रूप में ताजा हो जाती है।

'मालविका' में रथ में जुते दो घोड़ों का अप्रस्तुत बिम्ब आया है—यज्ञसेन और माधवसेन दोनो भाइयो मे राज्य लक्ष्मी विभक्त करदी जाती है। वे दोनो परस्पर आक्रमण का विचार छोड़कर अग्निमित्र की आज्ञा का उसी प्रकार पालन करेंगे जैसे दो घोड़े बराबर विभक्त रथ के जुए को अपने ऊपर रख बिना परस्पर टकराए रथवाहक की आज्ञा का पालन करते हैं।[188] दो भागो मे समभाव से विभक्त राज्य भार के लिये एक साथ जुते दो घोड़ो का अप्रस्तुत बहुत ही सार्थक है और अर्थ को स्पष्ट करने वाला है। अन्यत्र भी अश्व के बिम्ब मिलते हैं।[189]

गाय—गाय को 'रघुवंश' के प्रथम व द्वितीय सर्ग मे पात्र बनाया गया है और उसमे अलौकिक गुण बताए गए हैं। वृषभ को पुष्ट शरीर एव शक्ति के आधार पर कई स्थानो पर अप्रस्तुत बिम्ब बनाया गया है। दिलीप के कधो को मूर्तता प्रदान करने के लिये 'वृषस्कन्ध' कहा गया है। रघु क्रमश लड़कपन का अतिक्रमण कर युवावस्था मे सुन्दर व पुष्ट शरीर को प्राप्त हुए, जैसे, कोई बछड़ा बड़े भारी बैलभाव को प्राप्त हुआ हो।[190] राजा रघु के विक्रमपूर्ण कार्यों के सकेत रूप में मदमस्त बैलो के द्वारा नदियो के कगार गिराने की क्रीड़ा का बिम्ब प्रयुक्त हुआ है।[191] राजा पुरूरवा एव राजकुमार आयु के लिये वृषभ एव वृषकलभ का उपमान आया है।[192] समुद्र गृह मे लेटे विदूषक गौतम के लिये 'हाट मे लेटे सॉड' का बिम्ब किया गया है।[193] इस बिम्ब से विदूषक का निठल्लापन उजागर होता है। 'कुमारसभव' मे दैवी वृषभ नान्दी का वर्णन है।

ग्रीष्म ऋतु मे भैसा का एक प्रस्तुत बिम्ब 'ऋतुसहार' मे बड़ा स्वाभाविक बन पड़ा है—

> सफेनलालावतवक्त्रसपुट
> विनि सृतालोहितजिह्वमुन्मुखम्।
> तृषाकुल नि सृतमद्रिगह्वरात्
> अवेक्षमाण महिषीकुल जलम्॥ (121)

---

188 मा 5/14
189 उ मे 13, रघु 4/71, कु 6/76
190 रघु 3/32
191 वही 4/22
192 वि 5/गद्य
193 मा 4/गद्य

भैंसों को बहुत गर्मी लगती है। जुगाली के कारण उनके मुख से झाग निकल रहा है। प्यास के कारण वे ऊपर मुख उठाए जीभ बाहर निकाले पानी की ओर चली जा रही हैं। भैंसो का यह बड़ा जाना-माना दृश्य है। अन्यत्र–

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृंगमुर्हुस्ताडितम्। (अभि. 2·6)

कहा है।

सूकर प्राय: पोखरो के आस-पास कीचड़ में जड़े खोदते देखे जाते हैं। कालिदास ने सूकर के चित्र दिये हैं। ग्रीष्म में गड्ढों में बहुत कम कीचड़ रह गया है। आतप से व्याकुल वराह, मुस्ता जड़ों के लिये उन गड्ढों को खोदते हुए ऐसे लगते हैं मानो धरती में ही घुसे जाते हों—

सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं
सर: खन्नायतपत्रमण्डलै:।
खैर्मयूखैरभितापितो भृशं
वराहयूथो विशतीव भूतलम्॥ (ऋ. 1·21)

उपर्युक्त श्लोक में 'विशतीव' क्रिया बड़ी सशक्त है। यह एक ही क्रिया पद समस्त दृश्य को सजीव कर देता है। 'कुमारसंभव' में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।[194] 'रघुवंश' में दशरथ के द्वारा सूकर के आखेट का चित्र भी बड़ा सजीव है।[195]

मृगराज सिंह का प्रस्तुत विम्ब 'ऋतुसंहार' में ग्रीष्म के प्रसंग में आता है—

तृषा महत्या हतविक्रमोद्यम :
श्वसन्मुहुर्दु रविदारिताननः।
न हन्त्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरो
विलोल जिह्वश्चालिताग्रकेसर :॥ (1·14)

अत्यन्त प्यासा सिंह हतोत्साहित हुआ बैठा है। मुंह खोल कर हांफ रहा है। जीभ से अपने होंठ चाटता है। हांफने से उसके केसर हिलते दिखाई देते हैं, गर्मी से संतप्त वह पास बैठे गज से भी उदासीन है। 'रघुवंश' में, पाटला धेनु पर स्थित सिंह का रंग व हृष्ट-पुष्ट शरीर 'प्रफुल्ल लोध्रदूम' से मूर्त किया गया है।[196] राजकुमार अज जब सीढ़ी के मार्ग से मंच पर चढ़ते है तो कवि चट्टान के रास्ते पर्वत पर चढ़ते सिंह के बच्चे के विम्ब का प्रयोग करते है।[197]

---

194. कु. 8/35
195. रघु. 9/59–60
196. रघु. 2/29
197. वही 6/3

पक्षी—कालिदास ने पक्षियो द्वारा भी बिम्ब योजना की है। पक्षियों मे मयूर बहुत सुन्दर होता है। मयूर के चित्र कालिदास के कई काव्यो मे मिलते हैं। 'कुमार' मे सध्या समय मोर का सुन्दर चित्रण किया गया है—

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो
जातरूपरसगौरमण्डलम् ।
हीयमानमहरत्ययातप
पीवरोरु पिबतीव बर्हिण ॥ (8 36)

अरुणिम सन्ध्या-काल मे मयूर वृक्ष को शाखा पर अपने लम्बे पखो को लटकाए बैठा है। उसकी पूँछ के गोल सुनहरी चँदोवा को देखकर ऐसा लगता है मानो मयूर सायकाल की धूप पी रहा हो, और इसी कारण दिन ढलता जा रहा हो।

'ऋतुसहार' मे, प्रकृति का ही काव्य होने के कारण, पशुपक्षियो के सुन्दर बिम्ब मिलते हैं। ग्रीष्म मे, मयूर की सन्तप्त अवस्था का एव वर्षा म प्रसन्न दशा का चित्रण मिलता है। ग्रीष्म मे जलती हुई हवन की अग्नि के समान सूर्य की किरणो से मयूर सुस्त पडा हुआ है। वह निकटस्थ सर्प को मारने मे विरक्त है। जबकि सर्प उसी के कलाप-चक्र मे अपने मुख को धूप से बचाने के लिये छिपाकर बैठा है—

हुताग्निकल्पै सवितुर्गभस्तिभि
कलापिन क्लान्तशरीरचेतस ।
न भोगिन घ्नन्ति समीपवर्तिन
कलापचक्रेषु निवेशिताननम् ॥ (1 16)

वर्षा आने पर वही मयूर बादलो की शोभा पर मुग्ध हुए मीठे स्वर मे गाने लगते हैं। अपने पखो को फैलाने से अत्यन्त मनोहर मोर अपनी प्रेयसियो के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करते हुए नाचने लगते हैं—

सदा मनोज्ञ स्वनदुत्सवोत्सुक
विकीर्णविस्तीर्णकलापशोभितम् ।
ससम्भ्रमालिगनचुम्बनाकुल
प्रवृत्तनृत्य कुलमद्य बर्हिणाम् ॥ (2 6)

मयूर का मेघ मे विशेष प्रेम है। मेघ की ओर मुख किये मयूरो की मुद्रा का बिम्ब भी कालिदास के काव्य मे देखने को मिलता है। तीव्र पवन मे आहत पखो वाला मयूर केका ध्वनि करता हुआ गर्दन ऊँची कर करके मेघो को निरखता बडा सुन्दर लग रहा है'।[198] यक्ष मेघ से कहता है कि, आपको आने देख मयूर प्रेम और भावावेश मे सजल नयनो के साथ अपनी मधुर केका ध्वनि से आपका स्वागत करेंगे'।[199]

---

198 वि 4/18
199 पू मे. 22

उपवनों में मोरों के लिये वास-यष्टि बनी रहती है। वास-यष्टि पर बैठे हुए मोर के नृत्य का सुन्दर चित्र कालिदास ने 'मेघदूत' में दिया है।[200] पुरुरवा के भवन में रात्रि के समय निद्रा से अलस मयूर वास-यष्टि पर उत्कीर्ण किये हुए से जान पड़ते है।[201] दिलीप व सुदक्षिणा के रथ की ध्वनि को मेघ की गर्जन समझ कर मयूर षड्ज स्वर में गाने लगते हैं।[202] मोर की आवाज को षड्ज स्वर से बिम्बायित किया है। पुरुरवा ने मयूर के 'घनरुचिरकलाप' को उर्वशी के फूलों से सजे घने केशो से उपमित किया है।[203]

हंस के बिम्ब भी कालीदास के काव्यों में पर्याप्त हैं। राजा पुरुरवा के विरह-दुःख को 'हंस युवा' व उर्वशी की शखियों के दुःख को 'हंसीयुगलम्' के प्रतीक से चित्रित किया गया है।

वर्षाऋतु में हंसों के मानसरोवर जाने का चित्र कवि ने इस प्रकार दिया है—

> आकैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
> संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ।। (पू० मं० 11)

उर्वशी की नूपुर ध्वनि के लिये राजहस की ध्वनि का एव चाल के लिये हस की गति का अप्रस्तुत बिम्ब भी दिया गया है।[204] उर्वशी की गति को चुराने वाले हंस पुरुरवा उर्वशी को वापिस देने को कहते हैं क्योंकि यदि चोर के पास एक वस्तु चोरी की मिल जाये तो उसको सब कुछ देना होता है।[205] हस कमलनाल से रेशे निकालते देखे जाते है। हंस की इस क्रिया को कालिदास ने बहुत सुन्दर अवसर पर याद किया है। स्वर्ग को प्रस्थान करती हुई उर्वशी राजा का मन उसके शरीर से, साथ खींचे लिये जा रही है– जैसे राजहंसी मृणाल खींचती हो।[206]

कोयल को 'मधुरसंवादिनी' एव 'परपुष्टा' माना जाता है। कवि ने इसी आधार पर कोयल के बिम्ब रचे हैं। उसे मान भंग कराने वाली दूती के रूप में चित्रित किया गया है।[207] उसको उर्वशी की भाँति 'मंजुस्वना' एव मालविका

---

200. उ. मे. 16
201. वि. 3/2
202. रघु. 1/39
203. वि. 4/22 एव र. 9/67
204. वि. 4/30 व 32
205. वही श्लोक 33
206. वही 1/18

की भाँति 'मधुस्वरा' कहा गया है।[208] 'अभिज्ञान० मे राजा दुष्यन्त कोयल को चालाक स्त्रीजाति के प्रतीक रूप मे उदाहृत करते है—

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत या प्रतिबोधवत्य ।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजै परभृता खलु पोषयन्ति ॥ (5 22)

'भ्रमर' को प्रेमी का प्रतीक मानकर कालिदास ने बिम्ब योजना म साधन बनाया है। वसत ऋतु मे भ्रमर को प्रिया के साथ एक ही पात्र मे मधु-पान करते चित्रित किया गया है।[209] 'ऋतुसहार' व विक्रमोर्वशीयम्' मे भी भ्रमर के प्रस्तुत चित्र हैं।[210] प्रेमी व प्रेमिका के प्रतीक रूप मे भ्रमर व भ्रमरी के सुन्दर अप्रस्तुत बिम्ब मिलते हैं। अन्य राजाओ से विमुख इन्दुमती के लिये सहकार मात्र म आसक्त भ्रमरी का बिम्ब सर्वथा उपयुक्त है।[211] कवि ने भ्रमर की समस्त क्रियाएँ व प्रेमी जैसा आचरण दिखाते हुए निम्न श्लोक मे उसका अनुपम बिम्ब सिरजा है—

चलापागा दृष्टि स्पृशसि बहुशो वेपथुमती
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचर ।
करौ व्याधुन्वत्या पिबसि रतिसर्वस्वमधर
वय तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्व खलु कृती ॥ (अभि० 1 20)

भ्रमर स्वभाववश शकुन्तला के इर्द-गिर्द मँडराता है, उस पर कामी के व्यवहार का आरोप किया गया है। यह पूरा दृश्य बडी सूक्ष्मता से वर्णित है एव भ्रमर तथा प्रेमी दोनो की चेष्टाओ का मूर्तरूप उपस्थित कर देता है।

राजा दिलीप की रथ-यात्रा के समय पक्ति-बद्ध उडते सारस वन्दनवार की तरह दिखाई देते हैं।[212] चातक, बगुले, सारिका चक्रवाक, चकोर और कपोत आदि पक्षियो के भी बिम्ब कालिदास के काव्य मे यत्र तत्र मिलते हैं।[213]

अन्यजन्तु—पशु पक्षियो से इतर जन्तुओ के बिम्ब भी कालिदास के काव्य मे मिलते हैं।

तिमि नामक मत्स्य विशेष के सिर पर एक छेद होता है, जिससे वह फव्वारे की भाँति जल छोडती है इसका यथार्थ वर्णन 'रघुवश' मे मिलता है—

---

207 कु 3/32 व वि 4/25
208 वि 4/27 व मा 4/2
209 कु 3/36
210 वि 4/42 व ऋतु 6/36
210 रघु 6/69

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः
संमीलयन्तो विवृताननत्वात् ।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रै-
रूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान् ।। (13.10)

अज की पताकाओं की मछलियों से समता स्थापित की गई है।[214] वीर वधूटी से भी कवि ने अप्रस्तुत का काम लिया है।[215]

सर्प के तेज और विष को अनेक बार विम्ब का आधार बनाया गया है। इसके प्रस्तुत चित्र 'ऋतुसंहार' में मिलते हैं। धूप से सन्तप्त सर्प—

अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः
फणी मयूरस्यतले निषीदति ।। (1.13)

मयूर के नीचे छिपा बैठा है। अपना सिर नीचा कर बार बार फुफकार छोड़ता है। उसकी मणि धूप में चमक रही है। अपनी जीभ को लपलपा कर वायु ही पी रहा है। विषाग्नि और सूर्यातप मे अभितप्त वह मेंढकों को भी नही खा रहा है।[216] शिव के प्रभाव से रुकी हुई चेष्टा वाले पराक्रमी दिलीप की मन की अवस्था मत्र और औषधि से से रुद्धवीर्य सर्प से रूपायित की गई है।[217]

राजा रघु सर्प द्वारा केंचुली त्याग के समान सदा के लिये राज्यलक्ष्मी का त्याग कर देते है।[218] श्रवणकुमार के पिता द्वारा दशरथ को दिये गये शाप के लिये, लिये, आक्रान्त सर्प द्वारा विष उगलने का अप्रस्तुत बिम्ब बड़ा सार्थक है।[219] राम स्वयंवर में धनुष को सोए हुए भयंकर सर्पराज की भाँति उठा लेते हैं।[220] राम के पराक्रम को सुनकर परशुराम, डंडा मारने से, सोए हुए सांप के समान क्रुद्ध हो जाते हैं।[221] कवि ने तिरस्कृत होकर बदला लेने के भाव को बार बार सर्प के विम्ब से रूपायित किया है।

पारसी राजाओं के दाढ़ी-मूछों वाले, कटे हुए सिरों के लिये, मधु-मक्खी के छत्तों का विम्ब एकदम नया और रोचक है।[223] 'ऋतुसंहार' में कवि ने अनेक पशु-पक्षियों के एकत्रित चित्र भी दिये है जिन्हें किसी एक वर्ग में नही रखा जा सकता। विस्तार भय से यहाँ सबका निदर्शन संभव नहीं है।[224]

---

212. रघु. 1/41
213 विशेष देखें -'संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी, पृ. 208
214. रघु. 1/40
215. वही 11/42
216. ऋतु. 1/20
217. रघु. 2/32

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि कालिदास के काव्य मे प्रकृति क्षेत्र से गृहीत विम्बो की अधिकता है, जिसके तीन कारण माने जा सकते हैं—

(1) मानव व प्रकृति का निरन्तर सयोग।

(2) कवि का प्रकृति के प्रति प्रेमाधिक्य।

(3) कवि की सूक्ष्मावलोकन शक्ति।

---

218 रघु 8/13
219 वही 9/79
220 वही 11/44
221 वही 11/71
222 देखें अभि 6/31 व रघु 12/5, 32 व 14/41
223 रघु 4/63
224 ऋतु 1/23 व 27

□□□□

4

कालिदास के बिम्बों के स्रोत—मानवीय क्षेत्र

कालिदास ने प्रकृति के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से भी वस्तु ग्रहण कर विम्ब-योजना की है। इन स्रोतों का अध्ययन मानव-विम्ब के अन्तर्गत किया जायेगा। मानव-जीवन से सम्बन्धित कवि के विम्बो की सुविधा हेतु निम्नलिखित शीर्षकों मे विभाजित कर सकते हैं—

(1) रूप-चित्रण—
- (क) नायिका
- (ख) नायक
- (ग) अन्य पात्र

(2) सामाजिक विम्ब—
- (क) रीति-रिवाज व सस्कार
- (ख) उपकरण
- (ग) खाद्य-पदार्थ
- (घ) अस्त्र-शस्त्र
- (ङ) मनोरंजन
- (च) कला व व्यवसाय

(3) राजनीतिक विम्ब—
- (क) राजा व राजधर्म
- (ख) सेना
- (ग) राजसी उपादान
- (घ) राजनीति के विचार

(4) देश व नगर चित्र (भौगोलिक बिम्ब)

(क) देश

(ख) नगर

(ग) भवन

(5) पौराणिक बिम्ब

अब हम इनका विस्तृत अध्ययन करेंगे —

रूप-चित्रण

मानव से सम्बन्धित बिम्बो मे हम सर्वप्रथम मानव के रूप-चित्रण से सम्बन्धित बिम्ब-विधान को लेते हैं। रूप चित्रण मे क्रमश नायिका, नायक व अन्य पात्रो का वर्णन रहेगा।

नायिका—नायिका का रूप-चित्रण भारतीय शास्त्रीय परम्परा के अनुसार आलम्बन विभाग के अन्तर्गत आता है। जैसा अन्यत्र कहा जा चुका है, काव्य म रस निष्पत्ति तभी सभव है जब काव्यगत आलम्बन का वर्णन सचित्र हो। जब तक पाठक के हृदय मे स्पष्ट मूर्तिया उद्बुद्ध नही होगी, रस की स्थिति तक पहुचना सभव नही होगा। कालिदास की 'रससिद्धता का एक प्रमुख कारण उनके आलम्बन-विषयक स्पष्ट चित्र हैं।

कालिदास ने अपने दृश्य व श्रव्य दोनो प्रकार के काव्यो की नायिकाओं के सुन्दर व स्पष्ट शब्द चित्र दिये हैं। उनकी नायिकाए अत्यन्त रूपवती हैं, कारण-मालविका को छोडकर सभी नायिकाए मानवेतर जाति स सम्बद्ध हैं। उवर्शी अप्सरा की पुत्री है, इन्दुमती अप्सरा का अवतार है, यक्षिणी भी मानवेतर जाति मे सम्बद्ध है और पार्वती स्वय देवता है। इसलिय कवि उनके अलौकिक सौन्दर्य को अनेक अलौकिक बिम्बो मे रूपायित करता है। यथा शकुन्तला के लिये—

मानुषीषु कथ वा स्यादस्य रूपस्य सभव ।
न प्रभातरल ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥

अभि 1/22

मानव लोक स्त्रियो मे इस रूप की उत्पत्ति कैसे हो सकती थी, प्रभा से देदीप्यमान (विद्युत् आदि) तेज पृथ्वी तल पर उत्पन्न नही होता।

शकुन्तला के सौन्दर्य की अलौकिकता को कवि एक झटके म स्पष्ट कर देता है। थोडे से शब्दो मे दृष्टान्त का आधार लेकर यहाँ सुन्दर शब्द चित्र दिया गया है। इसी प्रकार उर्वशी की सृष्टि कवि साधारण विधि मे मानने को तैयार नहीं है। 'अन्य नारियो की सृष्टि करने वाला, विषय विरत ब्रह्मा इस मनोहर रूप की रचना कैसे कर सकता है? उर्वशी का रचयिता या तो कान्तिप्रदाता चन्द्रमा है, या चित्तोन्मादक मदन या फिर वसन्त मास'।[1] इस प्रकार की अलौकिक सुन्दरियो

के रूप-चित्र खड़ा करने मे कालिदास ने अपने समृद्ध कल्पना कोष का भरपूर उपयोग किया है। सर्वप्रथम हम मालविका का सर्वांग चित्र लेते हैं।

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहूनतावंसयोः
संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव।
मध्यः पाणिमितोऽमितं च जघनं पादावरालांगुली,
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः॥

(मा. 2·3)

नृत्य के लिये आई मालविका देखकर राजा कहता है—

'बड़ी-बड़ी आंखों वाला शरद् के चाँद की तरह कान्तिपूर्ण मुख, कन्धों पर झुकी हुई भुजाएँ, घने व उन्नत उरोजों वाला वक्ष, चिकने से पार्श्व, मुट्ठी से नाप लो ऐसी कमर जो नापा नही जा सके ऐसा जघन, कुछ टेढ़ी और नीचे की ओर झुकी अंगुलियो वाले पैर, मालविका का सारा शरीर इस तरह गढा हुआ है, जैसाकि नाट्याचार्य (गणदास) चाहता होगा।' इस उदाहरण में मालविका के समस्त अवयवो को छोटे-छोटे विम्बों से रूपायित किया है जिसमें रंग, रूप, आकार झुकाव, माप, मसृणता सब कुछ इन्द्रियगम्य है। अन्तिम पंक्ति की कल्पना-जैसा नाट्याचार्य चाहता होगा वैसी ही मूर्ति-एकदम मौलिक कल्पना है। व्याख्याकार श्री मोहनदेव पंत के शब्दो मे—'यह राजा के मुंह से कालिदास का खींचा हुआ नृत्यांगना का एक ऐसा अनूठा शब्द-चित्र है, जो किसी भी कलाकार के वर्ण-चित्र को मात कर सकता है।'[2]

उर्वशी सौन्दर्य का दूसरा नाम है, उसके अंग-प्रत्यंग का वर्णन शक्य नहीं —'*प्रत्यवयवमशक्यवर्णनां तामवेहि*' संक्षेप में पुरूरवा उसका संकेत देते हैं—

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः॥ (वि. 2 3)

यहां पुरूरवा उर्वशी के मुख व अन्य अवयवो का वर्णन नहीं करता अपितु उसके सौन्दर्य से सर्वथा अभिभूत होकर अपने मनोभावो को निराले ढंग से अभिव्यक्त करता है। स्वर्ग मे अवतरित उर्वशी को आभूषण आभूषित नहीं करते, अपितु वहां गहनों की शोभा बढाती है। प्रसाधन सामग्री उर्वशी की अलौकिक आभा से स्वयं प्रभावित हो जाती है। चन्द्र, कमल आदि उपमानो का सौन्दर्य-वर्णन करने के लिये उर्वशी का उपमान दिया जा सकता है। वास्तव में देखा जाये तो यहां 'आभरण' 'प्रसाधन.' व 'उपमान.' अप्रस्तुत विम्बों की भांति न तो स्पष्ट

1. विक्र० 1/18
2. 'मालविकाग्निमित्रम्' पृ. 102

है न ऐन्द्रिय। वे प्रतीक भले ही कहे जा सकते हैं किन्तु वे पाठक की कल्पना में एक असाधारण सुन्दरी का बिम्ब अवश्य खड़ा करने में समर्थ है।

'शाकुन्तलम्' की नायिका कवि की प्रौढ़ प्रतिभा की उपज है। उसका सौन्दर्य बड़ा कमनीय है। शकुन्तला के रूप चित्रण में कवि ने प्रारम्भ से अन्त तक प्रकृति को ही उपमान बनाया है। मालविका का चित्र नृत्यांगना के रूप में था, उर्वशी का कल्पवृक्ष से प्राप्त आभरण व प्रसाधनों के सन्दर्भ में, किन्तु शकुन्तला 'अव्याजमनोहर' है। वह वल्कल वस्त्रों में भी आभूषित प्रतीत होती है—

> सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
> मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
> इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
> किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ (अभि 1 17)

कमल काई में घिरा होने पर भी सुन्दर लगता है। चन्द्रमा का कलंक उसकी शोभा को ही बढ़ाता है। यह कृशांगी वल्कल वस्त्र में भी बड़ी अच्छी लग रही है। सच है, सुन्दर आकृति वालों के लिये क्या चीज शृंगार नहीं बन जाती? यहाँ प्रथम तीन पंक्तियों में तीन बिम्ब है—काई से घिरा कमल, कलंक से लांछित चन्द्र और वल्कल पहने तन्वी। ये तीनों मिलकर नैसर्गिक कमनीयता का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। चौथी पंक्ति में एक सामान्य कथन है। यद्यपि इस सामान्य कथन से कोई विशिष्ट बिम्ब नेत्रों के सामने उपस्थित नहीं होता किन्तु यह कथन पहले तीन बिम्बों को अधिक स्पष्ट करता है। शकुन्तला के लिये कवि द्वारा प्रयुक्त 'तन्वी' विशेषण बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह शरीर की कृशता का द्योतक है। अन्यत्र शकुन्तला को मधुर-आकृति वाली कहा है, आकृति को मधुर कहना—अंग्रेजी आलोचना में विशेषण-विपर्यय कहा जायेगा। 'मधुरता' जिह्वा का विषय है जबकि आकृति नेत्रों का। आस्वाद्य धर्म का चाक्षुष विषय पर आरोप बिम्ब योजना का ही अंग है। अगले श्लोक में तो कालिदास ने शकुन्तला के रूप को चक्षु, घ्राण, रसना व स्पर्श सभी संवेदनाओं का एक साथ भोग्य विषय बना दिया है—

> अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
> रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
> अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
> न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥ (2 10)

शकुन्तला का रूप वैसा ही निर्दोष व पवित्र है जैसा बिना सूंघा हुआ फूल, नखों से अछूता किसलय, बिना बिंधा रत्न, अनास्वादित ताजा शहद और बिना भोगा हुआ पुण्यों का फल।

यहाँ शकुन्तला के अम्लान कौमार्य और पवित्र अछूते सौन्दर्य का बिम्ब प्रस्तुत करने के लिये अनेक उपमान प्रयुक्त हुए हैं। ये सभी उपमान ऐन्द्रिय गुण में

संवलित हैं। 'अनाघ्रातं पुष्पं' गन्ध-संवेदना, 'किसलय.' स्पर्श-संवेदना, अनाविद्ध रत्नं रूप-सवेदना, 'मधुनवम.' आस्वाद-सवेदना को तृप्त करते है।' न जाने इसका भोक्ता कौन होगा' इस पद से दुष्यन्त के हृदय की वासना भी अभिव्यक्त है।

'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग में पार्वती के सौन्दर्य का विशद चित्रण हुआ है। कालिदास ने पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन सर्वाधिक विस्तार से किया है।[3] पार्वती के नख-शिख, ध्वनि' गति, अवलोकन, स्मित, सुगन्ध, आभूषण आदि का वर्णन बड़ा ही विम्बात्मक है। अनेक अलंकारों यथा निदर्शना,[4] प्रतीप,[5] अतिशयोक्ति,[6] उत्प्रेक्षा,[7] दीपक,[8] व्यतिरेक[9] आदि के आधार पर सादृश्य-विधान किया गया है जो सौन्दर्य के अनेक पक्षों को उजागर करता है। कवि के अनुसार 'रचयिता ब्रह्मा ने विश्व के सम्पूर्ण सौन्दर्य को एक साथ, एक स्थान पर, देखने की इच्छा से, सम्पूर्ण सुन्दर पदार्थों को एकत्र कर और उनका यथाविधि सन्निवेश करके बड़े यत्न से पार्वती की रचना की थी।[10] अतः बाल्यावस्था पार करते ही—

> उन्मीलितं तूलिकयैव चित्र
> सूर्यांशुभिभिन्नमिवारविन्दम्।
> बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि
> वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥ (1·32)

नवयौवन से (स्तन, कटि, जघन आदि में) विभक्त हुआ पार्वती का शरीर सर्वांग निखर उठा जैसे चित्र में कूची से रंग भरा जाता हो अथवा सूर्य की किरणों से कमल धीरे-धीरे खिल रहा हो, पार्वती के शरीर के विकास जैसी सूक्ष्म व अचाक्षुप प्रक्रिया को बाह्य जगत् के उपादानों में कालिदास ने चतुराई से पकड़ लिया है।

यद्यपि यह समस्त प्रसंग विम्बविधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, विस्तार-भय से यहाँ केवल पार्वती की स्मित का चित्र ही और लिया जा रहा है—

> पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रमस्थम।

---

3 कुमार. 1/32 से 49 तक
4. वही—33
5. वही—34 व 48
6. वही—44
7. वही—45
8. वही—36
9. वही—41 व 43
10. वही—49

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ॥

(1 44)

यदि कोई (श्वेत) पुष्प (लाल) किसलय पर रख दिया जाये, या उज्ज्वल मोती लालवर्ण के मूंगे पर रख दिया जाये तो इनमें से कोई पार्वती के ताम्र ओठों पर बिखरी आभा वाले विशद स्मित का अनुकरण कर सकता है। आकर्षण का राज मधुर मुस्कुराहट में छिपा रहता है—वह मुस्कुराहट विधाता किसी किसी को बड़ी कृपा करके दिया करता है। त्रिभुवन विजयी शिव को जीतने वाली 'मुस्कुराहट' के वर्णन में कवि ने सर्वातिशायी अलौकिक प्रतिभा का प्रयोग किया है। पुष्प-प्रवाल, मुक्ता-मूंगा आदि प्रसिद्ध उपमान यहाँ विशिष्ट रूप में अभीष्ट हैं और उनकी असाधारण स्थिति की कल्पना की गई है। प्राचीन दृष्टि से यहाँ 'प्रतीप' व 'अतिशयोक्ति' का 'संकर' है।

मेघदूत की नायिका 'यक्षप्रिया' के सौन्दर्य का भी सुन्दर चित्र कालिदास ने खींचा है। यक्ष अपनी प्रिया का वर्णन मेघ से इस प्रकार करता है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥ (उ मे 22)

यक्षिणी तन्वी (पतली दुबली) युवती है। नुकीले दांत और पके हुए बिम्बाफल के समान उसका अधरोष्ठ है। कटि क्षीण है और भयभीत मृगीवत् उसकी चंचल चितवन है। उसकी नाभि गहरी, गति जघनभार के कारण मन्द है। स्तनों के कारण वह कुछ झुकी हुई-सी है। बस, यों समझो कि स्त्रियों के क्षेत्र में विधाता की सर्वप्रथम कृति हो। यहाँ प्रसिद्ध उपमानों के आधार पर यक्षिणी का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है

कतिपय विशिष्ट सौन्दर्य-चित्र

अभी तक हमने कालिदास की नायिकाओं के आलम्बन बिम्ब उनकी साधारण अवस्था में देखे। विशिष्ट अवस्थाओं, विभिन्न भाव भंगी एवं मुद्राओं में कालिदास ने अपनी नायिकाओं के कुछ बेजोड़ चित्र दिये हैं जो बिम्ब-योजना की दृष्टि से साहित्य में अपना सानी नहीं रखते। हाँ, उनके आधार पर यदि कोई चित्रकार चाहे तो अपनी 'आर्ट-गैलरी' को सजा सकता है। इनमें से प्रथम चित्र मालविका की एक विशेष मुद्रा (पोज) का है। नृत्य समाप्त करने के बाद वह विदूषक के द्वारा रोकने पर कमर पर हाथ रखकर खड़ी हो जाती है—

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।
पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम्॥ (मा 2 6)

बायां हाथ कमर के निचले भाग पर रखा हुआ है, जिससे कगन मौन है। दूसरा दांया हाथ श्यामा लता की डाली की भाँति नीचे छोड रखा है। आँखें फर्श पर गडी हुई है और वह पैर के अंगूठे से फर्श पर पडे फूलो को कुरेद रही है ऐसी स्थिति मे उसका ऊपर का आधा शरीर सीधा लम्बा लगता है। मालविका की यह स्थिति नृत्य मे भी अधिक सुन्दर लग रही है। प्रस्तुत श्लोक में एक सुन्दर मुद्रा-बिम्ब है।

डा भगवतशरण उपाध्याय के शब्दो में यह श्लोक न केवल वास्तुकार, तक्षक और चित्रकार के लिये आदर्श अभिप्राय प्रस्तुत करता है, वरन मथुरा सग्रहालय की तद्वत, सर्वथा छन्द में बतायी मुद्रा मे खड़ी, शुंगकालीन नारी-मूर्ति के नीचे लिखा जा सकता है'।[11]

दूसरा चित्र वृक्ष-सिंचन से थकी हुई शकुन्तला का है—

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणा—
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
स्रस्तं कर्णशिरीषरोधि वदने धर्माम्भसा जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः॥

(अभि. 1 26)

सुन्दरी स्त्रियो के कन्धे स्वभावतः झुके हुए होते हैं, हथेलियाँ लाल होती है। बार-बार घडा उठाने के श्रम से शकुन्तला के कन्धे और अधिक झुक गये है तथा हथेलियाँ अत्यन्त लाल हो गई है। थकान के कारण हाँफने मे अभी भी स्तन काँप रहे हैं। मुख पर पसीने की बूँदें छहरी हुई है जिसमे कर्णाभूषण बनाए गए शिरीष-पुष्पो की पखुडिया चिपक गई है, हिल नही पातीं। बार-बार झुकने-उठने से जूडा खुल गया है, एक हाथ से (क्योकि दूसरा घडे को पकड़े था) संभाले गये बाल अभी भी बिखरे हुए है। बिना अलंकार- विधान का सहारा लिये, थकी हुई सुन्दरी नायिका का यह लक्षित बिम्ब, बडा ही स्वाभाविक है। विरह में कृश हुई एवं प्रेम-पत्र लिखती हुई शकुन्तला की मुद्रा भी बड़ी स्वभाव सुन्दर रूप से वर्णित हुई है।[12]

यक्ष की कल्पना मे विरहिणी यक्षिणी का बिम्ब कुछ इस प्रकार का है—

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृत्तां मूर्च्छनां विस्मरन्ती॥ (उ.मे. 26)

---

11. 'कालिदास के सुभाषित' पृष्ठ 223
12. अभि. 3/7 व 12

यहाँ कालिदास ने अपनी कल्पना शक्ति से विरह विधुरा स्त्री का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। विरह में, वस्त्रों आदि के प्रति विरक्ति, वीणा से दिल बहलाना, अश्रु बहाना तथा आलाप की विस्मृति, स्त्रियों के लिए बड़ा स्वाभाविक है। अत यह बिम्ब बड़ा सजीव है। यह पद्य हम इस बात का प्रमाण है कि कालिदास को कण्ठसंगीत, वाद्यसंगीत एव चित्रकला, तीनों ललित कलाओं का अच्छा ज्ञान था। यह पद्य भी अच्छे चित्रकार के लिये प्रेरणा बन सकता है।[13] 'उत्तरमेघ' में इस प्रकार के कई सुन्दर बिम्ब देखे जा सकते है।[14]

तपस्या—निरत पार्वती के कुछ बिम्ब भी अतिरिक्त कौशल से चित्रित किये गये है। पंचाग्नि तप करती पार्वती का सजीव रूप खड़ा कर दिया गया है निम्नलिखित श्लोक में—

> शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां
> शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा ।
> विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभा—
> मनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥ (कु 5 20)

यहाँ पहला बिम्ब तो पंचाग्नि-साधना का उभरता है। इस पद्य से ज्ञात होता है कि पंचाग्नि तप करते समय साधक अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके पाँचवीं अग्नि, सूर्य की ओर एकटक दृष्टि लगाकर देखता है दूसरा बिम्ब पार्वती की कठोर तपस्या का उभरता है। वह सूर्य की चकाचौंध की भी परवाह नहीं करती और धीरे-धीरे उसे जीत लेती है। पार्वती के लिये प्रयुक्त विशेषण 'शुचि-स्मिता' व 'सुमध्यमा' बिम्ब को स्पष्टता देने के लिये साभिप्राय प्रयुक्त हैं। 'शुचि-स्मिता' से यह अभिप्राय है कि कठोर पंचाग्नि तप करते समय भी पार्वती के मुख पर कष्ट के भाव नहीं थे। 'सुमध्यमा' से उस कठिन स्थिति में भी शरीर के सीधे रहने का भाव निहित है। यह बिम्ब, उमा के शारीरिक सौन्दर्य के साथ उसकी दृढ़ इच्छा शक्ति, आत्मबल और अद्वितीय सहन शीलता को भी पाठक के मस्तिष्क में ला देता है।

---

13 इस सम्बन्ध मे डा भडारे की उक्ति द्रष्टव्य है—
"The Word-picture, drawn by the great poet deserved to be transformed into a portrait on the convas by a great painter precisely in accord with the pellucid, glowing language and felicitious enchanting style of the original portraiture"
—Imagery of Kalidasa, page, 54

14 देखें 24,25

'अयत्ननिर्वर्त्य' यमक ने भाषा मे चार चाँद लगा दिये है।

वर्षारम्भ मे, पार्वती की समाधि-निरत मुद्रा का बिम्ब और भी व्यंजनात्मक है—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः
पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे
चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः॥ (कु. 5·24)

वर्षा की प्रथम बूँदे (समाधिस्थ) पार्वती के पलकों मे क्षण भर ठहरकर, अधर को पीडित करती हुई उनके स्तनो पर टपक पडी। स्तनो की कठोरता से चूर-चूर हुई, वे धीरे-धीरे त्रिवली को पार करती हुई नाभि मे प्रविष्ट हुईं।

यहाँ कवि ने प्रथम बूँदों की पार्वती के शरीर पर ढुलकाने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। इसमे पार्वती की समाधिस्थ मुद्रा का स्पष्ट बिम्ब उभरता है।

चित्र मीमांसाकार अप्पय दीक्षित ने इस श्लोक की ध्वनि की प्रशंसा करते हुए विस्तृत व्याख्या की है। भीषण ताप से राहत देने वाली वर्षा की प्रथम बूँदों के शरीर पर गिरने से सुखानुभूति होना आवश्यक है। इस अवस्था में भी अविचलित बैठे रहना उनकी समाधिस्थ-अवस्था को व्यक्त करता है। समाधि अवस्था में नेत्र नासाग्र पर टिके रहते है, मुख बन्द और निश्चल रहता है। वक्ष सीधा रखना होता है और एकाग्रचित्त से अभीष्ट देव का ध्यान ही समाधि है—

नासाग्रन्यस्तनयन. संवृतास्यः सुनिश्चलः।
ध्यायीत मनसा देवमुरो विष्टभ्य चाग्रतः॥[15]

वर्षा की बूँदे पार्वती के मस्तक से गिरती हुई पलकों में कुछ देर रुकी, इससे पार्वती के नयनो का अधखुली अवस्था मे नासिकाग्र पर टिके होना स्पष्ट है। अन्यथा यदि नेत्र पूरे खुले अथवा बद होते, तो, पक्ष्म भी ऊपर उठे या नीचे झुके होते, उस अवस्था मे बूँदों का कुछ देर ठहरना संभव नहीं था। यदि मुख खुला और अथवा शरीर अस्थिर होता तो भी बूँदों का उक्त क्रम में धीरे-धीरे बहना आवश्यक नही था। इस प्रकार बूँदो के वर्णन से ही पार्वती की समाधि निरत मुद्रा स्पष्ट है।

व्यंजना के माध्यम से यहाँ एक और बिम्ब उभरता है, वह है पार्वती के शरीर के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य का। जैसाकि अप्पय दीक्षित कहते है—

'किं' चैभिरेव विशेषणैर्देव्या लोकोत्तरं सौन्दर्यमभिव्यज्यते। स्थिता इत्यनेन पक्ष्मणामविरलतायाः, क्षणमित्यनेन तेषां मसृणतायाः, पक्ष्मपतनशिथिलवेगैरुदबिन्दुभिस्ताऽनोक्त्या अधरस्यातिसौकुमार्यस्य,

---

15. चित्रमीमांसा पृष्ठ 14

पक्ष्माधरपतनादिभि शिथिलवेगाना तेषा स्तनोत्सधे चूर्णीभाव-वर्णनन तयोरतिकाठिन्यस्य, उरोविष्टम्भेऽपि वलीषु तेषा स्खलनोक्त्या वलीना विस्पष्टताया, सर्वाबिन्दूना नाभावेद प्रवेशकथनेन नाभेरतिगभीरतायाश्चाभिव्यजनात्'।[16]

उक्त प्रकार से इस पद्य से पार्वती की समाधि-अवस्था के अतिरिक्त शरीर सौन्दर्य भी व्यग्य है। किन्तु यहाँ समाधि अवस्था का बिम्ब जितना स्पष्ट है शारीरिक सौन्दर्य का बिम्ब उतना स्पष्ट नहीं है। सावधान और सुधी पाठक ही दूसरे बिम्ब को ग्रहण करने मे समर्थ हो सकता है। अस्तु, चित्रविधान की दृष्टि मे पद्य बडा समृद्ध है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास के नायिकाओ मे सम्बन्धित बिम्ब बहुत सुन्दर और सजीव हैं। सुदक्षिणा का गर्भावस्था का चित्र,[17] इन्दुमती का विवाह अवसर पर दिया गया बिम्ब[18] और सीता को निर्वासन अवस्था म धरती पर लता की भाँति गिरने का बिम्ब[19] भी इस सन्दर्भ मे देखे जा सकते है। विस्तार भय मे उन्हे यहाँ देना सम्भव नही है।

नारी की विभिन्न अवस्थाओ को अप्रस्तुत बनाकर भी कालिदास ने बिम्ब-योजना की है। किन्तु अप्रस्तुत बिम्बो मे प्रस्तुत बिम्ब की भाति स्पष्ट चित्रग्रहण नहीं हो पाता है। पाश्चात्य विद्वान् भी इसे द्वितीय कोटि की इमेजरी मानते हैं। कालिदास ने यत्र-तत्र नारी-उपमान मे बिम्ब को स्पष्ट किया है। पृथ्वी का अनेक बार राजा की वधू से उपमित किया गया है। 'राजा अज यह सोचकर कि कही बलात उपभोग मे उद्विग्न न हो जाय, सद्य —प्राप्त पृथ्वी का नवपरिणीता वधू की भाँति सदय भाव से उपभोग करते हैं'।[20] शरद्ऋतु का आगमन कालिदास को नववधू की भाँति सजधज से युक्त होने के कारण रम्य प्रतीत होता है।[21] शरद ऋतु की नदियो को भी कवि नारी का बिम्ब देता है। 'उछलती हुई मछलियाँ करधनी हैं, तट पर बैठी श्वेत खग-पक्ति श्वेत हार हैं और ऊँचे ऊँचे रेत के टीलो मे कवि प्रमदाओ के नितम्ब देखता है।[22] इसी प्रकार अन्य स्थानो पर भी[23] नारी

16 'चित्र मीमासा' पृष्ठ 15
17 रघु 3/2
18 वही 7/26
19 वही 14/54
20 रघु 8/7
21 ऋतु 3/1
22 वही 3/3
23 रघु 11/20,52

को अप्रस्तुत बिम्ब बनाया गया है। एक स्थान पर निद्रा के लिये नवोढा नायिका का उपमान निद्रा को ही सजीव रूप में प्रस्तुत कर देता है। 'कन्याओं में श्रेष्ठ इन्दुमती को प्राप्त करने के अभिलाषी अज को, पुरुष के अभिप्राय को समझने में असमर्थ मुग्धा नवोढ़ा नायिका की भांति निद्रा बहुत देर में नयनाभिमुख हुई।[24]

स्पष्ट है कि कालिदास का नारी-चित्रण बिम्बात्मक और सजीव है।

नायक—कालिदास ने अपने नायकों के व्यक्तित्व को स्पष्ट बिम्बों में प्रस्तुत किया है। उनके नायक देव अथवा उच्चकुलोत्पन्न राजा है। अतः वे शारीरिक एवं आत्मिक गुणों में असाधारण हैं। वे सुगठित विशाल शरीर वाले, अत्यन्त शूरवीर तथा विद्या-विनय-दया-दाक्षिण्य आदि से सम्पन्न हैं। 'रघुवंश' के प्रारम्भ में, सूत्रात्मक शैली में, कवि ने, एक प्रकार से अपने सभी राजाओं का सामान्य बिम्ब दिया है। उनके काव्य में दिलीप, रघु, अज, कुश, दुष्यन्त, पुरुरवा तथा शिव आदि पुरुष पात्रो के स्पष्ट बिम्ब मिलते हैं। कवि दिलीप का परिचय निम्न शब्दों मे कराते हैं—

> व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
> आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥ (रघु. 1·13)

विशाल वक्षस्थल, वृषभ के समान कन्धे, ऊँचाई मे शाल वृक्ष की भांति, लम्बी भुजाओं वाले दिलीप का शरीर अपने (महान्) कर्मों को करने की सामर्थ्य से युक्त था। मानो क्षत्रिय धर्म ही शरीर धारण करके आ गया हो। यह है कालिदास की कल्पना में पुरुषोचित सौन्दर्य का बिम्ब।

रघु के युवावस्था के प्रभावी चित्र में विनय की सुगन्ध भी छिड़क दी गई है—

> युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः।
> वपुःप्रकर्षादजयद्गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत॥ (3·34)

युवावस्था को प्राप्त हुए रघु ने गाड़ी की भांति लम्बी भुजाओं वाले, बलवान कन्धे एवं किवाड़ के समान विस्तृत वक्षस्थल वाले अपने लम्बे चौड़े डीलडोल से यद्यपि पिता को भी जीत लिया था तथापि विनय से छोटे ही दिखाई पड़ते थे। यहां भुजाओं के लिये जुए के उपमान से भुजाओं की दीर्घता व कपाट से वक्षस्थल का विस्तार मूर्त किया गया है। आदर्श बलवान् शरीर के साथ विनम्रता का संयोग कर रघु के बिम्ब को गौरव दिया गया है।

राजकुमार अज की शान कुछ अलग ही ढंग से वर्णित है—

> वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मंचम्।
> शिलाविभंगैर्मृगराजशावस्तुंगं नगोत्संगमिवारुरोह॥
> (रघु. 6·3)

---

24. रघु. 5/64

राजकुमार अज स्वयंवर सभा में विदर्भराज द्वारा निर्दिष्ट मंच पर सुन्दर सीढ़ियों के रास्ते चढ़ते हैं जैसे कोई सिंहशावक चट्टानों का अतिक्रमण करता हुआ पर्वत शिखर पर चढ़ जाता है। अज की युवराज जैसी शान, सौन्दर्य, बल एवं उत्साह को अभिव्यक्त करने के लिये 'मृगराजशाव' का अप्रस्तुत बड़ा सार्थक है।

विवाहोपरान्त, शत्रुराजाओं से निपट कर, विजयोल्लास से भरे, अज जब इन्दुमती के पास जाकर खड़े होते हैं, तो उनका बिम्ब देखने ही बनता है—

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः ।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे ॥
(रघु 7 66)

अज प्रिया के पास पहुँच धनुष के एक सिरे पर हाथ टेक कर खड़े हो जाते हैं। ललाट पर युद्ध मे मिलेश्रम से उत्पन्न बूँदें चमक रही हैं। टोप उतार देने से केश अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। भयभीत प्रिया से इसी लुभावनी मुद्रा में बोले 'आओ, चलो, अपने इन बहादुर आशिकों को जरा देखो, चाहें तो बालक भी इनके शस्त्र छीन सकते हैं। अपने इसी रणकौशल के बल पर ये बेचारे मुझसे तुमको छीनने चले थे।[27]

अज की यह मुद्रा बड़ी शानदार और सचित्र है, इसमें कालिदास का चित्रकला के प्रति कौशल प्रकट होता है।' चापकोटीनिहितैकबाहु', 'शिरस्त्र' व 'ललाट' तीनों बिम्ब स्थिति को सजीव कर देते हैं। इस पद्य में अज को शौर्यमय युग के विजयी योद्धा के रूप में पूर्ण कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस चित्र को कालिदास के सर्वश्रेष्ठ बिम्बों में रखा जा सकता है।

'कुमारसम्भव' में समाधिस्थ शिव का चित्रण विस्तार व बारीकी से किया गया है। शिव वीरासन में बैठे हुए हैं। शरीर का पूर्वार्ध सीधा और स्थिर है। दोनों कन्धे झुके हुए हैं। हाथ उत्तान भाव में, खिले हुए कमल की भाँति, गोद में रखे हुए हैं। जटाजूट सर्पों से बंधा है, दुहरी रुद्राक्षमाला कान में लपेटी हुई है। कमर पर मृग-छाला गाँठ लगाकर बाँध रखी है, तीनों नेत्र निर्निमेष भाव से नासाग्र पर टिकाए शिव स्थित हैं।[26] समाधिलीन शिव का सम्पूर्ण बिम्ब पाठक के कल्पना-चक्षु के समक्ष सजीव हो जाता है। कहना न होगा कि चित्रकार इन वर्णनों को ही शिव के चित्रों के लिये आधार बनाते होंगे। शिवजी की इस निश्चल स्थिति को कवि विभिन्न अप्रस्तुतों से गोचर कराते हैं—

---

25 रघु 7/67

26 कु. 3/45 से 47

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरंगम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ।।
(कु. 3·48)

प्राणायाम द्वारा अन्दर विचरण करने वाली प्राणादि वायु को भी रोक लेने से निश्चल शिव मानों कोई बादल हैं जिसे बरसने की जल्दी नहीं, या कोई शान्त सरोवर है, जहाँ कोई तरंग नहीं, या सर्वथा निर्वात स्थल में रखा कोई निष्कम्प दीपक है। पण्डितों का मत है कि शिव की इस समाधि के वर्णन पर तथागत बुद्ध की समाधि-भावना का प्रभाव है।

पार्वती की परीक्षा हेतु ब्रह्मचारी वेष में उपस्थित शिव का बिम्ब भी बड़ा स्पष्ट व प्रभावशाली है—

अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा ।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ।।
(कु. 5·30)

बड़े नाटकीय ढंग से कवि शिव का अचानक प्रवेश कराते हैं। 'अजिनाषाढधर', 'जटिलः', 'प्रगल्भवाक्', विशेषण ब्रह्मचारी को जैसे पाठक के नेत्रों के सामने खड़ा कर देते हैं। 'शरीरबद्ध प्रथमाश्रम' का उपमान ब्रह्मचारी के तेज को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है। इस सारी कल्पना से पाठक के मन में आगन्तुक के प्रति श्रद्धा और पवित्रता की भावना उत्पन्न होती है।

विरही दुष्यन्त की अवस्था भी कवि ने चित्ररूप में वर्णित की है—

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं
बिभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः ।
चिन्ताजागरणप्रताम्रनयनस्तेजोगुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ।।
(अभि. 6·6)

विधिवत् परिगृहीत धर्मपत्नी के परित्याग का पश्चात्ताप और उसके विरह से जनित दुःख दुष्यन्त को समस्त ऐन्द्रिक सुखों से विरत कर देता है, फलस्वरूप वह समस्त अलंकरण-विधि का त्याग देते है। बाएं हाथ में (आवश्यक राजचिह्न स्वरूप) एक कंगन मात्र पड़ा है। 'अर्पितम्' से यह भाव दर्शाया है कि वह सदा से ही पड़ा हुआ है, प्रसाधन हेतु धारण नहीं किया। विरह-जन्य उष्ण श्वास से भी अधर लाल है, इससे राजा का शोभातिशयित्व ध्वनित है। चिन्तावश (कि न जाने शकुन्तला कहाँ होगी, कैसे होगी ?) जागते रहने से नेत्र भी अरुणाए हुए हैं। अपने विशेष प्रकार के तेज से, खराद पर घिस कर प्रस्तुत की गई महामणि के समान, दुर्बल होने पर भी, दुर्बल दिखाई नहीं देते।

यहाँ 'पालिश हेतु काट-छाँट किये हुए रत्न' का सादृश्य, सर्वथा मौलिक व नवीनता पूर्ण है। इसमें राजा की विरहजन्य कृशता व स्वाभाविक तरुण सौन्दर्य दोनों की स्पष्टता दी गई है। स्वाभावोक्ति व उपमा के आधार पर राजा का एक करुणचित्र प्रस्तुत किया गया है जिसमें चिन्ता, जागरण, तनुता, विषय-विनिवृत्ति एव उनमाद आदि काम दशाओं को ध्वनित करने के लिये स्पष्ट बिम्ब दिये गये हैं। इसी प्रकार का अन्य बिम्ब 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के तृतीय अक में भी देखा जा सकता है।[27]

इस प्रकार कवि ने अपने प्रसिद्ध नायकों के अनेक सश्लिष्ट बिम्ब दिये हैं। स्थान-स्थान पर उन्होंने खण्ड म राजाओं के विशाल आकार को पर्वत से, शक्ति व उत्साह को सिंह, गज या वृषभ से, गम्भीरता को समुद्र से, सुन्दरता को चन्द्र या कमल से व तेज को सूर्य या दीपक से प्रतिबिम्बित किया है। राजा पुरूरवा को विशाल डीलडौल के कारण चलता फिरता पर्वत कहा है— 'गिरिरिव गतिमान पक्षलोपाद्'।[28] पाण्ड्य नरेश की अद्रिराज से तुलना भी बिम्बात्मक है।[29] रघु व अज के युद्ध करते समय उनके योद्धा रूप में अनेक चित्र भी दिये गये हैं।[30]

कालिदास के काव्य में राजाओं व नायकों के अतिरिक्त अन्य मानवीय रूप चित्र भी मिलते हैं कठोर तप करते हुए महर्षि कश्यप का यह चित्र पाठक के मन में अमिट रूप में छप जाता है—

> वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा सदष्टसर्पत्वचा
> कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडित ।
> असव्यापिशकुन्तनीडनिचित बिभ्रज्जटामण्डल ।
> यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्ब स्थित ॥
>
> (अभि 7 11)

ऋषि का शरीर दीमकों द्वारा बनाए गए मिट्टी के टीले से आधा ढका हुआ है। वक्ष पर सर्पों ने केंचुली छोड रखी है। गले म सूखी लताओं के रेशे वलय की भाँति लिपटे हुए हैं। कन्धों तक फैली जटाएँ पक्षियों द्वारा बनाए गए घोंसलों म व्याप्त है। सूखे पेड के ठूठ के समान मुनि सूर्य के बिम्ब की ओर दृष्टि लगाए बैठे हैं।

इस चित्र में छोटे-छोटे स्पष्ट बिम्बों के आधार पर तपस्यानिरत मारीच ऋषि का एक सश्लिष्ट बिम्ब खडा किया गया है। 'स्थाणु' का सागरूपक प्रस्तुत

---

27 3/10
28. वि 3/3
29 रघु 6/60
30 वही सर्ग 4 व 7

बिम्ब को और भी भास्वर बना देता है। इससे मुनि का सुदीर्घ काल से तपोनिरत रहना तो सूचित है ही साथ ही जीव-जन्तुओं के प्रति उनका दयाभाव भी अभिव्यक्त है।

'कुमारसम्भव' में समाधिरत शिव के द्वारपाल नन्दी बने हुए हैं। उसका धर्म है कि देखे कि किसी प्रकार का शोर न हो और शिव की समाधि मे बाहर के उपद्रवों से विघ्न न हो। 'द्वार पर उस नन्दी का चित्र कालिदास ने अत्यन्त सुन्दर और सजीव खींचा है, बिल्कुल गुप्त काल के वास्तु मे कन्धे से दण्ड टिकाये द्वार पर खड़े मानव द्वारपालों की तरह। अन्तर बस इतना है कि जहां वे चुपचाप खड़े रहते हैं नन्दी लतागृह के द्वार पर खड़ा बाये प्रकोष्ठ से सोने की बेंत टिकाये बिना बोले, होठों पर अंगुली रखकर इशारे से गणों को सावधान करता है—खबरदार, चचलता न करना।[31]

> लतागृहद्वारगतोऽथ नन्दी वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः।
> मुखार्पितैकाङ्गुलिसंज्ञयैव मा चापलायेति गणान्व्यनैषीत्॥ (3·14)

'विक्रमोर्वशीयम्' में आकाश में गमन करने वाले नारद का चित्र भी कलात्मक दृष्टि से भव्य एवं सुन्दर है। नारद कल्पवृक्ष की भांति पुरुरवा व उर्वशी की इच्छा पूरी करते हैं। कल्पवृक्ष के सन्दर्भ में तृतीय अध्याय मे इसकी बिम्बात्मकता दिखलाई जा चुकी है।[32]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास ने मानव के रूप और आकृति का वर्णन करने में भाषा की बिम्बात्मक शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया है। मानव सम्बन्धी उपर्युक्त समस्त बिम्ब विधान लक्षित-बिम्ब विधान के अन्तर्गत आता है जहाँ मानव रूप वर्ण्य विषय प्रकृत के अन्तर्गत आया है न कि उपमान के रूप में।

सामाजिक बिम्ब

मानव-बिम्बों मे मानव जीवन में काम आने वाले उपकरण, सामाजिक स्थिति, रीतिरिवाज, संस्कार आदि से सम्बन्धित बिम्ब भी आते हैं। कालिदास के काव्य में समृद्ध समाज का ही चित्रण हुआ है। निम्न वर्ग की दशा, उनका जीवन प्रतिबिम्बित नहीं है। इसके लिये यह तर्क दिया जा सकता है कि कालिदास के कथानक राजसी वर्ग से सम्बन्धित है। किन्तु यह तर्क पूर्ण रूप से उचित नहीं। कारण, 'ऋतुसंहार' में कथानक की विवशता नहीं है। यदि कवि चाहता तो वर्षा में टपकते छप्पर या शिशिर मे ठिठुरती काया का चित्र भी दे सकता था। इसके अतिरिक्त उपमान रूप में निम्न वर्ग के जीवन से बिम्ब दिये जा सकते थे।

---

31. 'कालिदास के सुभाषित' ले. भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 208
32. पृ. 163

किन्तु ऐसा नहीं है। इसके कई दूसरे कारण हो सकते हैं। पहला कालिदास राजसी वातावरण में रहे, साधारण समाज से उनका परिचय नहीं के बराबर रहा। दूसरे 'जिस युग में कालिदास जिये, स्वर्णयुग अपनी चोटी पर था। चीनी यात्री फाहियान ने उसी समय भारत का देशव्यापी भ्रमण किया। जिस शान्ति स्वतन्त्रता, शासन की सादगी और हस्तक्षेपहीनता, धार्मिक सहिष्णुता और सुख का उसने वर्णन किया है, महाकवि कालिदास की रचनाओं का वही समृद्ध, सुरक्षित और सुव्यवस्थित काल था।,

कालिदास ने जो शान्ति और सुखमय जीवन के बिम्ब दिये हैं उनका अन्य कारण कवि का अपना स्वभाव हो सकता है। जिसका स्पष्टीकरण रवीन्द्रनाथ टैगोर की इस उक्ति से सुन्दर ढंग से मिलता है हे अमर कवि कालिदास। क्या तुम्हारे सुख दुख और आशा नैराश्य के द्वन्द्व व हमीं लोगों की तरह नहीं थे ? क्या तुम्हारे समय में राजनीतिक षडयन्त्र और गुप्त आघात प्रतिघातों का चक्र हर समय नहीं चलता रहता था ? क्या तुम्हें कभी हम लोगों की तरह अपमान, अनादर, अविश्वास और अन्याय सहन नहीं करना पड़ा ? क्या तुम यथार्थ जीवन के क्रूर कठोर अभावों से पीड़ित नहीं रहे ? और क्या तुम्हें उस निर्मम पीड़ा के कारण निद्राहीन रातें नहीं बितानी पड़ीं ... ? ऐसा सम्भव नहीं। तुम्हें भी जीवन की कठोर यथार्थता के कटु अनुभव हुए होंगे। किन्तु, यह सब होने पर भी जीवन के मन्थन से उत्पन्न विष का तुमने स्वयं पान किया है और उस मन्थन के फलस्वरूप जो अमृत उठा, उसे तुम समग्र संसार को दान कर गये हो'।

अस्तु, कारण जो भी रहे हों, कालिदास के मानव जीवन सम्बन्धी बिम्बों में समृद्ध समाज के ही चित्र अधिक मिलते हैं।

रीति-रिवाज व संस्कार

कालिदास ने समाज में प्रचलित रीति रिवाज एवं संस्कारों के बिम्ब दिये हैं। इन्हें चाहें तो सांस्कृतिक बिम्ब भी कह सकते हैं। कालिदास ने कुछ रीतिरिवाजों का प्रत्यक्ष विशद चित्र खींचा है और कुछ को अप्रत्यक्ष रूप में तुलना हेतु प्रयोग किया है, स्वयंवर विवाह संस्कार, कन्या की विदा आदि दृश्य कालिदास की कुशल लेखनी से पूरी फिल्म की रील के रूप में चित्रित हुए हैं। 'रघुवंश' के छठे सर्ग में इन्दुमती-स्वयंवर का कवि ने बिम्बात्मक वर्णन किया है। स्वयंवर-प्रथा कवि के लिये विगत की वस्तु थी तथापि कवि ने उस वर्णन में गहरी आत्मीयता व जानकारी का परिचय दिया है, ऐसा लगता है जैसे कोई 'आंखों देखा हाल' सुना रहा हो। स्वयंवर में आए हुए राजाओं की अनेक सहज चेष्टाओं का कवि ने सूक्ष्म

---

33 'कालिदास का भारत'-ले. भ. श. उपाध्याय, पृ. 29-30

संकेत करके अपने असाधारण मनोवैज्ञानिक पैठ का परिचय दिया है। इस वर्णन में एक सहज गहराई है जो मानव-हृदय की दुर्बलताओं को प्रकाशित करती है। प्रायः ऐसी चेष्टाएँ भय और घबराहट के क्षणों को भरने के लिये हुआ करती हैं जिनका स्वाभाविक वर्णन कर कवि ने अनोखी सूझ का परिचय दिया है। स्वयंवर में एक जानकार प्रगल्भ दासी द्वारा राजाओं का परिचय कराया जाता है जो आजकल के 'कमेन्टेटर्स' के लिये वाग्मिता का आदर्श हो सकती है। इन्दुमती वरमाला लेकर सभी राजाओं के बीच में गुजरती हुई अपना अभीष्ट वरण करती है। कालिदास ने यह विवरण कल्पना से दिया है किन्तु पाठकों को प्रत्यक्ष कर दिखाया है। वर्णन इतना स्वाभाविक है कि लगता नहीं कि कालिदास केवल कल्पना के दृश्य सिरजते चले जा रहे हैं। जो भी हो यदि कभी स्वयंवर प्रथा प्रचलित रही होगी तो उसका यही रूप रहा होगा।[35]

इन्दुमती व पार्वती के विवाहोत्सव का भी विशद चित्रण हुआ है। ये दोनों वर्णन प्रायः मिलते जुलते हैं। विवाह अवसर के वस्त्राभूषण, प्रसाधन, समस्त रीति रिवाजों का सूक्ष्म चित्रण कवि ने किया है। बरात के जुलूस व झरोखों से बरात देखती पुरांगनाओं के दृश्य सुन्दर बिम्बसृष्टि करते हैं। कवि ने पाणिग्रहण की रस्म का बड़ा भावपूर्ण बिम्ब दिया है—

आसीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्विन्नांगुलि संववृते कुमारी।

(रघु. 7·22)

तथा, रोमोद्‌गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नांगुलिः पुंगवकेतुरासीत्।

(कु. 7·77)

अग्निप्रदक्षिणा का दृश्य भी देखने योग्य है -

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥

(कु. 7·79)

शिव और पार्वती ने ऊँची-ऊँची लपटों से युक्त अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा की। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो एक साथ जुड़े हुए दिन और रात सुमेरु पर्वत के चारों ओर चक्कर लगा रहे हों।

कन्या विदाई का दृश्य 'शाकुन्तलम्' में पूर्णता प्राप्त करता है। यह कवि की सावधानी ही है कि उसने विदा-दृश्य के लिये राजकुमारियों के बजाय तपस्विकन्या को चुना है। ऐश्वर्य के वातावरण से दूर करुणा अपने सहज विस्तार को प्राप्त करती है। शकुन्तला के जीवन में आने वाली भावी घटनाओं के सन्दर्भ में यह

34. देखें-'कालिदास के सुभाषित' पृष्ठ 171
35. वही पृ. 177

दृश्य करुणतम हो जाता है और श्रेष्ठतम काव्य का गौरव प्राप्त करता है।[36] इस दृश्य मे कवि ने कन्या के विदा-अवसर पर परिवार जनो की शुभाकांक्षा, पिता के सन्देश, शिक्षा आदि का जो वर्णन किया है, वह सार्वभौम और सार्वकालिक है। इस प्रकार के प्रकरणो मे कालिदास ने सुन्दर बिम्बात्मक वर्णन दिये हैं।

कालिदास ने घूँघट-पर्दा आदि को अप्रस्तुत बनाकर सुन्दर सांस्कृतिक बिम्ब दिये हैं। आदि वराह जब पाताल से पृथ्वी का उद्वहन (विवाह व उठाना) करके लाते हैं तो प्रलयकाल का प्रवृद्ध जल, थोड़ी देर के लिये, उस पृथ्वी रूपी वधू का घूँघट बन जाता है।[37] हिमालय की गुफाओ मे रहने वाले किन्नर मिथुन के लिये कवि मेघ को दरवाजे पर लटकने वाला पर्दा बना देता है।[38] कहना न होगा कि इन उपमानो से प्रस्तुत वस्तु एक सुन्दर बिम्ब रूप मे सजीव हो जाती है।

स्त्रियो के केश पकडना घोर अपमानजनक माना जाता है। रघु जब इन्द्र की विशाल ध्वजा को काट गिराते हैं तो इन्द्र देवताओ की लक्ष्मी के केश बलपूर्वक काटे गए मानकर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं।[39]

प्रवासी नायक लौटने पर अपनी प्रेयसी के बहुत दिनो से बंधे केशो को खोलता है और सुलझाता है। राम के वन से लौटने पर अयोध्यापुरी के प्रासादो से निकलने वाली, वायु मे बिखरी हुई, काले अगुरु की धूम-पंक्ति ऐसी दिखाई पडती है मानो वह उस नारी की वेणी है जिसे वन से लौटकर रामचन्द्रजी ने खोल दिया है—

वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन मुक्ता स्वयं वेणिरिवाबभासे।'[40]

बिम्ब की भाव सम्पत्ति से नगर के वर्णन मे अपूर्व लालित्य आ गया है। स्वागत के लिये तोरण-वन्दनवार बांधना भारतीय संस्कृति का अंग है। राम-लक्ष्मण जब ऋषि विश्वामित्र के साथ नगर से प्रस्थान करते है, तो कवि मार्ग के दोनो ओर खड़े नागरिको की दृष्टियो के तोरण सजा देता है।[41] राजा दिलीप की वनयात्रा मे ऊपर उडती सारस पंक्ति स्वागतार्थ बिना खम्भे की वन्दनवार बन जाती है।[42]

---

36 जैसा कि प्रसिद्ध है -'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'। आदि
37 रघु 13/8
38 कु 1/14
39 रघु 3/56
40 वही 14 12
41 वही 11/5
42 वही 1/41

ये सांस्कृतिक कल्पनाएँ प्रस्तुत वर्णन को श्रेष्ठ काव्य की श्रेणी में खड़ा कर देती है तथा प्राचीन रीति-रिवाजों के चित्र भी उपस्थित करती हैं।

उपकरण

मानव-जीवन के उपकरणों में कवि ने दीपक का बिम्ब सबसे अधिक दिया है जो रूप और गुणसाम्य पर आधारित है। यह तेज, वैभव, ज्योति और आशा का द्योतक बन गया है। उपकरणो के बिम्ब प्रायः अप्रस्तुत रूप में ही आए है अतः उपलक्षित बिम्ब-विधान की कोटि में हीं रखे जा सकते है। होनहार पुत्र के लिये स्थान-स्थान पर कुल-दीप या कुल-दीपक का रूपक प्रयुक्त हुआ है। सर्वदन को दुष्यन्त के कुल में आशा का प्रकाश करने वाला दीपक कहा गया है—'सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति।[43] राम का तेज एक प्रकृष्ट दीप के समान है—

रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन्॥ (रघु. 10'68)

रक्षागृह (प्रसूतिगृह) में रखे दीपक रघुवश के दीपक राम के अलौकिक तेज से फीके पड़ जाते हैं मानों उनके बीच एक बडा सा दीपक जला दिया गया हो।

बालक अज का अपने पिता के समान ही तेज था, वही पराक्रम था, वही स्वाभाविक गौरव था जैसे एक दीपक से जलाया गया दूसरा दीपक पहले से भिन्न नहीं होता। 'दीप से दीप जले' कहावत के आधार पर अज का रघु के समान तेज गुण स्पष्ट है। 'प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्'।[44] समाधि मे बैठे शिव की निश्चलता 'निष्कम्पमिव प्रदीपम्' के बिम्ब से चाक्षुष की गई है।[45]

साधर्म्य के आधार पर भी दीपक को बिम्ब बनाया गया है। दीपक अंधेरे मे मार्ग दिखाता है। अग्निमित्र को अपना सहायक मित्र दीपक के समान मार्गदर्शक लगता है—

'दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि'।[46]

जब सचक्षु को भी अन्धकार पूर्ण परिस्थिति में कुछ न सूझता हो तो मित्र ही दीपक की भांति मार्ग दिखाता है। दृष्टान्त के आधार पर यहां सुन्दर बिम्ब-योजना की गई है।

कालिदास ने लिंगसाम्य के आधार पर पुरुष के लिये 'दीपक' व स्त्री के लिये दीपशिखा' का बिम्ब चुना है तथा दोनो के परस्पर सम्बन्ध को अभिव्यक्त

---

43. अभि. 6/25 गद्य
44. रघु. 5/37
45. कु. 3/48
46. माल. 1/9

करता हुआ दीपक व दीपशिखा का सम्मिलित बिम्ब प्रयोग किया है। पर्वतराज हिमालय पुत्री के जन्म से उसी प्रकार पवित्र व शोभायमान हो जाते हैं जैसे 'अतीव प्रकाशयुक्त शिखा से दीपक'।[47]

प्राणान्त के लिये दीप-बुझना एक प्रतीक है। कालिदास ने इस प्रतीक का मौलिक ढंग से प्रयोग कर सुन्दर बिम्ब-योजना की है एवं भावों को प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषित किया है। यथा—

'गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहत ।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम ॥ (कु 4 30)

रति वसन्त से कहती है—'तुम्हारा वह मित्र आँधी से दीपक की भाँति सदा के लिये बुझ गया। पीछे से धुँआ उगलती बत्ती की भाँति मैं रह गई। अन्दर जलती हुई शोकाग्नि के धुँए से आवृत और काली (विवर्ण) हुई दीप की वर्तिका।' पाठक के हृदय में करुण भावों को उत्तेजित करने के लिये कवि का यह बिम्ब बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

ऊपर आँधी से बुझते दीपक का चित्र है। समस्त तैलोपभोग के बाद प्रात काल स्वत निर्वाणासन्न दीपक के दृश्य से दशरथ की अंतिम अवस्था का रूपायन किया गया है—

निर्विष्टविषयस्नेह स दशान्तनुपेयिवान ।
आसीदासन्ननिर्वाण प्रदीपार्चिरिवोषसि ॥ (रघु 12 1)

समस्त विषय-स्नेह भोगने के बाद धीरे-धीरे अन्तिम अवस्था को प्राप्त दशरथ ऐसे लगते हैं जैसे प्रात समस्त स्नेह (तेल) के भोग के बाद आसन्ननिर्वाण दीपशिखा। तेल खत्म होने पर दीपक धीरे-धीरे प्रकाश को कम करता हुआ बुझता है इससे वृद्ध *दशरथ की अन्तिम दशा सुन्दर ढंग से नेत्रगम्य की गई है।* उल्लेखनीय है कि कामदेव असमय में आँधी से बुझे दीपक थे अत उनकी दशा भिन्न थी—धूम उगलती हुई (धूमित)।

इन्दुमती के निधनावसर पर भी कवि ने दीपक से ही बिम्ब लिया है। प्राणशून्य शरीर से गिरती हुई इन्दुमती ने पति को भी गिरा दिया। दीपक की लौ तेल-बिन्दु के साथ ही पृथ्वी पर गिरती है—

ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥ (रघु 8 38)

और दीपशिखा का निम्न बिम्ब तो संस्कृत साहित्य में बेजोड़ है—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपाल ॥ (रघु 6 67)

---

47 कु 1/28

इन्दुमती के लिये 'दीपशिखा' का यह विम्ब सुन्दरतम कल्पना है। स्वयंवर मण्डप में इन्दुमती स्वयं संचरण कर रही है। प्रस्तुत के लिये प्रयुक्त यह विशेषण, 'दीपशिखा' उपमान को और भी मनोहर रूप प्रदान करता है। 'मशाल' स्वयं नहीं चलती, अपितु उसे कोई लेकर चलता है। इस चेतनत्वारोप ने उपमान को सजीव विम्ब के रूप में हमारे सामने ला खड़ा किया है। रात्रि के अन्धकार में मशाल के सामने जो भवन पड़ते हैं वे थोड़ी देर के लिये चमकते हैं तथा मशाल के गुजरते ही एक एक करके पुनः अन्धकार में डूबते जाते हैं। इन्दुमती भी जिस राजा के सामने जाकर खड़ी होती, वही वरण की आशा से उल्लसित हो उठता, किन्तु जैसे ही इन्दुमती आगे बढ़ती उसका चेहरा निराशा से विवर्ण हो जाता। 'दीपशिखा' का विम्ब इन्दुमती के दुबले-पतले वस्त्राभूषणों से चमकते व्यक्तित्व को आकार देता है 'नरेन्द्र मार्गाट्ट' का विम्ब राजाओं के लम्बे-चौड़े भव्य आकार को रूपायित करता है। इस प्रकार थोड़े से शब्दों में यहाँ एक सुन्दर संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है।

उपकरणों में दर्पण को भी कालिदास ने विम्ब-विधान का साधन बनाया है। चमक, स्वच्छता व निर्मलता का बोध दर्पण के सादृश्य से किया गया है। मन या हृदय के लिये भी दर्पण का उपमान प्रयुक्त हुआ है। कैलास पर्वत को कवि ने उसकी श्वेतता एवं पारदर्शिता के कारण देवांगनाओं के दर्पण (त्रिदशवनितादर्पण) से रूपायित किया है।[48]

शत्रुओं से घिर जाने पर इन्दुमती के मुख पर आए चिन्ता के भाव तथा शत्रुओं के नष्ट हो जाने पर आई निश्चितता को कवि ने बड़ी सूक्ष्मता से दर्पण के विम्ब से गोचर कराया है—

> तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमावभासे।
> निःश्वासबाष्पागमात्प्रपन्नः प्रसादमात्मीयवात्मदर्शः॥
>
> (रघु. 7.68)

जैसे दर्पण श्वास की भाप से धुंधला हो जाता है, इन्दुमती के मुख पर चिन्ता घिर आई। जैसे भाप के नष्ट होने पर दर्पण अपनी सहज प्रसादता को प्राप्त कर लेता है वैसे ही इन्दुमती का मुख विषाद से मुक्त होने पर अपनी स्वाभाविक उज्ज्वलता को प्राप्त कर सुशोभित होने लगा।

दुष्यन्त के हृदय-रूपी दर्पण पर भी अस्थायी मलिनता आती है—

> शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे
> भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव।

---

48. पू.मेघ 61

छायानमूर्च्छति मलोपहत प्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥ (अभि 7 32)

शापवश स्मृति के अवरुद्ध हो जाने से दुष्यन्त शकुंतला का तिरस्कार कर देते हैं। शाप-जन्य तम के हट जाने पर शकुंतला की ही प्रभुता पति पर रहेगी। क्योंकि धूलि आदि से नष्ट हुई स्वच्छता वाले दर्पण पर प्रतिबिम्ब (छाया) नहीं पड़ता। दर्पण के स्वच्छ होने ही प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है। दर्पण के उपमान से यहाँ सुन्दर चित्र निर्माण किया गया है। दर्पण और छाया, दुष्यंत का हृदय और शकुंतला, इनमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव सम्बन्ध है। अमूर्त भाव एवं मूर्त उपमान से स्पष्टता को प्राप्त हो गया है।

इसी प्रकार कवि ने बिना साँकल खोले, अन्दर प्रविष्ट स्वारूपधारी अयोध्या के लिये दर्पण में प्रविष्ट छाया का बिम्ब दिया है।[49]

संगीत-उपकरण वीणा व मृदंग से भी कालिदास ने उपमान का काम लिया है। अज, मृत इन्दुमती के शरीर को उठाकर उसी प्रकार गोद में रख लेते हैं जैसे तार आदि ठीक करने के लिये वीणा रखी जाती है।[50] विगत-चेतना इन्दुमती के लिये टूटे तार वाली वीणा का बिम्ब प्रभावोत्पादक है और तार मिलाने के लिये रखी वीणा की गोद में स्थिति भी पृथक् होती है जो इन्दुमती की स्थिति को चाक्षुष करती है। ध्यातव्य है कि वीणा श्रुति बिम्ब का उपकरण हो सकती है किन्तु यहाँ उसका चाक्षुष रूप ही बिम्ब का अभिप्रेत है।

वस्त्राभूषणों को भी कवि ने बिम्ब बनाया है। 'विक्रमोर्वशीय' में भूर्जपत्र को जीर्णवस्त्र से स्थापित किया है।[51] उच्च कुलोत्पन्न मालविका से दासी का काम लेना कवि को ऐसा लगता है जैसे पवित्र रेशमी वस्त्र से शरीर पोंछने का काम लिया जाता रहा हो।[52] स्त्रियों के वक्ष पर बहने वाली अश्रुधारा को कवि ने 'मुक्तावली-विरचना'[53] और 'सूत्रेण विनैव हारा'[54] से गोचर कराया है। आतपत्र (छतरी) के साधर्म्य से भी एक स्थान पर कवि अपनी अनुभूति को स्पष्ट करता है—

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालन वृत्तिरेनम्।

---

49 रघु 16/6 तथा 14/37 भी देखें।
50 रघु 8/41
51 वि 2/18
52 माल 5/12
53 वि 5/15
54 रघु 6/28

नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ (अभि. 5·6)

कालिदास राज्यप्राप्ति के सुख को सुखभास मानते हैं। राज्यप्राप्ति से होने वाला गौरव केवल अप्राप्ति की प्राप्ति की उत्कण्ठा मात्र को शान्त करता है प्रजापालन की वृत्ति बड़ी थकाने वाली है। राज्य को धारण करना, छाते को लेकर चलने के समान है। छाते को कभी हाथ में बन्द लेकर चलना पड़ता है, कभी खुला। कभी कन्धे पर टिकाना पड़ता है। धूप और वर्षा से वह आराम अवश्य देता है किन्तु इस आराम से जितनी-सी थकान की बचत होती है उतनी थकान उसको ढोने से भी हो ही जाती है। इस साधारण अनुभव का कुशलता के साथ सादृश्य हेतु उपयोग किया है। स्त्रियों के कटों के प्रहार से धाराएँ छोड़ते मेघ में कवि ने फव्वारे (यन्त्रधारा गृहत्वम्) का रूप देखा है।

कवि ने 'तन्दूर' को भी उपमान बनाया है। 'माल.' में विदूषक कहता है कि 'दृढं खलु विपणिकन्दुरिवोदराभ्यन्तरं दह्यते' ।[55] विदूषक का पेट (भूख के मारे) ऐसा जल रहा है जैसे कि बाजार में ढाबे का तन्दूर। यह उपमान विदूषक के स्वभाव का तो स्पष्ट करता ही है इस बात का भी प्रमाण है कि कालिदास ने विभिन्न क्षेत्रों से उपमानों का चयन किया है। चुम्बक की आकर्षण-शक्ति का भी कवि ने साम्य दिया है। राजा अतिथि अपने शत्रुओं से उनकी तीनों शक्तियों को इस प्रकार खींच लेते हैं जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेता है।[56] मनुष्य के भाग्य की दशा कभी एक जैसी नहीं रहती सुखःदुःख का यह क्रम कवि ने 'चक्रनेमि' के ऊपर नीचे जाने के क्रम से प्रभावशाली ढंग से मूर्त किया है।[57]

खाद्यपदार्थ—कालिदास ने खाद्य-पदार्थों के बिम्ब अत्यल्प दिये हैं। विदूषक की हास्योक्तियों में ही खाद्य पदार्थों से अन्योक्ति द्वारा सादृश्य बताया गया है। विदूषक को पूर्व दिशा में उदित चन्द्रमा खाँड का लड्डू प्रतीत होता है—'एष खण्डमोदकसश्रीकः उदितो राजा द्विजातीनाम् ।'[58] यह सादृश्य बाहरी आकार व रंग साम्य पर आधारित है। अग्निमित्र का विदूषक सखा, प्रेम के नशे में सुध-बुध भूले अपने मित्र के लिये अचानक उपस्थित हुई मालविका को मिश्री के समान आनन्द व शीतलता देने वाली मानता है।[59] यह बिम्ब धर्मसाम्य पर आधारित

---

55. माल. 2/13 गद्य
56. रघु. 17/63
57. उ. मेघ-49
58. वि. 3/6 गद्य
59. माल. 3/5 गद्य

है। 'अभि' में कोई अदृश्य प्रेत विदूषक को पकड़ ले जाता है। जब वह उसकी गर्दन मरोड़ता है तो विदूषक को लगता है कि उसके ईख की भांति टकड़े टुकड़े किये जा रहे हैं। 'एष मां कोऽपि प्रत्यवनत-शिरोधरमिक्षुमिव त्रिभंगं करोति।' 60 इस उपमा में क्रियासाम्य है। खाद्य सम्बन्धी ये बिम्ब काव्य कला की दृष्टि से चाहे निम्न कोटि के माने जावें, विदूषक के चरित्र का स्पष्ट खाका प्रस्तुत करते हैं।

अस्त्र-शस्त्र

कालिदास ने बड़ी संख्या में शस्त्रादि सम्बन्धी बिम्बों का प्रयोग किया है। इन्द्र-रघु युद्ध के अवसर पर 'बाणों' का सुंदर वर्णन हुआ है। इन्द्र रघु के वक्ष पर अमोघ बाण छोड़ते हैं। उन बाणों ने जो भयंकर असुरों के रक्त से सुपरिचित था, रघु के विशाल वक्षस्थल में प्रवेश करके, पहले कभी न चखे गये मनुष्य के रक्त का कौतूहल के साथ पान किया।' यहाँ बाण पर चेतन क्रिया 'पपौ'[61] का आरोप कर उसे सजीव बिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मर्मच्छेदी वचनों के लिये भी बाणों का बिम्ब प्रयुक्त किया गया है। रति के मर्मस्पर्शी, शोकाकुल विलाप के शब्द काम सखा वसन्त के हृदय में विषदिग्ध बाण के समान बिंध जाते हैं।

अथ तैः परिदेविताक्षरैर्हृदयं दिग्धशरैरिवाहतः।[62]

नारी की दृष्टि की समता भी बाणों से की गई है। कालिदास ने सुंदर नवयुवति स्त्री को कामदेव का बाण कहा है—

अव्याजसुंदरीं तां विज्ञानेन ललितेन योजयता।
परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदिग्धः॥ (मा 12 |3)

यह बिम्ब प्रभावसाम्य पर आधारित है। स्वाभाविक सुंदरी मालविका कामदेव का बाण है जो मन को हर लेती है। उसे संगीत-नृत्य की निपुणता देकर विधाता ने मानो बाण को विष में बुझा दिया। शस्त्रास्त्रों को विष में बुझाकर मारक बनाने की प्रथा प्राचीन है। इसी प्रकार 'सविष शल्य' का बिम्ब 'अभिज्ञान' में आता है। पति से परित्यक्त होते समय शकुन्तला जो अत्यन्त विवश, कातर, अश्रुपूर्ण दृष्टि दुष्यन्त पर डालती है, वह याद आने पर दुष्यन्त को विषयुक्त बाण की भांति सदा जलाती रहती है।[63] धनुष, उसकी डोरी तथा टंकार के बिम्ब भी कवि ने दिये हैं। यथा—

भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य। (अभि 5 23)

---

60 अभि 6/26 गद्य
61 रघु 3/54 'पपावनास्वादित पूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम्,
62 कु 4/25
63 अभि 6/9

'दुष्यन्त द्वारा पूर्वघटित प्रणय के अस्वीकार करने पर शकुन्तला ने क्रोध से लाल नेत्र करके जो दुष्यन्त पर अपनी कुटिल भौंहें चढ़ाई हैं तो लगता है उसने अत्यन्त क्रुद्ध हो कामदेव के धनुष का तोड़ डाला है।' भ्रू की उपमा धनुष् से दी जाती है। क्रोध में सिकोड़ी गई भौंहें टूटे हुए धनुष् सी जान पड़ती हैं। इस प्रकार कवि ने धनुष् के बिम्ब से भ्रूभंग को दृष्टिगम्य किया है। यहाँ धनुष् की कल्पना के दो भाव हैं– पहला शकुन्तला के भ्रूसौन्दर्य की अतिशयिता एवं सकल-लोक-हृदयोन्मादकता, क्योंकि वह कामदेव के धनुष् को भी परास्त कर देती है। दूसरा भाव है कि शकुन्तला का, जैसे राजा के प्रति, वैसे ही कामदेव पर भी क्रोध। क्योंकि कामदेव ने ही शकुन्तला को दुष्यन्त के प्रति अनुरक्त किया अतः उसने इस विपत्ति के मूल कारण काम के धनुष् को ही टुकड़े-टुकड़े कर डाला है। यह बिम्ब अत्यन्त भावपूर्ण, मार्मिक एवं गम्भीर है।

अन्यत्र धनुष् की टंकार का मानवीकरण करके सुन्दर बिम्ब विधान किया है—

का कथा बाणसंधाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ॥ (अभि. 3·1)

दुष्यन्त को धनुष् चढ़ाने की तो आवश्यकता ही नहीं होती, वह अपनी प्रत्यंचा की टंकार से जो कि धनुष् की हुंकार जैसी ज्ञात होती है, दूर से ही राक्षसादि विघ्नों को दूर कर देता है। धनुष अचेतन पदार्थ है, वह 'हुंकार' नहीं सकता। प्रत्यंचा की टंकार को धनुष् की 'हुंकार' बताकर उसको सजीव कर दिया गया है और पाठकों के नेत्रों में धनुष् और उसकी आवाज का चित्र सा खिंच जाता है।

शृंगार के प्रसंग में कवि पार्वती की मौलसिरी की माला से निर्मित करधनी को, कामदेव के द्वारा, उचित स्थान पर धरोहर की भाँति रखी धनुष् की प्रत्यंचा से बिम्बायित करते हैं—

न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण
मौर्वीं द्वितीयामिव कार्मुकस्य ॥ (कु. 3·55)

आकार व शृंगारिक प्रभाव के कारण मौर्वी एवं करधनी का चित्र तुलनीय है। मौर्वी को धरोहर के रूप में उचित स्थान में रखने की कल्पना सर्वथा मौलिक व मनोहर है।

कालिदास ने तलवार का बिम्ब भी प्रयुक्त किया है। सन्ध्या समय पश्चिम दिशा में अस्त होते प्रकाश की लाल रेखा सी दिखाई पड़ती है। मानो सूर्य ने रंगी तलवार युद्ध भूमि में तिरछी पड़ी हो।[64]

---

64. कु. 8/54

इन बिम्बो से कालिदास के समय मे प्रचलित मन्त्रो की जानकारी मिलती है।

मनोरंजन—

कालिदास के बिम्बो मे कुछ मनोरंजन से भी सम्बन्धित है। 'अभिज्ञान' में विदूषक के कथन मे आखेट जीवन एक स्पष्ट झाकी मिल जाती है। दशरथ के आखेट के सुन्दर बिम्ब 'रघुवंश' मे मिलते हैं। सूअरो के शिकार का वर्णन करते हुए कवि कहते है। राजा ने मोथे की जडो के ग्रासो से व्याप्त, दूर तक गीले पदचिह्नो की कतारो से स्पष्ट, तत्काल ही गड्ढो से निकलकर भागे हुए सूअरो के झुंडो के मार्ग का अनुसरण किया। घोडे पर शरीर को थोडा झुकाकर प्रहार करते हुए उन राजा को, सूअरो ने अपने गर्दन के बालो को खडा करके मारना चाहा किन्तु उसने पहले ही राजा ने उनकि जाघों म बाण मार कर उन्हे पेडो से चिपका दिया। राजा ने इतनी फुर्ती की कि सूअर उनको बाण मारना लक्ष्य न कर पाए —

न वाहनादवनतोत्तरकायमीषदविध्यदुदपूतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः।
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा वृक्षेषु विद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु
(रघु 9 60)

यहा 'अवनतोत्तरकायम' (घोडा शरीर झुकाकर) 'उदपूतसटा' (गर्दन के बाल खडा करके) विशेषण पूरे दृश्य को जीवन्त करने में अत्यन्त सहायक है। इसी प्रकार व्याघ्र का बिम्बात्मक चित्र है। जैसे ही व्याघ्र गुफा से बाहर निकल कर आते हैं दशरथ उत्तम शिक्षा-प्राप्त फुर्तीले हाथो से उनका मुख बाणो से भर देते है। उस समय वे व्याघ्र आधी से उजडे पुष्पित सर्ज वृक्ष जैसे लगते है और उनके मुख बाणो से भरे होने के कारण 'तरकस' बन जाते है।[65]

आखेट के अतिरिक्त दूसरा प्रमुख मनोरंजन जलक्रीडा है जिसका बिम्बात्मक वर्णन 'रघुवंश' के सोलहवें सर्ग मे मिलता है। कुश अपनी रानियो के साथ जलक्रीडा करते हैं। इस क्रीडा मे सरयूनदी के सौन्दर्य, स्त्रियो के सौन्दर्य व हावभाव तथा कुश की शोभा का सुन्दर चित्रण हुआ है। क्रीडा का कोई भी प्रसंग कवि से छूटा नही है।[66] गजो की लडाई के प्रदर्शन मे बीच मे प्रयुक्त होने वाली वेदी का अप्रस्तुत बिम्ब भी कालिदास ने दिया है।[67] यह एक प्राचीन मनोरंजन है।

विद्या, कला व व्यवसाय

65 रघु 9/63
66 रघु 16/54 से 71 तक
67 रघु 12/93

कालिदास ने विद्या को कई स्थानों पर उपमान बनाकर विम्ब-योजना की है किन्तु मूर्तता के अभाव मे यह विम्ब प्रभावशाली नही हो सके है । रानी सुमित्रा, लक्ष्मण व शत्रुघ्न को उसी प्रकार जन्म देती है जैसे विद्या ज्ञान और विनय को उसी प्रकार जन्म देती है जैसे विद्या ज्ञान और विनय को उत्पन्न करती है ।[68] स्वतः दुष्यन्त को प्राप्त शकुन्तला, ऋषि कण्व को श्रेष्ठ शिष्य को दी गई विद्या सी जान पड़ती है जिसका उन्हें पछतावा नही है । कवि ने वसन्त को शिल्पी का विम्ब दिया है जिसने आम के सुन्दर पुष्प-वाण तैयार करके उन पर भ्रमरों के वहाने कामदेव का नाम लिख दिया है जैसे चतुर कारीगर नई वस्तु बनाकर अधिकारी का नाम लिख देता है ।[70] भ्रमरो के लिये काले नामाक्षरो की कल्पना नितान्त मौलिक है। विदूषक की उक्तियों में वैद्य की अन्योक्ति का दो वार प्रयोग किया है। अग्निमित्र जब विदूषक से ही मालविका के मिलन का उपाय करने को कहता है तो विदूपक उसे निर्धन रोगी का उपमान देता है जो वैद्य से ही औषधि मांगता है ।[71] उर्वशी के प्रति प्रेम को जानकर भी रानी जब पुरूरवा पर बिना क्रोध किये चली जाती है तो विदूषक वैद्य के रूपक मे बात करता है 'आपको असाध्य रोगी समझ वैद्य शीघ्र ही छोड़कर चल दिया' ।[72] किन्तु रानी की विवशता का धीवर के विम्ब से अच्छा मजाक बनाता है -

'छिन्नहस्तो मतस्ये पलायिते निर्विण्णो धीवरो भजती धर्मो मे भविष्यतीत ।[73] विधूषक की इन उक्तियो में सादृश्य तो है किन्तु भाव-सम्पत्ति का और रागात्मकता का अभाव होने से ये श्रेष्ठ विम्ब नही कहे जा सकते । इन विम्बो से तत्कलीन व्यवसायों का पता चलता चलता है ।

अन्य-कालिदास ने यज्ञ सम्बन्धित विम्ब भी दिये है । कवि, आहुति, यूपस्तम्भ आदि को अप्रस्तुत बनाकर प्रस्तुत भावो को मूर्त किया है । राम की सहज नम्रता शिक्षा से उसी प्रकार बढ़ जाती है जैसे हवि से अग्नि का तेज और बढ़ जाता है' ।[74] ऋषि के असावधान होने पर भी शकुन्तला का दुष्यन्त जैसे योग्य पति को प्राप्त कर लेना वैसा ही है जैसे यजमान की दृष्टि धूमाकुलित होने पर भी आहुति

68. वही 10/71
69. अभि पृ 296
70. कु 3/27
71. माल :/ गद्य-41
72. वि. 3/14-9
73. वि. 13/13-24
74. रघु. 10/79

अग्नि मे ही गिरे।[75] पार्वती की पवित्रता के लिय यूप स्तम्भ की पवित्रता का विम्ब [76] भी कलात्मक व मौलिक है।

मानव के विभिन्न रूपो से भी कवि बिम्ब योजना करता है। मन्द प्रतिभा होते हुए भी कवियश प्रार्थी होने की निजी दृष्टा को कवि बौने की चेष्टा मे बिम्बायित करता है जो हाथ लम्बे कर अलम्य ऊँचे फल तोडना चाहता है।[77] पारसीकों को जीतने के लिये स्थल मार्ग म प्रयाण करने वाले रघु को कविइन्द्रियो को जीतन के लिए ज्ञान मार्ग से चलने वाले योगी का बिम्ब देत हैं।[78] रावण से पीडित देवताओ के लिये धूप मे सन्तप्त पथिको का उपमान बहा सटीक है जो छायावाले वृक्ष की तरह भगवान विष्णु के पास पहुँचते हैं। [79] मेघदूत की निम्न पक्तियो मे मेघ को पथिक का बिम्ब दिया गया है जो स्थान स्थान पर आराम करता हुआ सर-सरोवरो पर पानी पीता हुआ आगे बढता है -

> खिन्न खिन्न शिखरिषु पद न्यस्य गन्तासि यत्र।
> क्षीण क्षीण परिलघु पय स्रोतसा चोपभुज्य॥ (पू म 13)

दुष्यन्त के अनाचर मे क्रुद्ध हो शार्ङ्गरव ऋषि उसे दस्यु (चोर) का उपमान देते हैं।[80]

चोर के बिम्ब से शकुन्तला के साथ दुष्यन्त का गुप्त प्रेम एव ऋषि की उदारता भली भाँति व्यजित हो जाती है।

राजनीतिक बिम्ब

राजा, राजधर्म, सेना, राजधानी तथा अन्य राजसी उपकरणो एव राजनीति के उपाय आदि से सम्बन्धित बिम्ब कालिदास के काव्य म अधिक मात्रा मे मिलते हैं। अत उनको अलग वर्ग मे रखकर अध्ययन किया गया है।

राजा व राजधर्म—कालिदास के मन म राजा की जो 'इमेज' है उसे उन्होने रघुवश के प्रारम्भ मे विशदता से स्पष्ट कर दिया है। कालिदास न राजा का जो बिम्ब दिया है उसम कुलीनता, विनम्रता, सत्यवादिता, धार्मिकता, त्याग, प्रजा और शास्त्रनिष्ठा, वशित्व उत्साह और परम पराक्रम के गुण समाविष्ट हैं।[81] वह प्रजा के लिए पिता की भाँति है, यदि वह कर लेता है तो 'सूर्य के रस ग्रहण की भाँति प्रजा के हजार कामो के लिए ही ग्रहण करता है [82] उसका लोक नियत्रण

---

75 अभि पृष्ठ 296
76 कु 5/73
77 रघु 1/3
78 वही 4/60
79 वही 10/5
80 अभि 5/20
81 रघु 1 5 से 8
82 वही 18 व 24

का कार्य 'भानु', 'गन्धवह' एवं 'शेषनाग' की भाँति विश्राम-रहित है ।[83]

कवि ने आदर्श राजनीति मध्यम-मार्गीय बतलाई है । उसे 'न खरो न च भूयसामृदु'[84] तथा 'नातिशीतोष्णा'[85] आदि शब्दों से व्यक्त किया है । मध्यम राजनीति के लिये कवि ने सुन्दर बिम्ब दिया है—

सदय बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं वज्रेदिति ।
अचिरोपनता स मेदिनी नवपाणिग्रहणां वधूमिव ॥ (रघु. 8·7)

महापराक्रमी अज नई पाई पृथ्वी को नववधू की भाँति दया से भोगते हैं कि कहीं वह घबरा न जाये । दक्षिण पवन की भाँति वे राजाओं को बिना उखाड़े वृक्षों की भाँति केवल झुका भर देते हैं ।[86] इस प्रकार 'रघुवंश' एवं 'अभिज्ञान.' में राजा व राज-धर्म से सम्बन्धित सुन्दर बिम्ब मिलते हैं ।

सेना—कालिदास ने रघुवंश' में अनेक स्थलों पर सेना के अभियान का बिम्बात्मक वर्णन किया है । रघु के दिग्विजय प्रसंग में सेना पूरे देश का चक्कर लगाती है । इस अभियान में लाघे देश, नदियों, पर्वतों, समुद्र और तटवर्ती विविध जातियों का कवि ने अभिराम वर्णन किया है । छोटे-छोटे चुभते श्लोकों में असामान्य काव्यकौशल से वह नितान्त संक्षेप में प्रयाण का चित्र खींचते गये हैं । कुश जब कुशावती से अयोध्या लौटते हैं तब की सेना का वर्णन कवि की कलात्मकता की पराकाष्ठा है ।

कुश सेना को लेकर ठाट-बाट से चले जैसे वायु मेघ समूह के साथ चली हो 'वायुरिवाभ्रवृन्दैः ससैन्यैः' । यहीं सेना को जंगमराजधानी' का बिम्ब भी दिया गया है । 'पताकाओं की पंक्तियां जिसमें उपवन हैं, बड़े-बड़े हाथी क्रीड़ापर्वत हैं, रथ मनोहर भवन हैं, ऐसी सेना कुश की चलती फिरती राजधानी हुई । यह बिम्ब बड़ा मौलिक और प्रभावशाली है । सेना की विशालता और उमड़ते हुए भाव को कवि समुद्र के ज्वार से बिम्बित करते हैं । सेना से उठी धूलि के लिये कवि सुन्दर कल्पना करते हैं—'मानो सेना-भार को न सह सकने के कारण पृथ्वी धूलि के व्याज से आकाश को जा रही हो ।' इस कल्पना ने धूलि के चित्र को सर्वथा साकार कर दिया है । घोड़ों की धूलि से पहले जहां कीचड़ थी पट कर धूल हो जाती है और जहां धूल थी सेना के हाथियों के मदजल से कीचड़ हो जाती है ।[87] कुश की सेना की विशालता के लिये कवि ने सुन्दर बिम्ब-विधान किया है—

---

83. अभि. 5/4
84. रघु. 8/9
85. वही 4/8
86. वही 8/9
87. रघ. क्रमशः 16/25, 26, 27, 28, 30

उद्यच्छमाना गमनाय पश्चात्पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती ।
सा यत्र सेना ददृशे नृपस्य तत्रैव साभग्र्यमतिं चकार ॥
(रघु 16 29)

'नगरी के पिछले भाग में चलने के लिये तैयार, आगे ठहरी हुई तथा मार्ग मे चलती हुई सेना को जहाँ जहाँ लोगों ने अंश में देखा वहां यही समझा कि यही सम्पूर्ण सेना है।' यह सम्पूर्ण प्रसंग बिम्बविधान की दृष्टि से अत्यन्त महत्व पूर्ण है।

राजसी वस्तुओं के अप्रस्तुत बिम्ब भी अति सुन्दर बन पड़े हैं। राज्याभिषेक का अप्रस्तुत बिम्ब द्रष्टव्य है—

द्विषां विषह्य काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम् ।
सन्मंगलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम ॥ (रघु 4 41)

रघु ने महेन्द्र पर्वत पर शत्रुओं के नाराच नामक लोहे के बाणों की वर्षा को सहन कर विजय-श्री प्राप्त की जैसे कोई राजा शास्त्रीय विधि से मंगल अभिषेक करके राज्य-लक्ष्मी प्राप्त करता है। 'मंगलस्नान' के बिम्ब से 'नाराचदुर्दिनम्' का दृश्य तो स्पष्ट होता ही है, रघु की सहनशीलता भी व्यंजित होती है।

'विजय-स्तम्भ' की बिम्ब-कल्पना भी कालिदास की काव्य कला की परिचायक है। केरल प्रदेश में त्रिकूट पर्वत पर रघु के मतवाले हाथी अपने दन्तक्षत बना देते हैं। मानो वही रघु का ऊँचा विजय-स्तम्भ स्थापित किया गया हो जिस पर हाथियों के दांतों से रघु का पराक्रम उत्कीर्ण कर दिया गया है।[88]

राजसी उपकरण चंवर के भी अप्रस्तुत बिम्ब कवि ने दिये हैं। हिमालय पर्वत पर चमरी गायें अपनी हिलती हुई पूँछ से, गिरिराज पर चंवर डुलाती हैं। कल्पना बड़ी सचित्र और मनोरम है।[89] कुश के प्रस्थान करते समय आकाश में उड़ने से चंचल पंखों वाले हंस ही अनायास चंवर हो जाते हैं।[90] शरद् ऋतु के श्वेत बादल व्योम रूपी राजा के चंवर रूप हैं।[91]

राजधानियों के चारों ओर ऊँची प्राकार बनाने का रिवाज है। रावण की लंका के चारों ओर सोने की चहारदीवारी रही होगी। उसे पिंगल रंग के वानर जब घेर लेते हैं तो एक और सोने की दीवार (हेमप्राकार) तैयार हो जाती है।[92] इस बिम्ब के बिना वानरों के घेरे का दृश्य कभी भी इतनी अच्छी तरह नेत्रगोचर न होता।

---

88 रघु 4/59
89 कु 1/13
90 रघु 16/33
91 ऋतु. 3/4
92. रघु 12/71

राजनीति में काम आने वाले साम-दाम-दण्ड-भेद नामक चार उपायों को कवि ने अनेक बार प्रभावसाम्य हेतु उपमान बनाया है। विशेषकर राम आदि भाइयों के लिये यह उपमान सटीक बैठता है। दशरथ अपने चार पुत्रों से, सामादि उपायों से नीति के समान सुशोभित हुए।[93] नव वधुओं से युक्त राम आदि भाई सिद्धियों से सुशोभित साम आदि उपाय हैं।[94] राम के राज्याभिषेक अवसर पर पुनः यही विम्ब दोहराया गया है।[95] कवि का अभिप्राय यहाँ यही है कि चारों उपायों के संयोग की भाँति चारों भाई राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का संयोग परम कल्याणकारी है।

सीता से उत्पन्न दोनों कान्तिमान् पुत्रों को कवि ने क्षिति से उत्पन्न सम्पन्न कोष और दण्ड का राजनीतिक उपमान दिया है।[96] दशरथ की तीनों रानियों को प्रभाव, उत्साह व मन्त्र शक्ति सदृश बताया गया है।[97] जिस प्रकार राजा की यह शक्ति अक्षय अर्थ को उत्पन्न करती है, सुदक्षिणा रघु को जन्म देती है।[98] राजसी वातावरण के इस ग्रन्थ में ये उपमान जबरदस्ती लाये हुए नहीं लगते, बड़े स्वाभाविक हैं। भावात्मकता के अभाव में सहृदय को विभोर अवश्य नहीं कर पाते।

देश व नगर चित्र

प्रत्येक देश और प्रत्येक नगर की अपनी 'इमेज' होती है। देश विशेष का नाम लेते ही हमारी आँखों के आगे वहाँ की प्रकृति व समाज की विशिष्ट छवि उभरती है जो दूसरे देश की छवि से कुछ भिन्न होती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कालिदास के देश का अर्थ आजकल के हिसाब से प्रदेश अथवा मंडल विशेष है। कालिदास ने प्रदेशगत प्रकृति के उल्लेख द्वारा देश का चित्र सामने उपस्थित किया है।

रघु की दिग्विजय के प्रसंग में इस प्रकार के विम्ब मिलते हैं। विजयी राजा रघु पूर्वी राज्यों को जीतते हुए समुद्र किनारे सुह्म देश में पहुँचे जो तट पर खड़े हुए ताड़ वृक्षों की छाया से काला जान पड़ता था—'तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः।'[99] दक्षिण देश, ऐसे समुद्र के किनारे-किनारे हैं जहाँ फल से लदे सुपारी

93. रघु. 10/86
94. वही 11/55
95. वही 14/11
96. वही 15/13
97. वही 9/18
98. वही 3/13
99. रघु. 6/34

के वृक्ष कतार के कतार लगे है—'वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना'।[100] मलयदेश इलायची की खुशबू से व्याप्त है। अथ च, यहाँ मरीच के वनो मे हारीत नामक चिडियाँ उडती रहती है। चदन के वृक्षो म सप लिपटे रहते हैं।[101] प्राग्ज्योतिष-आसाम मे, कालागुरु वृक्ष, हाथियो के स्तम्भ के (बाँधने के) काम आते हैं, कारण वहाँ हाथी भी बहुत होते हैं। वहाँ खूब वर्षा होती है, अत रघु की सेना की उठी धूल से उत्पन्न दुर्दिन वहाँ के लोगो को नही भाता।[102]

'इन्दुमती स्वयवर' म सुनन्दा राजाओ का परिचय देते समय इसी प्रकार देशगत बिम्ब उपस्थि करती है। अवन्ती के उद्यानो मे शिप्रा नदी का शीतल पवन बहता रहता है।[103] अ ग देश मे नगाडे की ध्वनि के समान समुद्र गरजता है। वहा की हवा लौंग की खुशबू उडा कर लाती है[104] आदि-आदि।

'मेघदूत' मे भी इसी प्रकार स्थान विशेषो के बिम्ब दिय गये हैं। कवि ने उज्जयिनी, अलका और अयोध्या नगरी का भी बिम्बात्मक वर्णन किया है जिससे देखी हुई उज्जयिनी आँखो के सामने उपस्थित हो जाती है—

> प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
> पूर्वोद्दिष्टामुपसरपुरी श्रीविशाला विशालाम्।
> स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणा गा गताना
> शेषै पुण्यैहृ तमिव दिव कान्तिमत्खण्डमेकम्॥ (पू मे 31)

जहाँ गाँवो मे बडे-बडे वत्सराज उदयन की कथा चाव से सुनाते हैं, ऐसे अवन्ति-देश मे सम्पत्तिशालिनी उज्जयनी नगरी है। वह न केवल समृद्ध है अपितु सुख शान्ति से पूर्ण है। इसलिये ऐसा लगता है कि स्वर्ग से लौटे हुए जीव अवशिष्ट पुण्यो के द्वारा सामूहिक रूप मे स्वर्ग का एक टुकडा ही धरती पर (रहने के लिये) ले आए हैं। 'दिव खण्डम्' की कल्पना बडी सुन्दर है और उज्जयिनी के प्राचीन गौरव व ऐश्वर्य को साकार करती है। वहाँ की शीतल मन्द सुगन्धित शिप्रावात का, बाजारो मे बिखरी सम्पत्ति का, ऊँचे-ऊँचे भवनो का, विलासी निवासियों का एव महाकाल के मन्दिर का बिम्बात्मक वर्णन कवि ने किया है।

यक्ष की निवासभूमि अलका का भी विशद चित्र 'मेघदूत' मे मिलता है—

> तस्योत्सगे प्रणयिन इव स्रस्तगगादुकूला
> न त्व दृष्ट्वा न पुनरलका ज्ञास्यसे कामचारिन्।

---

100. रघु 44
101 वही 48
102 वही 82
103 वही 6
104 वही 37

या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ।। (66)

यहाँ अलका का नायिका रूप में जहाँ एक ओर सजीव बिम्ब खड़ा किया गया है वहीं दूसरी ओर कवि ने पाठक का रागात्मक सम्बन्ध भी नगरी से जोड़ दिया है। इस एक पद्य मे अनेक चित्र हैं (1) प्रेमी की गोद में स्खलितवस्त्रा प्रेमिका (2) कैलास पर्वत पर गंगा के किनारे बसी अलका नगरी (3) मेघों से बरसती बूंदों मे युक्त ऊँचे भवनों वाली नगरी (4) मेघ जैसे काले बालों में बूंदों जैसे मोती सजाए खड़ी नारी। अलका का दृश्य स्वत. सुन्दर है, कवि ने उसे रोमांटिक जामा पहना कर और भी मनोहर बना दिया है। इस बहुमुखी चित्र में 'उत्संग' व 'विमाना' जैसे श्लिष्ट सामर्थ्य वाले शब्दों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

इसी प्रकार के चित्र अन्यत्र भी देखे जा सकते हैं। उज्जयिनी व अलका के भवनो के भी सुन्दर बिम्ब कालिदास ने दिये है। चाहें तो देशगत बिम्बों को 'भौगोलिक-बिम्ब' और भवन सम्बन्धी बिम्बों को 'वास्तु-बिम्ब' की सज्ञा दी जा सकती है। देश व नगर की प्रतिभा में वहाँ की प्रकृति के अतिरिक्त निवासियों की भी छवि रहती है इसलिये इन बिम्बो को प्रकृति के अन्तर्गत न रखकर मानव-बिम्बो के अन्तर्गत लिया गया है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि कालिदास देश चित्रण में अनुपम हैं।

पौराणिक कथा बिम्ब

पाश्चात्य आलोचकों ने 'मिथ (Myth)' को बिम्ब-निर्माण का उपयोगी साधन माना है। 'मिथ' का अर्थ है कवि के समय मे प्रचलित लोक कथाएँ और प्राचीन साहित्य से लिये गये पौराणिक उल्लेख। कालिदास के समय में अनेक कथाएँ प्रचलित रही होंगी जिनका संग्रह पुराणों में मिलता है। कालिदास ने अपने काव्य मे भावों व स्थितियों को स्पष्टता व रोचकता देने के लिये स्थान-स्थान पर पुराण, रामायण तथा महाभारत में आई कथाओं व सकेतों का आश्रय लिया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि केवल उन्हीं पौराणिक कथाओं मे बिम्ब-निर्माण हो पाता है जिन्हे पाठक जानता हो। अतः इसके लिये कवि द्वारा गृहीत कथा का पर्याप्त लोकप्रिय व प्रचलित होना आवश्यक है जिससे यथासंभव अधिक पाठक उनसे बिम्ब ग्रहण कर सकें। पौराणिक संकेतों को आधुनिक कविता में प्रायः प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। किसी कथा-पात्र या संकेत अथवा ऐतिहासिक घटना के अत्यधिक प्रचलित होने पर वह संकेत प्रतीक बन जाता है।

कालिदास ने पौराणिक कथाओं द्वारा बड़ी कुशलता से बिम्ब-निर्माण किया है। विभिन्न पर्वतों, समुद्र, चन्द्र, सूर्य आदि से सम्बन्धित अतिप्राकृतिक घटनाएँ, ऋषियों व देवों से सम्बन्धित अतिलौकिक कथाएँ, विभिन्न अवतार, समुद्र मंथन, राहु द्वारा चन्द्रग्रहण आदि के कथा प्रसंग कालिदास ने विभिन्न अवसरों पर अपने पक्ष को बिम्बायित करने के लिये प्रयुक्त किये हैं।

'मालविका' में राजा अग्निमित्र अपने पिता पुष्यमित्र का पत्र पढ़ता है जिसमें राजकुमार वसुमित्र द्वारा अश्वमेध के घोड़े की रक्षा की वार्ता है—

'सोऽहमिदानीमंशुमतेव सगर पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये।'

(5/गद्य)

पौराणिक कथा के अनुसार सगर के द्वारा विसर्जित अश्व को पाताल में कपिल मुनि से, सगर का पौत्र अंशुमान् छुड़ाकर लाया था और तबदादा ने अपना सौंवा यज्ञ पूरा किया था। यहाँ ठीक उसी प्रकार पौत्र वसुमित्र यवनों से घोड़ा छुड़ाकर लाया है। पौराणिक संकेत ने एकाएक प्रस्तुत प्रसंग को प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बना दिया है।[105]

इसी प्रसंग में वसुमित्र की वीरता का कारण अग्निमित्र को बताता हुआ कंचुकी राजा से कहता है—'कुमार की इस वीरता से मुझे कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि उनके जन्मदाता आप जैसे अजेय वीर हैं, जैसे कि वडवानल के जन्मदाता और्व ऋषि थे। और्व का दुर्दान्त तेज समुद्र में जाकर वडवाग्नि बना जो समुद्र के जल को सुखाकर उसे सीमा में रखता है। यह कथा पुराणों में वर्णित है। अग्निमित्र व वसुमित्र दोनों के पराक्रम के जन्य-जनक सम्बन्ध को पौराणिक संकेत से सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है। कंचुकी की चापलूसी वृत्ति तो स्पष्ट है ही। 'अभिज्ञान' में सारथि राजा से कहता है—

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्॥ (1 16)

धनुष् चढ़ाकर मृग का पीछा करते राजा मृग का पीछा करने वाले साक्षात् पिनाकी जान पड़ते हैं। पौराणिक घटना के अनुसार, दक्ष के यज्ञ में पति शिव की निन्दा न सहनकर, सती ने यज्ञाग्नि में शरीर त्याग दिया था। तब शिवजी के भय से यज्ञ मृग का शरीर धारण कर भागा और शिव ने अपना पिनाक धनुष् चढ़ाकर उसका पीछा किया। यहाँ प्रस्तुत के सभी अंग अप्रस्तुत में भी होने के कारण सादृश्य बिम्बग्राही हो गया है। इसमें राजा की गुरुता, अस्त्र शस्त्र कुशलता और सूत की चाटुकारिता अभिव्यक्त हैं। 'साक्षात' शब्द बिम्ब की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और सादृश्य को इन्द्रिय-ग्राह्यता के स्तर पर ला खड़ा करता है। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र नृसिंह के नाखूनों की तीक्ष्णता से दुष्यन्त के बाणों के पैनेपन को स्थापित कर स्वक् संवेदना को सजीव किया गया है।[106]

'मेघदूत' में यक्ष मेघ से क्रौंच छिद्र के दर्रे (शार्ट-कट) से जाने के लिये कहता है। क्रौंच मार्ग के लिये कवि 'भृगुपतियशोवर्त्म' का बिम्ब देता है। यह

---

105 अन्यत्र देखें—'सा निधा पद पदव्या सगरस्य सन्तते। रघु 3/50

106 7/3

पौराणिक अमूर्त विम्ब वर्ण्य विषय क्रौंच दर्रे को असाधारण गौरव प्रदान करता है। इस छोटे मार्ग से जाते हुए मेघ की शोभा 'बलि को बाँधने में प्रवृत्त भगवान विष्णु के श्यामल चरण की तिरछीशोभा के समान होगी'।[107] वामनावतार की कथा से सम्बन्धित यह अप्रस्तुत मेघ की आकृति-विशेष को तो रूपायित करता ही है, मेघ को बड़प्पन देने की यक्ष की भावना को भी स्पष्ट करता है।

अन्यत्र—'इत्याख्याते पवनतनय मैथिलीवोन्मुखी सा'[108]

प्रियतम की कुशलता जानकर यक्षिणी हनुमान् के प्रति मैथिली की भाँति मेघ की ओर उन्मुख होगी। मेघ से पति यक्ष की कुशलता सुनकर यक्षिणी की उत्कण्ठा का इनसे अधिक सुन्दर उपमान क्या हो सकता था। जैसे अशोक वाटिका में बैठी सीता, हनुमान की ओर आशा से उन्मुख हुई थी, उसी प्रकार हताश बैठी यक्षिणी इन आकस्मिक खबर से और बहुत कुछ जानने की उत्कण्ठा से, मेघ की ओर उन्मुख होगी। यहाँ राम कथा के प्रसग-विशेष के सादृश्य से परिस्थिति को चाक्षुष किया गया है। 'उन्मुखी' शब्द सचित्र है। पवनतनय व सीता का विम्ब मेघ व यक्षिणी दोनों को असाधारण गौरव प्रदान करता है।

'रघुवंश में पौराणिक विम्बों की बहुलता है। इन बिम्बों में कवि की विस्तृत जाकारी एवं प्रौढ काव्यकला के दर्शन होते हैं।' यज्ञ से शुद्धात्मा दिलीप सन्तानाभाव के कारण शोक-तम में निमग्न स्वयं को 'लोकालोक' पर्वत के समान समझते हैं। जिसका एक भाग सदा प्रकाशित और दूसरा अन्धकार में डूबा रहता है'।[109] लोकालोक पर्वत की कथा विष्णु, मत्स्य एवं वायु पुराणों में आती है।[110] वायु पुराण के अनुसार लोकालोक पर्वत स्वर्गीय प्रकाश को दूसरी ओर जाने से रोकता है। मत्स्य पुराण के अनुसार यह प्रत्यक्ष जगत् को अप्रत्यक्ष जगत् से विभाजित करता है। दिलीप ने अपनी जीवन की अमूर्त परिस्थिति को एक पौराणिक विम्ब द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया है।

पुराणों में उल्लिखित मेरु पर्वत की विशिष्टताओं को भी कालिदास ने विम्ब का साधन बनाया है। विष्णु पुराण में मेरु की उच्चता व विशालता का भव्य वर्णन हुआ है।[111] कालिदास ने उस कल्पना से प्रभावित हो दिलीप के उन्नतदेह के लिए मेरु का उपमान चुना है—

---

107. पू मे. 60
108. उ.मेघ.–40
109. रघु. 1/68
110. विशेष जानकारी के लिये देखें—'A critical . study of the sources of Kalidasa.'—B.R. Yadav., ch.IV.
111. विष्णु पुराण–2/1.20–22, 2.39–41, 8.19 आदि

'स्थित सर्वोन्नतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना' ।[112]

मेरु को सोने का पर्वत माना गया है। कालिदास ने सोने के दर्पण (या सुनहरी फ्रेम वाले दर्पण ?) में रूप निरखने राजा अतिथि के प्रतिबिम्ब को सूर्योदय के समय मेरु पर्वत पर पड़ने कल्पवृक्ष के प्रतिबिम्ब के समान कहा है।[113] मेरु के पृथ्वी के दोग्धा होने की बात भी कवि ने कही है।[114]

भारत में चन्द्रमा के विषय में अनेक 'मिथ' प्रचलित हैं। उसे ऋषि अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न माना जाता है। कवि ने सुदक्षिणा के (भावी रघु रूपी) गर्भ को गौरव देने के लिए उक्त बिम्ब दिया है—

'अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौ'[115]

महाभारत की कथा के अनुसार चन्द्रमा ने दक्ष प्रजापति की सत्ताईस कन्याओं से विवाह किया था, दक्ष ने उसे शाप दिया जिससे उसके क्षय रोग हो गया। कालिदास ने उचित अवसरों पर उक्त प्रसंगों से अपने प्रसंगों को रोचक बनाया है।[116] राज कन्याएँ रघु को पति रूप में प्राप्त कर उसी प्रकार प्रसन्न हुईं जैसे रोहिणी आदि दक्ष-कन्याएँ चन्द्रमा को प्राप्त करके।' एवं रति में अत्यन्त आसक्त राजा अग्निवर्ण को राजक्षमा रोग ने उसी प्रकार क्षीण कर दिया जिस प्रकार दक्ष का शाप चन्द्रमा को क्षीण करता है। कवि इस पौराणिक बिम्ब की योजना में अग्निवर्ण की चारित्रिक दुर्बलता पर पर्दा डालने का प्रयत्न करता है।

पौराणिक कथा समुद्र-मन्थन का चित्र 'कुमारसम्भव' के हिमालय-वर्णन में ही कवि ने दिया है।[117] इस कथा पर आधारित रूपक भी प्रयुक्त हुए हैं। कुश से परास्त नागराज अपनी कन्या कुमुदवती को लेकर व्याकुल मगरों वाले उस जलाशय से निकलता है। मानो मथित समुद्र से लक्ष्मी सहित पारिजात वृक्ष निकला हो'।[118]

वामनावतार की कथा को भी कवि ने बिम्ब बनाया है। इन्दुमती को ले जाते हुए अज को, उद्धत राजसमूह मार्ग में ही घेर लेता है। जिस प्रकार बलि द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य को ग्रहण करने वाले भगवान् वामन का चरण प्रह्लाद ने रोक लिया

---

112 रघु 1/14
113 रघु 1/17–26
114 कु. 1/2
115 रघु 2/75
116 रघु 3/33 व 19/48
117 कु 1/2
118 रघु 16/79 मदिच 10/3 व 52

था।[119] यहाँ इन्दुमती को 'श्री' अज को 'वामन' व राज समुदाय को 'इन्द्रशत्रु' की समकक्षता मे रखा गया है। तदनन्तर अकेले अज उन राजाओं को उसी प्रकार रोक देते हैं जिस प्रकार एकाकी महावराह ने कल्पान्त में प्रलय मचाने वाले समुद्र की जलराशि को रोक दिया था।'[120] राम द्वारा रावण के बन्धन से छुड़ाई गई धैर्य की मूर्ति सीता को वराह भगवान द्वारा प्रलय से बचाई गई पृथ्वी कहना[121] बड़ा सार्थक है। यह पौराणिक विम्ब सभी भावों को सजीव कर देता है।

शकुन्तला को शर्मिष्ठा की भाँति पति की बहुमता एव पुरु जैसे सम्राट पुत्र की माता होने का आशीर्वाद दिया जाता है।[122] 'महाभारत' मे अन्य रानियों के रहते भी ययाति के शर्मिष्ठा के प्रति विशिष्ट पक्षपात का उल्लेख हुआ है। पटरानी न होते हुए भी शर्मिष्ठा का पुत्र पुरु सम्राट बनता है। वस्तुतः ,ययाति-शर्मिष्ठा-आख्यान' शकुन्तला के भूत व भावी जीवन की घटनाओं को सम्यक्तया बिम्बित करता है।

पौराणिक कथा संकेतो से कालिदास ने सुन्दर हास्य व्यंग्य की सृष्टि की है। दुष्यन्त इस दुविधा में पड़े हुए हैं कि तपोवन में रहें या माताओं के सम्मान हेतु नगर जावें। विदूषक उनकी दुविधा का समाधान करता है–'त्रिशंकुरिवान्तरालेतिष्ठ'।[123] हास्य पात्र के मुख से यह तुलना बड़ी स्वाभाविक जान पड़ती है और दुष्यन्त के मन की स्थिति को ऐतिहासिक सन्दर्भ में सजीव कर देती है। पुरुरवा का विदूषक मित्र भी उसकी स्त्री-आसक्ति पर इसी प्रकार सुन्दर व्यंग्य करता है। राजा अपने प्रेम-प्रसंग में जब सहायता मांगता है तो विदूषक कहता है—

'भोः अहल्याकामुकस्य महेन्द्रस्य वज्रः, भवतोऽहं द्वावप्यत्रोन्मत्तौ।'[124]

वज्र इन्द्र की युद्ध मे सहायता करता है किन्तु अहल्या-आसंग में सहायता नहीं करता। विदूषक राजा की इस प्रसंग में सहायता से बचना चाहता है और कहता है कि 'मैं वज्र मूर्ख इस विषय में उन्मत (अयोग्य) हूँ।'

अन्यत्र 'संज्ञा-सूर्य' कथा को बिम्ब बनाया गया है। अवन्तिराज के शारीरिक गठन की प्रशंसा करते हुए कवि ने उसे विश्वकर्मा द्वारा सान पर चढ़ाकर यत्नपूर्वक छांटे गये सूर्य के समान कहा है—

---

119 रघु. 7/35
120. वही 7/56
121. वही 13/77
122. अभि. 4/6
123. वही 2/16 गद्य
124. वि. 2/8 गद्य

'आरोप्यचक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नात् लिखितो विभाति ।'[125]

पुराणों के अनुसार विश्वकर्मा ने अपनी पुत्री संज्ञा का विवाह सूर्य के साथ किया । पति के तेज को न सहन कर पाने वाली पुत्री के प्रार्थना करने पर विश्वकर्मा ने सूर्य को सान पर चढ़ाकर छोटा किया । उक्त कथा-बिम्ब में अवन्तिराज का सूर्य सदृश तेज एवं अतुलित शरीर प्रकट है ।

परशुराम द्वारा पिता की आज्ञा से माता का सिर काटना एवं क्रोधवश इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन करना प्रसिद्ध है । 'रघुवंश' में परशुराम का परिचय देते समय कवि ने उनके पौराणिक रूप का भी बिम्ब दिया है ।[126] परशुराम ने जो दाहिने कान पर अक्षमाला धारण की है उससे वे क्षत्रियों को इक्कीस बार नष्ट करने की गणना को धारण करते हुए से सुशोभित होते हैं ।[127] यह पौराणिक कल्पना एकदम नए ढंग की है । परशुराम की आज्ञाकारिता को सीता-निर्वासन के प्रसंग में भी बिम्ब बनाया गया है । राम लक्ष्मण से सीता को वन में छोड़ आने को कहते हैं । लक्ष्मण इस आदेश को बिना 'ननु नच' के स्वीकार कर लेते हैं । पाठक को लक्ष्मण का यह कदम अनुचित न लगे इसलिये कवि लोकोक्ति एवं पौराणिक बिम्ब द्वारा लक्ष्मण के इस कदम का औचित्य सिद्ध करते हैं—

स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत् ।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥(रघु 14 26)

परशुराम ने जैसे पिता की आज्ञा से, माता को शत्रु के समान मारना स्वीकार किया था, लक्ष्मण ने भी बड़े भाई की आज्ञा मान ली । बड़ों की आज्ञा में उचित-अनुचित का विचार नहीं किया जाता । लक्ष्मण का आज्ञापालन यहाँ प्राचीन कथा के संदर्भ में पूर्ण स्पष्टता को प्राप्त करता है ।

एक अन्य सुन्दर पौराणिक बिम्ब के साथ इस प्रसंग को समाप्त करते हैं—

स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम् ।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ॥ (रघु 4 32)

रघु दिग्विजय के लिये निकले हैं । अपनी बड़ी भारी सेना को लेकर वे तेजी से पूर्वसागर (बंगाल की खाड़ी) की दिशा में चढ़े । उस समय वे शिव की जटाओं से गिरी गंगा को पूर्व सागर की ओर ले जाते हुए भगीरथ की भाँति सुशोभित हुए । भगीरथ के अथक प्रयास से गंगावतरण की कथा प्रसिद्ध है । यहाँ इसको अप्रस्तुत बनाकर प्रस्तुत दृश्य का सजीव चित्र खींचा गया है । इसमें सेना की विशालता दृश्य है, वह आगे बढ़ती जा रही है, किन्तु पश्चिम छोर नहीं है जैसे

---

125 रघु 6/32
126 वही 11/65
127 वही 11/66

कि गगा का। 'पूर्वसागरगामिनीम' शब्द महत्त्वपूर्ण है इसकी श्लेष-सामर्थ्य पर विम्ब टिका हुआ है। यह विम्ब कालिदास की श्रेष्ठतम कल्पना की सृष्टि है। भगीरथ के सादृश्य से कवि ने अपने नायक 'रघु' को एक अथक महान् योद्धा के रूप मे चित्रित किया है।

इस प्रकार कालिदास ने विभिन्न प्राचीन कथाओ का विम्ब-विधान मे उपयोग किया है। पौराणिक विम्बों के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि यह आवश्यक नही कि कालिदास ने विभिन्न पुराणो से ही सीधे अपने सूत्र लिये हो। अपने समय मे प्रचलित कथाओ से भी सीधे यह सूत्र लिये हुए हो सकते है। कथाओ के अतिरिक्त विभिन्न पौराणिक देव राजाओ को भी कवि ने उपमान रूप में चुना है। स्थान स्थान पर यम, वरुण, कुबेर, इन्द्र आदि की उपमाएँ दी गई है, किन्तु संश्लिष्ट वर्णन न होने के कारण वे विम्ब नही बन सके है। कुल मिलाकर पौराणिक विम्ब कवि के विशाल अध्ययन एव बहुश्रुतता के प्रमाण है।

तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय मे स्रोतों के आधार पर प्रस्तुत, कालिदास के इस वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि कवि का विम्ब-चयन-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सबसे अधिक विम्ब उन्होंने प्रकृति-क्षेत्र से लिये है। इसमे भी नदी, समुद्र, मेघ व वनस्पति—जगत् के प्रति उनकी विशेष रुचि है। मानव-जीवन मे उन्होंने राजसी जीवन एव तपोवनी सस्कृति के चित्र दिये है। ग्राम्य-जीवन या लोक-जीवन मे उनकी रुचि नही के बराबर है। उनके काव्यों में समृद्ध वर्ग की झाँकी मिलती है। यह अध्ययन कवि के प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य-प्रेम व आभिजात्य-रुचि को प्रकाशित करता है।

5

संवेदनात्मक एवं भावात्मक बिम्ब

काव्य मे बिम्बो का अध्ययन बिम्बो मे निहित इन्द्रिय सवेदना के आधार पर एव बिम्ब मे निहित भावो के आधार पर भी किया जा सकता है। इस अध्याय के 'क' भाग मे सवदनात्मकता एव 'ख' भाग मे भावात्मकता पर विचार किया जायेगा।

(क) सवेदनात्मक बिम्ब

ऐन्द्रियता बिम्ब का अनिवाय तत्व है। यह ग्रहणशीलता का वह स्तर है जहा बिम्ब अलकार की कोटि से अलग हो जाता है। जैसाकि सिद्धान्त-पक्ष में स्पष्ट किया जा चुका है, ऐन्द्रियता का तात्पर्य उन प्रत्यक्ष अनुभूतियो से है जो पहले किसी न किसी सवदना के स्तर पर ग्राह्य होती है—जैसे वर्ण, स्पर्श, नाद और गन्ध सम्बन्धी अनुभूतियाँ। इन अनुभूतियो को पाठक को भी सवेदना के स्तर पर अनुभव कराना बिम्ब का काय है। बाह्येन्द्रियो के आधार पर सवेदना पाँच प्रकार की होती है। नेत्र, नासिका, जिह्वा, कर्ण और त्वचा का विषय क्रमश रूप, गन्ध स्वाद, ध्वनि और स्पर्श हैं। इन विषयो के आधार पर बिम्ब निर्माण होता है। प्रत्येक बिम्ब मे इन पाँचो में से कोई न कोई विषय अवश्य रहता है। कवि की सवेदना जितनी तीव्र व विविध होगी, उतनी ही विविध एव स्पष्ट बिम्ब योजना उसके काव्य मे प्रकट होगी। कु मी स्पर्जन ने शेक्सपीयर की विभिन्न सूक्ष्म-सवेदनाओ का अध्ययन किया है जिसे उन्होने 'सेन्स इमेजरी' कहा है। शेक्सपीयर की सवेदना-शक्ति सूक्ष्म एव विविध है इसमे कोई सन्देह नही। भारतीय कवियो मे कालिदास म ऐन्द्रिय पर्युत्सुकता जगाने की विशिष्ट सामर्थ्य है।

सवेद्य-गुण के आधार पर बिम्ब के पाँच वर्ग किये जाते हैं—

(1) दृश्य-बिम्ब	(2) स्पर्श-बिम्ब
(3) ध्वनि-बिम्ब	(4) गन्ध-बिम्ब
(5) स्वाद बिम्ब	

काव्य मे जो बिम्ब प्रस्तुत किये जाते हैं वे एक से अधिक सवदनाओ के बोधक भी हो सकते हैं। वस्तुत एक श्रेष्ठ बिम्ब मे कई सवेदनाएँ मिली रहती हैं।

ऐसे बिम्बों को सह-संवेदनात्मक बिम्ब या मिश्रित बिम्ब कह सकते हैं। यदि चाहें तो इस आधार पर भी बिम्बो के अनेक भेद-प्रभेद हो सकते हैं। जैसे दो संवेदनाओं वाले बिम्ब-दृश्य-स्पर्श बिम्ब, दृश्य-गन्ध बिम्ब, दृश्य-श्रव्य बिम्ब, दृश्य-आस्वाद्य बिम्ब, स्पर्श-गन्ध बिम्ब, स्पर्श-आस्वाद्य बिम्ब आदि। पुनश्च तीन संवेदनाओं वाले भेद तथैव चार संवेदनाओं से मिश्रित बिम्ब प्रकारों से अनेक भेद-प्रभेद किये जा सकते है, किन्तु साहित्य में इस प्रकार की आलोचना सुरुचिकर प्रतीत नहीं होती। आलोचकों की इस अवांछित मनोवृत्ति की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध बिम्बकार सी. डे लेविस ने ठीक ही कहा है कि—'वस्तुतः बिम्ब, काव्य-रचना के लिये खोजे जाते हैं किसी अमेरिकन प्रोफेसर (या शोध-कर्ता ?) की (वर्गीकरण सम्बन्धी) सुविधा के लिये नही।'[1] अतः हमने केवल एक छठा भेद 'सह-संवेदनात्मक' शीर्षक मे रखा है। अब हम कालिदास के काव्य मे बिम्ब-संवेदनाओं का विवेचन करेंगे।

दृश्य-बिम्ब

इन्द्रिय संवेदनाओं मे दृश्य-संवेदना प्रमुखतम है। नेत्र-इन्द्रिय ही ज्ञान का मुख्य साधन है इसलिये काव्यात्मक बिम्बों में चाक्षुप बिम्बों की संख्या सबसे अधिक रहती है। जीवन मे नेत्र-व्यापार की प्रधानता के कारण ही इतर संवेदनाओं को भी प्रायः दृश्य क्रियाओं से अभिव्यक्त कर दिया जाता है। जैसे 'फूल सूंघो' के स्थान पर 'सूंघ कर देखो'। इसी प्रकार 'सुनकर देखो' 'चखकर देखो' 'सूंघ कर देखो' 'छूकर देखो' आदि वाक्यों में श्रुति, स्वाद एवं स्पर्श संवेदना के साथ 'देखो' क्रिया, जगत् में दृश्य-संवेदना की प्रधानता को सूचित करती है। वैसे भी विचार करके देखें तो ज्ञात होगा कि गन्ध स्पर्श आदि संवेदनाओं के साथ उन-उन वस्तुओं का दृश्य रूप भी प्रायः सम्बद्ध रहता है। उदाहरणार्थ यदि स्वर को वीणा के स्वर से ज्ञापित कराया जाए तो वीणा के स्वर की श्रव्य-अनुभूति के साथ वीणा का दृश्य आकार भी चला ही आता है। यदि कहें 'क्यो रेक रहे हो' तो 'ढेंचू-ढेंचू' के साथ गधे की छवि भी उभरती ही है। अतः यह कह सकते है कि बिम्ब चाहे किसी संवेदना के वाहक हों उनमें थोड़ी बहुत चाक्षुपता रहती ही है, यद्यपि यहाँ चाक्षुपता गौण रहती है। अतः मुख्य संवेदना को विचारगत रखते हुए ही यहाँ पर बिम्बों का विभाजन किया जा रहा है।

कालिदास के काव्य में भी दृश्य बिम्बों की प्रधानता है। मनुष्य और वस्तुओं के सम्बन्ध में कवि का ज्ञान-क्षेत्र जितना विस्तृत है उतने ही विविध उनके दृश्य-बिम्ब हैं। उनकी व्यापक सर्वग्राहिणी दृष्टि एवं अनुभवों की विशालता के कारण उनके काव्य में चाक्षुप बिम्बों की प्रचुरता है। जगत् की अनेक वस्तुओं, व्यापारों, घटनाओं व स्थलों ने कवि को प्रभावित किया है अतः कवि ने उनके ऐसे पूर्ण

---

1. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी पृष्ठ 49

चित्र अ कित किये हैं जो पाठकों के नेत्रों के सम्मुख साकार हो जाते हैं। ये बिम्ब प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो रूपो मे हैं। अध्याय 3 व 4 में दिये गये बिम्बो के स्रोतो से यह स्पष्ट है कि कालिदास ने व्यक्तियो व पदार्थों के सुन्दर दृश्य बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। ऋतु वर्णन, प्रभात, सन्ध्या व रात्रि के वर्णन, नदी, सागर के वर्णन, पशु-पक्षियो के चित्र दृश्य-बिम्बो के उदाहरण हैं। उसी प्रकार मानवीय रूप चित्रण भी मुख्यतया दृश्य-सवेदना को ही परितृप्त करते हैं। अत इस प्रकरण मे उन बिम्बो का विवेचन किया जायेगा जिनमे वस्तु की अपेक्षा सवेदना की प्रधानता है। कालिदास के इन दृश्य बिम्बो मे किसी अन्य कवि की सवेदना स कहीं अधिक सूक्ष्म, पूर्ण एव तीव्र सवेदना व्यजित हुई है।

अमूर्त स्थितियो एव भावों को मूर्त रूप प्रदान करने मे भी कवि की दृश्य-सवेदना बिम्बो की सृष्टि करती है। इसी प्रकार मानवीकरण द्वारा भी दृश्य बिम्बो की रचना होती है। मुहावरों व लोकोक्तियों की सहायता से भी सफल दृश्य बिम्बो का अ कन होता है।

कालिदास के दृश्य बिम्बो की मुख्य विशेषता उनकी पूर्णता है। कवि की प्रवृत्ति अधिकतर सर्वा ग-चित्रण की रही है। वे प्राय वर्ण्य वस्तु के लघु सकेतों का सचेष्टता से अ कन करते हैं जिससे सश्लिष्ट चित्र सामने आता है। किन्तु यदा-कदा कलात्मकता की रक्षा हेतु कुछ रेखाओं से रेखाकन कर रग भरने का काम पाठक पर भी छोड देते हैं। महाकाव्यो मे प्राय कवि ने प्रथम प्रकार का चित्राकन किया है, तथा अन्य खण्ड व दृश्य काव्यो मे रेखाकन मे कुशलता प्रदर्शित की है। यद्यपि नाटको मे भी सश्लिष्ट चित्रों का अभाव नही है और महाकाव्यों मे अनेक लघु बिम्ब मिलते हैं। 'कुमारसभव' का हिमालय वर्णन, समाधिस्थ शिव का वर्णन, 'रघुवश' का सगम वर्णन ऐसे व्यापक चित्र हैं, जो वर्ण्य विषय को पूर्णता के साथ प्रस्तुत करते हैं। 'कुमारसभव' के प्रथम सर्ग मे पार्वती का रूपचित्र भी नखशिख के सूक्ष्म बिम्बो के साथ 'क्लोजअप' के रूप मे दिया गया है, किन्तु पाँचवे सर्ग मे कवि ने तपस्या-रत पार्वती के शारीरिक सौन्दर्य का बिम्ब किंचित रेखाओं के सहारे ही खडा कर दिया है।[2] दृश्य बिम्बों मे एक ही दृश्य को अवसरानुकूल कही व्यापक कैनवास पर और कहीं छोटे फ्रेम मे प्रस्तुत किया गया है। यथा 'रघुवश' के तेरहवें सर्ग मे गगा यमुना के सगम का चित्र चार श्लोकों मे व्यापक चित्रपट पर अ कित है जबकि 'मेघदूत' मे मेघ की छाया मे सयुक्त गगा-प्रवाह के लिये प्रयाग से भिन्न स्थान मे 'गगायमुना-सगम की कल्पना' द्वारा एकागी चित्र ही प्रस्तुत किया है।

सादृश्यमूलक रूपक व उपमा अलकारो की भांति दृश्य बिम्बो के दो भेद किये जा सकते हैं—

(1) निरवयव बिम्ब
(2) सावयव बिम्ब

---

2 देखें—'स्थिता क्षण' पक्ष्मसु ताडिताधरा ' कु. 5/24

निरवयव विम्ब में केवल एक मुख्य विम्ब ही रहता है उसके पोपक, सहायक अवयवो का रूपायन नहीं होता। इसे निरंग रूपक या निरवयवोपमा के समानार्थ समझना चाहिये। जैसे 'मालतीमाधव' के निम्न श्लोक में –

कुरंगीवांगानि स्तिमितयति गीतध्वनिषु यत्
सखी कान्तोदन्त श्रुतमपि पुनः प्रश्नयति यत्।
अनिद्रं यच्चान्तः स्वपिति तदहो वेद्म्यभिनवा
प्रवृत्तोऽस्याः सेक्तु हृदि मनसिजः प्रेमलतिकाम्॥

यहाँ मालती की किशोरावस्था का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं –यह वाला गीत की ध्वनि सुनते ही कुरंगी भाति अपने अंगो को निश्चल वना लेती है। पहले सुने हुए भी अपने प्रियतम के हाल चाल वार वार अपनी सहेली मे पूछती रहती है। यह विना निद्रा के ही सोती रहा करती है। इससे पता चलता है कि निश्चय ही कामदेव ने उसके हृदय मे प्रेमलता का सिंचन प्रारंभ कर दिया है। इस श्लोक मे प्रेम पर लता भाव का कारोप साधर्म्यादि के अभाव में केवल निरवयव विम्ब है। वास्तव मे ये विम्ब केवल अप्रस्तुत मात्र वनकर रह जाते हैं अथवा कह सकते हैं कि विम्ब वनते वनते खण्डित हो जाता है और अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न नही हो पाता। कालिदास के काव्य में इस प्रकार के विम्बो का अभाव है। उनके अप्रस्तुत विम्ब एकदेशविवर्ति तो हैं, जहाँ वे कुछ आरोप शब्द द्वारा करते हैं और शेष अर्थवल से स्वतः आक्षिप्त हो जाता है, किन्तु निरवयव नही है।

जहाँ सांगरूपक व सावयवोपमा की भाँति मुख्य विम्ब के अवयवों के लिये सहायक विम्ब आकर उनका पोपण करते है वे सावयव विम्ब कहे जा सकते हैं। कालिदास के विम्ब सावयव है। वास्तव मे जब तक उपात्त वस्तु के अंगों का उल्लेख न किया जाये, सही चित्र वनता ही नही है। कालिदास की सादृश्य-योजना इसीलिये विम्वात्मक हो सकी क्योकि उन्होने वस्तुओ को संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। वर्षा ऋतु में राजा का रूप, [3] शरद्ऋतु में नववधू का रूप [4] हम ऋतु विम्बों में देख चुके है। कालिदास के विम्ब प्रायः सावयव ही होते हैं।

कुछ आलोचकों ने इन्हे खण्डित विम्ब और संश्लिष्ट विम्ब की संज्ञा दी है। [5] अन्य ने सरल विम्ब और जटिल विम्ब कहा है। [6] प्रवन्ध लेखिका की दृष्टि मे निरवयव विम्ब का विशेष महत्त्व नही क्योकि संश्लिष्ट व सावयव होना विम्ब का आवश्यक गुण है।

---

3. ऋतुसंहार 2/1
4. वही 3/1
5. 'तुलसीदास में विम्ब योजना' डा. सुशीला शर्मा,
6. 'लोकायतन का सर्वांगीण अध्ययन' शोध प्रवंध

गति की दृष्टि से दृश्यबिम्बों को पुन दो भागो मे रखकर परखा जा सकता है -

(1) स्थिर बिम्ब

(2) गत्वर बिम्ब

(1) स्थिर बिम्ब—कालिदास के बिम्बो म स्थिरता व गतिशीलता दोनो ही सफलता के साथ चित्रित हुई हैं। पर्वत, भूमि, नगर, भवन आदि के चित्र स्थिर रूप म चित्रित हुए हैं। आलम्बन विभावो का रूप चित्रण व उनकी विभिन्न मुद्राओ के चित्र स्थिर बिम्ब कहे जा सकते हैं। समाधिरत शिव का बिम्ब या ग्रीष्मऋतु मे तप करती पार्वती का 'स्थिताःक्षण पक्ष्मसु' आदि बिम्ब स्थिर बिम्ब के उदाहरण हैं। नृत्य के बाद कमर पर हाथ रखकर खडी मालविका का चित्र एव धनुष की कोटि पर हाथ टेक कर खडे अज का मुद्राकन स्थिर बिम्ब है। रूप चित्रण के प्रसग मे चतुर्थ अध्याय मे इनका बिम्बात्मक सौन्दर्य परखा जा चुका है।

गतिहीन व एकाएक निश्चल हुई अवस्था को कवि ने चित्रलिखित अवस्था से बिम्बायित किया है, जो बडा सार्थक बन पडा है। यथा—

'अभि'-'अहो रागबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रग'।

'विक्रमो'-एष आलेख्यवानर इव किमपि तूष्णीभूत आर्यमाणवकस्तिष्ठति।

रघु -वामेतरस्तस्य कर प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्ताङ्गुलि सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे॥(2 31)

कुमार -अमी च कथमादित्या प्रतापक्षतिशीतला।
चित्रन्यस्ता इव गता॥ प्रकामालोकनीयताम् (2 24)

कु— निष्कम्पवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम्।
तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे॥ (3 42)

प्रथम उद्धरण मे, मनोहर सगीत सुनकर स्तब्ध हुई चित्तवृत्ति वाले नाट्यशाला के सामाजिको के लिये कल्पना की गई है कि जैसे चित्र मे स्थिर रगशाला हो। चित्र मे गति, हलचल नही होती। अत इस बिम्ब से सामाजिको की प्रवृत्ति भली-भाति स्पष्ट हुई है। दूसरे उद्धरण म शान्त भाव से बैठे विदूषक के लिये 'आलेख्य-वानर' का बिम्ब बडा हास्यजनक एव समुचित है। 'आलेख्य' से गतिहीनता एव 'वानर' से विदूषक की कुरूपता व्यक्त है। तीसरे उद्धरण मे राजा दिलीप की किंकर्तव्यमूढता को सुन्दर बिम्ब से रूपायित किया है। राजा गाय पर आक्रमण करने वाले सिंह पर शरप्रहार करना चाहते हैं किन्तु सिंह के लोकोत्तर होने के कारण उनका दायाँ हाथ तरकस मे ही लगा रह जाता है। बाण का पख राजा के नाखूनों की प्रभा से चमक रहा है। मानो चित्रकार ने उनका चित्र ही बाण

निकालते हुए खींचने का उद्योग किया है। राजा जितनी त्वरा से उद्योग में लगा था उतना ही निष्क्रिय अपने को पाता है। राजा की विवश निष्क्रियता को कवि ने नितान्त साधारण शब्दों में मूर्त कर दिया है।

'कुमारसम्भव' के उद्धरण मे तारकासुर से पीडित, अतएव तेज के विनाश से शीतल हुए आदित्य चित्रन्यस्त बताये गए हैं। 'चित्रलिखित सूर्य' से सूर्य की निस्तेजता सर्वथा स्पष्ट एवं सार्थक हुई है क्योंकि सूर्य के चित्र आँखों को चकाचौंध नही कर सकते। अन्य उदाहरण में, असमय में प्रादुर्भूत हुए वसन्त से विचलित चराचर को शिव के प्रमुख गण नन्दी के इशारे पर अवसन्न बताया गया है। नन्दी मुख पर अगुली रखकर जब गणो को सावधान करता है तो उसके इशारे से वृक्ष निष्कम्प हो जाते हैं, भौंरे मौन साध लेते हैं, पशु-पक्षी सर्वथा मूक व निश्चल हो जाते हैं। चारो ओर ऐसी चुप्पी छा जाती है जैसे समूचा वन चित्र मे छाप दिया गया हो, वास्तविक न हो। सर्वथा गतिशून्यता के लिए कवि को यह बिम्ब इतना पसन्द आया है कि उन्होंने इसकी बार-बार आवृत्ति की है। इससे कवि का चित्रकला के प्रति प्रेम भी प्रकट होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि के दृश्य बिम्बो मे स्थिरता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(2) गत्वर बिम्ब— कालिदास ने गतिशीलता व परिवर्तन आदि को भी बड़ी सूक्ष्मता व सटीकता के साथ प्रतिबिम्बित किया है। अनेक क्रियाओं से निर्मित गत्वर बिम्बों का अंकन कवि अत्यन्त सफलता से करते हैं जिससे गतिशील फिल्म का सा आनन्द आता है। सूर्योदय व सूर्यास्त के चित्रों में, गतिशील पदार्थों व व्यक्तियों के क्रिया-कलापों में गति के सुन्दर बिम्ब मिलते हैं। कालिदास ने तेज गति व धीमी गति दोनो को कलात्मकता से बिम्बायित किया है। उर्वशी होश आने पर धीरे-धीरे अपने आयत नेत्र खोलती है। इस धीमी विकास क्रिया को कवि ने प्रत्यूष काल में धीरे-धीरे खुलती हुई कमल की पंखुड़ियों से दृष्टिगम्य किया है—

'तदेत्तदुन्मीलय चक्षुरायत
महोत्पलं प्रत्युपसीव पद्मिनी।' (वि. 1·5)

इसी प्रकार उर्वशी की मूर्च्छा को त्यागने की अत्यन्त सूक्ष्म गति को भी, चन्द्रोदय काल मे धीरे-धीरे अन्धकार से छूटती हुई रात्रि, धूएं के नष्ट होने से क्रमशः चमकती हुई अग्नि, धीरे-धीरे गंदलेपन को त्यागती हुई गंगा की धारा की सूक्ष्म गति से बिम्बित किया है।[7]

कवि ने गत्वर बिम्बों में तेज गति के वास्तविक चित्र दिये हैं। वेग से दौड़ते रथ व घोड़ो का बड़ा सूक्ष्म और सचित्र वर्णन हुआ है। 'शाकुन्तलम्' में भागते हुए हरिण और घोड़ों के स्वाभाविक बिम्ब हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है।

7. वि. 1/9

वेग से दौड़ते रथ में बैठे राजा को प्रकृति के दृश्यों की जो अनुभूति होती है उसका यथार्थ चित्र कवि इस प्रकार देते हैं—

> यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
> यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
> प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
> र्न मे दूरे किंचित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्॥ (1 9)

जो वस्तु प्रथम आलोक में सूक्ष्म दिखाई देती है अचानक पास पहुँचने से वस्तु अपने विशाल आकार को प्रकट कर देती है। जो वृक्ष आदि परस्पर पृथग्भाव से स्थित हैं—अत्यन्त तेजी से पार होने के कारण वे वृक्ष एक दूसरे से जुड़े-से जान पड़ते हैं। जो वस्तु स्वभाव से वक्र है, जल्दी में उसकी वक्र रेखायें दिखाई न देने से, नेत्रों को सीधी-सी दिखाई देती है। न तो कोई वस्तु पास है न दूर। जो वस्तु कहें कि दूर है वह उसी क्षण में निकट आ जाती है और जिस वस्तु को निकट देखते हैं वह तुरन्त बहुत दूर छूटती जाती है। तेज रेलगाड़ी आदि से यात्रा करने पर इस प्रकार का दृश्य सभी ने प्रत्यक्ष किया होगा। कालिदास ने उसी यथार्थता को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रथम तीन चरणों में तीन बिम्ब हैं जो विरोध पर आश्रित हैं। रथ के वेग से उत्पन्न संभ्रम को चौथी पंक्ति में सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है। यह एक सुन्दर गत्वर बिम्ब है।

'विक्रमोर्वशीयम्' में भी पुरूरवा के रथ के तीव्र वेग का अत्यन्त सचित्र वर्णन हुआ है—

> अग्रे याति रथस्य रेणुपदवीं चूर्णीभवन्तो घना-
> श्चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु वितनोत्यन्यामिवारावलीम्।
> चित्रारम्भविनिश्चलं हरिशिरस्यायामवच्चामरं
> यष्ट्यग्रे समवस्थितो ध्वजपटः प्रान्ते च वेगानिलात्॥ (वि 1 4)

आकाश में बादलों के बीच तेजी से रथ दौड़ रहा है। बीच में आने वाले बादल चूर-चूर होकर उड़ रहे हैं। पहियों के तेजी से घूमने के कारण लगता है मानो पहियों के अरों के बीच में बहुत से अरे बनते जा रहे हों। घोड़ों के सिर के चंवर चित्रलिखित की भाँति निश्चल हैं। ध्वजा का वस्त्र दण्डे से छोर की ओर सीधा तन गया है।

इस चित्र में भी सच्चाई है किन्तु यह आकाश में दौड़ने की अनुभूति है जो सबके द्वारा प्रत्यक्षानुभूत नहीं, इसलिए पहला बिम्ब अधिक सुन्दर लगता है। आकाश से तेजी से उतरते हुए पृथ्वी का दृश्य अन्यत्र दिखाया जा चुका है।[8] तेजी से नीचे की ओर गिरते व्यक्ति को पृथ्वी अपनी ओर आती दिखाई देती है। गति के

---

8 अभि 7/8

लिए यह सुन्दर बिम्ब है। हवाई यात्रा करने वालों के लिए यह दृश्य स्वानुभूत है। अज के युद्ध-प्रसंग में तेजी और फुर्ती का सुन्दर बिम्बांकन हुआ है—

> स दक्षिणं तूणमुखेन वामं व्यापारयन्हस्तमलक्ष्यताजौ।
> आकर्णकृष्टा सकृदस्य योद्धुर्मौर्वीव बाणान् सुषुवे रिपुघ्नान्॥
>
> (रघु. 7·57)

अज तेजी से बाण चलाते हैं। इतनी तेजी से कि देखने वालों को पता ही नहीं चलता कि कब उन्होंने दायें हाथ से तरकस से बाण निकाला और कब धनुष पर रखकर बायें हाथ से छोड़ा। ऐसा लगता था कि कानों तक खिंची हुई धनुष की डोरी से लगातार स्वतः बाण निकलते जा रहे हों। यहाँ अज की फुर्ती को सुन्दर कल्पना से बिम्बायित किया है। कालिदास अपनी कल्पना से सुन्दर भ्रम पैदा कर देते हैं जो वर्ण्य विषय को चक्षुगम्य कर देता है।

कवि की गत्वर बिम्बों के प्रति विशेष रुचि है। अतः वह स्थिर वस्तुओं की भी गतिशील रूप में कल्पना कर सुन्दर बिम्ब-योजना करते हैं। 'जंगमराजधानी' 'जंगमकल्पवृक्ष', 'जंगमचिन्तामणि' 'सञ्चारिणी पल्लविनी लता,' 'सञ्चारिणी दीप-शिखा,' 'गिरिरिव गतिमान्,' आदि कल्पनायें इसकी प्रमाण हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास ने दृश्य बिम्बों में गति की सूक्ष्म व यथार्थ अभिव्यक्ति की है।

कालिदास के दृश्य-बिम्बों में रंग अथवा वर्ण-संवेदना भी विवेचनीय है। कालिदास रंगों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हैं। उनके काव्य बिम्बों में श्वेत, पाण्डु, पीत, पाटल, अरुण, रक्त, नील, हरित, कृष्ण आदि अनेक रंगों का प्रयोग हुआ है। विरोधी रंगों की सह-योजना (Colour-contrast) से भी उन्होंने अपने दृश्यों को सजाया है। श्वेत-श्याम, नील-पीत, रक्त-कपिश आदि विरोधी रंगों के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं। मानव-मुख पर लज्जा, आशा, निराशा, क्रोध, पीड़ा व आनन्द आदि विभिन्न भावों के अनुसार आते-जाते रंगों का भी सूक्ष्म ज्ञान कवि को है। प्रकृति की रंग-बिरंगी छटा का उल्लेख 'ऋतुसंहार' में विशेष रूप से प्राप्त है। अब हम विभिन्न रंगों की योजना को उदाहरणों से स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

श्वेत—श्वेत रंग के लिए कवि ने श्वेत, धवल व गौर आदि पर्यायों का प्रयोग किया है। गौर का प्रयोग अधिकता से किया जाता है जिसमें उज्ज्वलता का भाव निहित है। कवि ने श्वेत वर्ण को चन्द्र, चंद्रिका, कैलास, हिम, कुन्द, कमल रजत, मुक्ता, शंख, मृणाल, दुग्ध व राजहंस आदि पदार्थों से दृश्य किया है। कवि-रूढ़ि के अनुसार हास व यश को भी श्वेत माना है। उदाहरण—

(1) 'कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः' (रघु. 2·35)
(2) 'तुषारगौरार्पितहारशेखराः': (ऋतु. 1·6)
(3) 'व्योम क्वचिद्रजतशंखमृणालगौरैः पयोदैः' (ऋतु. 3·4)

(4) 'शुभ्रं यशो मूर्तं इव' (दुग्ध के लिए) (रघु 2 69)
(5) 'हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु ।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ।।' (रघु 4 19)
(6) 'राशीभूत प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहास ।'
(पू मे 61)

कवि ने स्वर्णिम उज्ज्वलता के लिए भी गौर शब्द का प्रयोग किया है। यथा दावाग्नि के लिए—

'स्फुरति कनकगौर कोटरेषु द्रुमाणाम् ।' (ऋ 1 26)

एव उत्तरीय वस्त्रों के लिए 'कुकुमरागगौरै' ऋ 6 5। कुकुम वर्ण एकदम श्वेत नही होता, धूसरित सा होता है। गौर का यह भेद कनक व कुकुम से भलिभाँति दृश्य हो जाता है।

पाण्डु—पीलापन लिये हुए गोरे रग के लिए कवि ने पाण्डु शब्द का प्रयोग किया है। लज्जा, थकान, विरह व पीडा आदि से शरीर की छवि पीली पड जाती है। ग्रीष्म ऋतु मे रात भर कामिनियो के अनावृत वदन निहारता चन्द्रमा अन्त मे पीला पड जाता है—'निशाक्षये याति ह्रियेव पाण्डुताम्' ।[9] हेमन्त मे स्त्रियो का मुख रतिश्रम से पाण्डुता को प्राप्त कर लेता है—'रतिश्रमक्षामविपाण्डुवक्त्रा' ।[10] इसी प्रकार 'तनूनि पाण्डूनि मदालसानि' ।[11] विरहिणी कामिनी का शरीर जो पीला पड गया है, उसे कवि पकी हुई प्रियगु लता से दृश्य करते हैं—

'प्रिये ! प्रियगु प्रियविप्रयुक्ता विपाण्डुता याति विलासिनीव' ।[12]

अन्तर्वत्नी सुदक्षिणा का मुख 'लोध्रपाण्डु' दिखाई देता है। राजा दशरथ की रानियाँ गर्भावस्था मे पीली पड जाती हैं। उनके रग को कवि ने पकी हुई धान की बालियो से नयनगोचर कराया है—

सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विष ।
अन्तर्गतफलारम्भा सस्यानामिव सम्पद ।। (रघु 10 59)

यहाँ सस्य-सम्पत्ति के बिम्ब से रग के साथ साथ रानियो को भविष्य मे पुत्र रूप फल को उत्पन्न करने वाला भी सूचित किया गया है। गेरुए वस्त्र पहने ऋषि, कवि को 'पाण्डुपत्र' से प्रतीत होते हैं।[13] पाण्डु से मिलता-जुलता कपिश वर्ण है जिसे कवि ने उडती हुई धूलि, ढलती हुई धूप व टिड्डी दल म देखा है—

'विरक्तसन्ध्याकपिश रज' (रघु 13 64)

तथा 'तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु,
पतति परिणतारुणप्रकाश, शलभसमूह इव' (अभि 1 30)

---

9 ऋतु 1/9
10 वही 4/6
11. वही 6/10

रक्तवर्ण—लाल रंग की विभिन्न शेड्स का कवि ने सूक्ष्म अभिव्यंजन किया है। पाटल, ताम्र, कुसुंभी, रक्त आदि अनेक शब्दों से लाल रंग के 'शेड्स' दिये हैं। हल्का गुलाबी रंग पाटल है–'स्त्रीनखपाटलं कुरबकम्'।[14] जागरण से लाल हुए नेत्र प्रतान्त व विपाटल हैं–'रात्रि-प्रजागरविपाटलनेत्रपद्मा'।[15] ताम्रवर्ण पल्लव, पतंग-प्रभा व नन्दिनी गाय में मिलता-जुलता सा है–'पल्लवरागताम्रा प्रभा पतंगस्य मुनेश्च धेनुः'।[16] कुसुंभी 'शेड' स्त्रियों के दुकूलों में देखा है – कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलैः'।[17] वसन्त ऋतु में खिले किंशुकों की रक्तिमा के लिए तोते की चोंच का विम्ब लाया गया है—'किंशुकैः शुकमुखच्छविभिः'[18] एवं जलती हुई लपटों जैसे, लाल किंशुक-पुष्पों से ढंकी पृथ्वी में 'रक्तांशुका नववधू' की कल्पना रंग-सादृश्य पर आधारित है। अस्त होते सूर्य के प्रकाश की लाल लकीर वर्णसाम्य से रक्तरंजित तलवार है।

श्याम—गहरे काले रंग को रूपायित करने के लिए कवि ने पिसा हुआ काजल चुना है शरद् ऋतु व ग्रीष्म ऋतु के स्वच्छ आकाश को रात्रि के समय—'भिन्नांजनसम नभः' व 'भिन्नांजनप्रचयकान्तिनभः'[19] कहा है। वर्षा ऋतु में मेघ कभी बहुत अधिक काले, कहीं नीले और कहीं हल्के भूरे से दिखाई देते हैं। इन रंगों को विभिन्न उपमानों से कवि ने नयनगोचर कराया है—

> नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः क्वचित्प्रभिन्नांजनराशिसन्निभैः।
> क्वचित्सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योम घनैः समन्तात्॥
>
> (ऋ. 2·2)

हरीतिमा को लिये हुए श्याम वन का चित्र रघुवंश में दिलीप के गोचारण प्रसंग में मिलता है जहाँ कीचड़ से निकलते वराहों से, आवास वृक्ष की ओर उन्मुख मोरों से, घास पर बैठे मृगों से सन्ध्याकाल में वन 'सांवला' सा हो रहा है।[20] काले की सबसे अधिक हल्की शेड 'ग्रेश कलर' है—भस्म का रंग, जो कपोत के समान कर्बुर दिखाई देता है—'भस्मकपोतकर्बुरम्'।[21]

---

12. ऋतु. 4/11
13. अभि. 5/13
14. वि पृ. 29
15. ऋतु. 4/15
16. रघु. 2/15
17. ऋतु. 6/5
18. वही 6/21-22
19. ऋ. 1/11 व 3/5
20. रघु. 2/17
21. कु. 4/27

विरोधी रगो के मेल से कवि ने अत्यन्त सुन्दर वर्ण-योजना की है। 'श्वत-श्याम' चित्रो को कवि विशेप प्रेम से रगते दिखाई देते हैं। 'रघुवश' मे यमुना की काली तरगो से मिले श्वेत गगा-प्रवाह का सुन्दर चित्र देने के लिए कवि विभिन्न बिम्ब सजोते हैं—

'कही तो यह धारा इन्द्रनील मणियो से गुँथी श्वेत मोतियो की माला और कही नीले व श्वेत कमलो की मिली हुई माला-सी लगती है। कही नीले हसो से मिले श्वेत हसो की पक्ति के समान और कही श्वेत-चदन और काले अगर से बनाई अल्पना सी लगती है। कहीं वृक्ष के नीचे पत्तो की छाया से युक्त चादनी सी और कही शरद् ऋतु की उस धवल मेघमाला सी जिसके बीच-बीच म से नीलाम्बर झाँक रहा हो। कही भस्म पुते शिवजी के शरीर पर लिपटे हुए काले सर्पों जैसी जान पडती है।[22]

यहाँ श्वेत-श्याम' प्रवाह के लिये जो बिम्ब लाये गये हैं यद्यपि वे परस्पर असम्बद्ध हैं कितु कवि के अपने कल्पना-सूत्र म पिरोए हुए एक हो गये हैं।[23]

इसी प्रकार प्रसव मे दुवल गौरागी कौशल्या के पलग पर स्थित नन्हे साँवले राम के रग-वैषम्य को भी सुन्दर बिम्ब से प्रकट किया गया है—मानो शरत्कृशा श्वेत गगा के तट पर किसी ने नीला कमल चढाया हो।[24] 'मेघदूत' मे मेघ का रग श्यामल है अत उसके योग मे विरोधी रगो के अनेक सुन्दर वर्ण-बिम्ब कवि ने प्रस्तुत किये हैं। यथा—तुषार गौर हिमालय पर स्थित मेघ श्वेत नान्दी बैल के सीगो पर उखाडी गई कीचड जैसा लगता है।[25] चम्बल-प्रवाह मे झुके मेघ की शोभा सगम की भाँति मुक्ता माला से बिम्बित की गई है जिसके बीच मे

---

22 रघु 13/54 से 57

23 "Compare—"It won't do if we admire or criticize black and white presented here as separate disconnected pictures The merging waters have called forth from the poet the images of a pearly necklace, a lotus chaplet, a flight of birds, ornamental leaves, moonlight & shade, the clouds and Lord Shiva himself The Sahridaya will see the thread of imagination that knits them all, and feel the whole truth in a moment of beauty."

K Krishnamurti के 'ऋतम्' Vol I July, 1969 मे प्रकाशित लेख 'Kalidasa and Nature' P 142 से

24 रघु 10/69

25 पू मेघ 55

बड़ा-सा इन्द्रनील जड़ दिया गया हो।[26] मेघ से युक्त गंगा तो स्वय यमुना से संयुक्त संगम है।[27] कैलास पर्वत कटे हुए हाथी दांत की भांति अत्यन्त गौर है, उधर मेघ चिकने पिसे हुए काजल के गहरे काले रंग वाला है, दो सर्वथा विपरीत रंगों की शोभा कवि के अनुसार निश्चल नेत्रों से देखने योग्य होगी। मानो, भगवान बलराम ने कन्धे पर 'मेचक' वर्ण (रेशमी गहरा नीला) दुपट्टा डाल रखा हो।[28] इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि को श्वेत-श्याम रंग योजना के प्रति विशेष मोह है।

कालिदास ने पीत-कृष्ण वर्णों के विरोध से भी सुन्दर प्रेक्षणीय भाव-चित्र उभारा है—

'छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः' आदि पूर्वोद्धृत श्लोक में मेघ के रंग के लिये पहले एक खण्ड विम्ब है 'स्निग्धवेणीसवर्णे' चिकनी काली चोटी के रंगवाला और पूरे श्लोक में एक संश्लिष्ट विम्ब मेघ को पर्वत की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करता है। परिपक्व फलों वाले आम्र वृक्षों से आच्छादित आम्रकूट पर्वत शिखर पर स्निग्ध वेणी के समान कृष्णकान्त मेघ का सौन्दर्य विरोधी रंगों के नियोजन से उत्कर्षाधायक होकर आगे आने वाले मांसल चित्र की समृद्धपीठिका भी उपस्थित करता है। मध्य भाग श्याम एवं शेष भाग पाण्डु वर्ण वाले पृथ्वी के स्तन का यह मांसल सौन्दर्य विरोधी रंगों के स्पर्श से ही इतना मुखर हो उठा है। द्रष्टव्य यह है कि अनुभूत प्राकृतिक व्यापार की पीठिका पर आधारित यह विराट् अप्रस्तुत, मात्र चमत्कार-प्रदर्शन के लिये नहीं लाया गया है। इसमें तो जैसे वैषम्यमूलक वर्ण-योजना में उभरती हुई पृथ्वी का सम्पूर्ण सौन्दर्य ही प्रति-विम्बित हो रहा है।

अनेक रंगों की समवेत-योजना भी कवि ने विम्बों में प्रस्तुत की है। यथा विखरे हुए वैदूर्य जैसे तृणांकुरों से युक्त, ऊपर उठे हुए कन्दली-दलों से भरी, वीरबहूटियों से छाई हुई धरती को उस नायिका के समान बताया गया है, जिसने श्वेत के अलावा सभी रंगों के रत्नाभूषण पहन रखे हों।[29] स्पष्ट है कि कवि की रंग-संवेदना अति सूक्ष्म है।

कालिदास ने भावों के अनुसार चेहरे पर बनते विगड़ते रंगों को भी पकड़ने का प्रयास किया है। किन्तु आंग्लकवि शेक्सपीयर जैसी पटुता, वे इस क्षेत्र में, प्रदर्शित नहीं कर सके हैं। यथा—बुरा समाचार सुनकर भयभीत हुई, शेक्सपीयर की नारी-पात्र 'लुक्रेस' के मुख का रंग, पहले श्वेत चादर पर रखे गुलाबों की

---

26. वही 49
27 वही 54
28. पू.मे. 18
29. ऋ. 2/5

भाँति एकाएक लाल हो जाता है और फिर डर के मारे एकदम सफेद, मानो उस श्वेत चादर से गुलाब हटा लिये गये हो—

> "O, how her fear did make her colour rise!
> First red as roses that on lawn we lay
> Then white as lawn, the roses took away."[30]

कालिदास ने प्रतिद्वन्द्वी राजाओं के परास्त होने पर, विवर्णता से मुक्त होते हुए, इन्दुमती के मुख को, दर्पण की भाँति स्वच्छ होते हुए चित्रित किया है। किन्तु निश्चित रूप से शेक्सपीयर इस क्षेत्र में कालिदास से आगे हैं।

दृश्य-बिम्बों में कालिदास ने प्रकाश व अन्धकार से भी बिम्ब बनाए हैं। 'संचारिणी दीपशिखा' वाले पद्य में राजाओं की आशा व निराशा को प्रकाश व अन्धकार से ही नेत्रगम्य किया गया है। अज के युद्ध-प्रसंग में, धूलि में प्रवाहित रक्त अन्धकार में फैलती प्रात की लालिमा से बिम्बित किया गया है।[31]

दृश्य बिम्बों के विषय में एक बात और उल्लेखनीय है। आधुनिक कवि अक्षरों व विराम चिह्नों से भी उपमान व बिम्बों का काम लेने लगे हैं। जैसे—वह गरीब ठंड से सिकुड़ कर ऐसे बैठा है जैसे वर्णमाला का 'छ'। मनुष्य की ठंड से बचने के लिये घुटनों को छाती में धसाकर बैठने की मुद्रा में 'छ' लग सकता है। हिन्दी कवि डा. रामकुमार वर्मा के महाकाव्य 'एकलव्य' में इस प्रकार की योजना मिलती है। यथा—

> 'गुरु संकेत से वे सब समवेत हुए
> लौटे जैसे चन्द्र पूर्ण है बिन्दु पर।'

द्रोणाचार्य के संकेत से योद्धा चन्द्रबिन्दु की भाँति समवेत हो गये। बिन्दु हैं गुरुवर, एवं चन्द्र का आकार है खड़े हुए योद्धाओं का। चन्द्रबिन्दु की आकृति से उस समय की स्थिति सर्वथा दृश्य है। इसी प्रकार 'दो योद्धाओं के मध्य खड़े द्रोणाचार्य की स्थिति दो अक्षरों के बीच विसर्ग ( ) चिह्न की-सी बताई गई है। भाव यह है कि वे दोनों गुत्थमगुत्था नहीं हो सके, पृथक् रहे।

> 'आकर खड़े हुए वे दोनों ही के मध्य
> ज्यों दो अक्षरों के बीच चिह्न हो विसर्ग का'।

---

30 उद्धृत—'Shakespear's Imagery and what it tells us' by Miss C Spurgeon—p, 257

31 रघु. 7/42

यह चित्र भी अत्यन्त स्पष्ट हैं ।[32]

इस प्रकार के अक्षर-विम्ब निस्संदेह कालिदास के काव्य में प्राप्त नहीं होते । किन्तु लेखिका के मत में यह विम्ब-विधान की श्रेष्ठ कोटि नहीं है । क्योंकि उपर्युक्त किस्म के उपमान बौद्धिकता से प्रेरित होते हैं । वे उपयुक्त चित्र तो अवश्य खड़ा कर देते हैं किन्तु भाव-सम्पत्ति के अभाव में नीरस बने रहते हैं ।

अतः स्पष्ट है कि कालिदास के दृश्य-विम्ब उनकी सूक्ष्म 'पर्यवेक्षण शक्ति' संश्लिष्टता की प्रवृत्ति, व्यापक दृष्टि और सहृदयता के प्रकाशक है । उनमें गति का सूक्ष्म चित्रण एवं सुन्दर मुद्राएँ अंकित हैं । उनकी रंग-संवेदना असाधारण है । संक्षेप में वे उनकी अरूप अनुभूतियो को मूर्त करने में सर्वथा सक्षम हैं ।

स्पर्श-बिम्ब—कालिदास के विम्बो मे प्रभाव की दृष्टि से चाक्षुप के वाद स्पर्श संवेदना को लिया जा सकता है । स्पर्श-विम्बों में शीतलता व उष्णता, कोमलता व कठोरता, मसृणता व रुक्षता आदि का विशेप महत्त्व है । पैनापन, चुभन, गुरुता व लघुता की अनुभूतियाँ भी स्पर्श से सम्बन्धित होती हैं । शृंगार चित्रो मे भी स्पर्श संदवेना की विशेप सभावना रहती है । कालिदास की स्पर्श-सवेदना अत्यन्त व्यापक है । उन्होने उपर्युक्त विविध अनुभूतियों को विम्बों में अभिव्यक्त किया है ।

शीतलता के साथ कवि के मन में एक सुखद व शांतिप्रद अनुभूति जुड़ी हुई है । यथा—'आनन्दशीतामिव वाष्पवृष्टिम्'[33] में एवं आनन्दजः शोकजमश्रुवाष्प-स्तयोरशीतं शिशिरो विभेद'[34] में आनन्द से निकले अश्रुओं का स्पर्श भी शीतल वताया गया है ।

शीतलता मे नेत्रों के आनन्द की अभिव्यक्ति लोक में 'अहा आँखों में ठंटक पड गई' आदि वाक्यो से प्रकट की जाती है । शकुन्तला को इसीलिये 'शारदी ज्योत्स्ना' कहा है—

'क इदानी शरीरनिर्वापयित्री शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति' ।

---

32. देखें 'आधुनिक हिन्दी कविता मे चित्र विधान' पृष्ठ 263–65
ले. रामयतनसिंह भ्रमर
अंग्रेजी आलोचना के आकृति विम्ब (Shape imegery) भी मिलते जुलते इसी प्रकार के विम्ब हैं। देखें 'काव्यात्मक विम्ब' प्रो. अखोरी व्रजनन्दनप्रसाद
33. रघु. 16/44
34. वही 14/3

'शरीर को ठडक पहुँचाने वाली चाँदनी' का बिम्ब शकुन्तला के सौंदर्य को स्पृश्य धरातल पर प्रस्तुत करता है। भवभूति मे इस प्रकार के स्पर्श बिम्बो के प्रति विशेष अभिरुचि है। उन्होंने—

'आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्तर्बहिरपि वा शरीरधातून्'।[35]

व 'त्वममृतवर्तिनयनयो' आदि प्रसिद्ध वाक्यो मे दृश्य रूप को प्रभावशाली ढग से स्पृश्य बिम्बो मे प्रस्तुत किया है। 'आँखो के लिये अमृतशलाका' कहने से विशेष आनन्दप्रद ठडक की अनुभूति होती है।

शीतल स्पर्श का विशेष वर्णन जल, छाया एव वायु के सन्दर्भ मे कवि ने किया है। ग्रीष्म ऋतु मे शीतल स्पर्श से जो आनन्दानुभूति होती है उसका उल्लेख कवि ने 'सुभगसलिलावगाहा' प्रच्छायसुलभनिद्रा '[36] आदि बिम्बो मे व्यक्त किया है। 'ऋतुसहार' म भी 'सुखसलिलनिषेक' 'सेव्यचन्द्राशुहार' मे इसी प्रकार की शीतल अनुभूति है।[37] दिलीप के वनभ्रमण मे सुखदायी स्पर्शवाली वायु उनकी सेवा करती है। आतपक्लान्त व अनातपत्र व्यक्ति के लिये गिरिनिर्झरो के तुषार कणो से युक्त वायु का स्पर्श विशेष सुखदायक है।[38] मेघदूत मे भी वायु के वर्णन मे स्पर्श सवेदना को जागृत किया गया है। '*शिप्रावात*' का स्पर्श प्रियतम के स्पर्श की भाँति सुरतग्लानि को दूर करने वाला है।[39] तप्त व्यक्ति के लिये शीतल पवन की अनुभूति, विरहतप्त दुष्यन्त के शब्दो मे व्यक्त है—

'अगैरनगतप्तैरविरलमालिगितु पवन' (अभि 3 4)

विरहतप्त दुष्यन्त शकुन्तला को अपने प्रति आसक्ति जानकर, अपनी प्रसन्नता शीतलता के स्पर्श के माध्यम से व्यक्त करता है—

'स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जात ।
दिवस इवार्धश्यामस्तापत्यये जीवलोकस्य ॥ (अभि 3 9)

ग्रीष्म मे सारे दिन सूर्य के तपने पर वर्षारम्भ विशेष सुखदायी है। इसके लिये कवि ने 'निर्वापयिता' शीतलता देने वाला कहा है। इस प्रकार शीतल स्पर्श से कालिदास सुख व आनन्द का अनुभव करते हैं।

अति शीत की सवेदना अप्रिय हो सकती है। शिशिर की ठडी वायु और हिमपात का प्रभाव दुखदायी होता है। कालिदास ने 'मेघदूत' मे विरही यक्षिणी को 'शिशिरमथिता पद्मिनी' कहकर शैत्य क दुखद स्पर्श का अनुभव कराया है।

---

35 उत्तररामचरित 3/39
36 अभि. 1/3
37 ऋ 1/28
38 रघु 1/38 व 2/13
39 पू मे 32

किन्तु सामान्यतः कवि ने जीवन के सुखमय पक्ष को ही विषय बनाया है। इसलिये 'ऋतुसंहार में शिशिर ऋतु में कंपाने वाली वायु का चित्रण प्रासंगिक होने पर भी कवि उससे बचकर बन्द लड़कियों के अन्दर के चित्र ही प्रस्तुत करते है जो सुखदायक हैं। इस प्रकार ठिठुरने वाली स्पर्श संवेदना के बिम्बों का कालिदास में अभाव है।

उष्ण स्पर्श के वर्णन 'ऋतुसंहार' में ग्रीष्म के सन्दर्भ में आए है। सूर्य की किरणों से अभितप्त और गर्म धूल के स्पर्श से जलते हुए—रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः', सर्प, मयूर, सिंह, वराह, मेंढक आदि जन्तुओं के चित्र यथार्थ है।[40] ग्रीष्म के सन्दर्भ में निस्सन्देह कवि ने प्रकृति के भीषण पक्ष का भी बिम्बात्मक वर्णन दिया है।

ईर्ष्या, कष्ट, अपमान आदि को कवि ने दाहक बताया है। कोमल स्वभाव वाली शकुन्तला के लिये दुर्वासा का शाप लता के लिये गर्म जल के समान दाहक स्पर्श वाला है—

'को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति'। (अभि. पृ. 288)

विरह में शीतल वस्तुओं का स्पर्श भी दुखदायी व दाहक लगता है—'विनृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः'[41] और रति को मृत्यु के बाद पति से मिलाने वाली चिता की अग्नि भी विरह की अग्नि के सामने फूलों के समान शीतल व कोमल लगती है, उक्ति द्रष्टव्य है—

'अमुनैव कषायितस्तनी सुभगेन प्रियगात्रभस्मना।
नवपल्लवसंस्तरे यथा रचयिष्यामि तनुं विभावसो।' (कु. 4·34)

इस श्लोक में स्पर्शानुभूति को सुन्दर ढंग से गोचर किया गया है। पहली त्वक् संवेदना प्रियतम की रज को शरीर पर मलने की है जिसमें भस्मलेपन से रति को कामदेव के आलिंगन का सुख मिल रहा है। दूसरी संवेदना चिताग्नि व फूलों के स्पर्श की है। विरह के असहनीय शोक के सामने अग्नि का दाहक स्पर्श फूलों की स्पर्श संवेदना प्रदान करता है क्योंकि मृत्यु के बाद वह प्रियतम से परलोक में मिलाने वाला जो है।

विपरीगत भावना से ही विरही यक्ष को बर्फीली पर्वतीय हवाएँ भी आलिंगन के योग्य जान पड़ती हैं—

आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः।
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥ (उ.मे. 47)

---

40. ऋ. 1/13 से 18
41. अभि. 3/3

हिमालय पर्वत के पवनो का आलिंगन यक्ष बडी ललक के साथ करता है—यह सोचकर कि सभवत यह यक्षिणी के शरीर को छूकर आती होगी। यहां रति की भांति यक्ष को हवा से यक्षिणी के स्पर्श की अनुभूति होती है।

हेमन्त ऋतु की किसी सुबह मे हल्की धूप की सुहावनी उष्णता का अनुभव भी कालिदास ने प्राप्त किया है—'मृदुसूर्यकराभितप्ता'[42] और नवयौवन की ऊष्मा के स्पर्श बिम्ब भी उनके काव्य मे मिल जाते हैं।[43]

शीत व उष्ण दोनो अनुभूतियो को समवेत रूप मे भी कवि ने गोचर कराया है। वसन्त के नात्युष्ण व नातिशीत वातावरण मे—

छाया जन समभिवाञ्छति पादपाना नक्त तथेच्छति पुन किरण सुधाशो ।
हर्म्यं प्रयाति शयितु सुखशीतल च कान्ता च गाढमुपगूहति शीतलत्वात् ॥

(ऋ 6 14)

राजा का कष्ट कर राजधर्म, वृक्ष द्वारा सिर पर उष्ण ताप सहकर दूसरो को छाया की शीतलता देने के बिम्ब से मूर्त किया गया है।[44]

इस प्रकार शीतलता व उष्णता को कवि ने त्वक् सवेद्य बिम्बो के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

कोमलता व कठोरता भी त्वचा के विषय हैं। यद्यपि ये कुछ सीमा तक नेत्रसवेद्य भी हैं किन्तु इनका सही परिज्ञान स्पर्श द्वारा ही सभव है। कालिदास ने मानव शरीर व उसके विभिन्न अगो की कोमलता को सवेदित करने के लिये विभिन्न बिम्ब चुने हैं। पुष्प, किसलय, कोपल आदि की आवृत्ति हुई है। शिरीष पुष्प एव मृणाल द्वारा कवि ने कोमल स्पर्श की अनुभूति कराई है। उनके साहित्य से कुछ उदाहरण इस विषय मे द्रष्टव्य हैं। भुजाओ की कोमलता को उन्होने लता, विटप एव शिरीषपुष्प की कोमलता से मूर्त किया है—

'बाहुलतोपधायिनी' (कु 5 12)
'कोमलविटपानुकारिणौबाहू' (अभि 1 22)
'विनम्रशाखाभुजबन्धनानि' (कु 3 30)
'शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू' (कु 1 41)

चरणो की कोमलता के लिये कमल व किसलय के उपमान चुने गये हैं—

'नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन' (माल 3 17)
'किसलयमृदो ' (माल 3 18)

सम्पूर्ण शरीर की कोमलता मृणाल व शरीष पुष्प से सवेद्य की गई है—

---

42 ऋ 4/15
43 वही 5/9
44 अभि 5/7

वालक सुदर्शन—'शिरीषपुष्पाधिक सौकुमार्यः' (रघु. 18·45)
'मृणालिकापेलवमङ्गमादिभिः' (कु. 5·29)
'मृणालकोमलं गात्रम्' (वि. 3·13)

शरदऋतु मे चन्द्रकिरणों का स्पर्श भी अत्यन्त कोमल अनुभूति प्रदान करता है।

उपर्युक्त स्पर्श विम्व कालिदास के युग में अवश्य अनुकूल संवेदना का उद्‌बोधन करते रहे होंगे किन्तु आज के पाठक के लिये पर्याप्त रूढ हो गये है व उनकी विम्बात्मकता का ह्रास हुआ है। हृदय की कोमलता एक अमूर्त भाव है जो न स्पृश्य है न दृश्य, कवि ने मूर्त उपमान से इस अमूर्त भाव को संवेद्य वनाने का प्रयत्न किया है—

'आशावन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानाम्'। (पू.मे. 9)

कठोरता की अभिव्यंजना कालिदास ने वज्र, शिला, अयम् आदि के विम्बों से की है। वक्षस्थल एवं हृदय की कठोरता का प्रायः उल्लेख मिलता है। हिमालय तो स्वभाव से ही प्रस्तर-हृदय है—'प्रकृत्येव शिलोरस्कः'[45] ताडका का वक्षस्थल भी शिला की भाँति है—'शिलाघने ताडकोरसि'।[46] पत्नी पर लगाए गये भीषण कलंक को सुनकर राम का कठोर हृदय वैसे ही फट जाता है जैसे हथौड़े की चोट से तपाया हुआ लोहा फट जाता है—

'अयोघनेनाय इवाभितप्त वैदेहिवन्धोर्हृदयं विदद्रे'।[47]

वाण की कठोरता को कवि ने वज्र से संवेद्य किया है।[48] लवणासुर के द्वारा युद्ध में फेंका गया एक पत्थर यमराज की मुष्टि के समान कठोर वताया गया है—

'प्रजिघाय कृतान्तस्य मुष्टिं पृथगिव स्थितम्'।[49]

कठोरता की अभिव्यक्ति के लिये प्रस्तुत उपमान सर्वथा मौलिक एवं नवीन है।

खुरदरेपन व कर्कशता की अनुभूति भी कालिदास ने सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त की है।

'ऐरावतास्फालनकर्कशेन हस्तेन पस्पर्श तदंगमिन्द्रः'।[50]

---

45. कु. 6/51
46. रघु. 11/18
47. रघु. 14/33
48. अभि. 3/4
49. रघु. 15/21
50. कु. 3/22

व 'कण्डूयमानेन कट कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य' ।[51]

मूज की बनी करधनी का त्वचा से स्पर्श प्रतिक्षण रोगटे खड़े करने वाला होता है। निम्न उदाहरण मे इस चुभन की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति हुई है—

प्रतिक्षण सा कृतरोमविक्रिया व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणा बभार याम् ।

अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया सरागमस्या रशनागुणास्पदम् ॥ (कु 5 10)

कठोरता व कोमलता दोनो त्वक् गुणो को कवि ने एक साथ 'काचनपद्म' के बिम्ब से स्पष्ट किया है। पार्वती का शरीर प्रकृति से कोमल किन्तु सहनशील है।

अत 'ध्रुव वपु काचनपद्मनिर्मित
मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ॥ (कु 5 19)

चिकनेपन से सम्बन्धित बिम्ब भी कालिदास के काव्य मे प्राप्त होते हैं। चिकने मेघ को कवि ने रेशमी व स्निग्ध कहा है—'मेचके वाससीव' व 'स्निग्धवेणी-सवर्णे'।

सुरुचिसम्पन्न कवि को शरीर की तैलीय चिकनाहट पसन्द नहीं है। विदूषक को भय है कि शकुन्तला कहीं तेल से चिकने सिर वाले किसी वनवासी के हाथ न पड़ जावे—

'मा कस्यापि तपस्विन इगुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति'।

शारद्वत के मुख से पुन 'अभ्यक्तमिव स्नात'[52] तेल लगाए हुए व्यक्ति के प्रति वितृष्णा प्रकट की गई है।

रति क्षेत्र में स्पर्श चित्रो का बाहुल्य मिलता है। कालिदास के 'ऋतुसहार' में स्पर्शन, आलिगन आदि के अनेक स्थूल चित्र मिलते हैं।[53] उद्दीपन रूप मे आए प्रकृति वर्णन में इस प्रकार के वर्णन आते हैं किन्तु उनमें सूक्ष्म सवेदनों का अभाव रहता है। पाणिग्रहण के सुखमय स्पर्श का शिव-पार्वती विवाह एव अज इन्दुमती प्रसग में एक ही प्रकार से वर्णन हैं।

'अन्योन्य सस्पर्शनिमीलिताक्षौ' एव

'रोमोद्गम प्रादुरभूदुमाया स्विन्नागुलि पुगवकेतुरासीत्' (कु. 7 66)

व 'आसीद्वर कण्टकितप्रकोष्ठ स्विन्नागुलि सववृते कुमारी' (रघु 7 22)

पुत्र के व्रणचिह्न को छूने के अनुभव का बिम्ब भी 'रघुवश' में प्राप्त है। रघु की वीरता से प्रसन्न हुए राजा दिलीप—

51. रघु 2/37
52. अभि 5/11
53 देखें—ऋ 1/46 व 5/9

'परामृशन् हर्षजडेन पाणिना तदीयभंग कुलिशव्रणांकितम्'[54]

राम के वन से लौटने पर माताओं के द्वारा भी इसी प्रकार राक्षसों द्वारा कृत घावों के सहलाने का भाव चित्र है।[55]

इस प्रकार कालिदास के स्पर्श विम्वों में विविधता एवं सूक्ष्मता है। आधुनिक कवियों में भी स्पर्श चित्रों के प्रति विशिष्ट रुझान हैं। मखमली, रेशमी, हिमानी, मोम सदृश विशेषणों के द्वारा स्पर्श-संवेदना की अभिव्यक्ति मिलती है।

ध्वनि विम्व

ध्वनि विम्व अथवा नाद विम्व वे हैं जिनका ग्रहण कर्णेन्द्रिय के द्वारा किया जाता है। अभिव्यक्ति की सफलता व सप्राणता शब्दों की ध्वनन शक्ति पर पर्याप्त रूप से आधृत है। शब्द एक ओर तो अर्थ की प्रतीति कराके वस्तु अथवा भाव का विम्व मनश्चक्षुओं के सम्मुख जगाते हैं दूसरी ओर ध्वनि से अर्थ को मुखर करके आन्तरिक श्रवणों पर एक ध्वनि चित्र भी उतार देते हैं। कवि गण तीन प्रकार से श्रुति संवेदना की सृष्टि करते हैं। इसका प्रथम रूप 'अनुप्रास' अलकार की योजना है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र का 'ऑनासाटापाइया' इसी का विकसित रूप है। रस व भाव के अनुकूल वर्णों की योजना द्वारा उपयुक्त चित्र खड़ा किया जा सकता है। छान्दस लय को भी इसी के अन्तर्गत रखा जा सकता है। हर छन्द अपना एक अलग ध्वनि विम्व वनाता है। ध्वनि विम्वों का दूसरा प्रकार वह है जहाँ अनुकरणात्मक एवं अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग से वातावरण का सम्मूर्तन किया जाता है। प्रकृति-वर्णन में ऐसे ध्वनि-विम्वों का विशिष्ट महत्त्व होता है। तीसरे प्रकार के श्रव्य विम्व ध्वनि प्रतीकों पर आश्रित होते हैं जैसे—वीणा, मृदंग वंशी, कोकिल आदि की ध्वनि। 'कोकिलकण्ठी' 'हृदयवीणा' आदि इसी प्रकार के विम्व हैं।

वर्ण योजना—कालिदास की वर्ण योजना अत्यन्त समृद्ध है। उन्होंने भावों के अनुकूल वर्णों की योजना कर नाद सौन्दर्य की सृष्टि की है। ओज एवं क्रोध के अवसर पर कठोर वर्णों का तथा माधुर्य वर्णन के अवसर पर कोमल वर्णों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिये वसन्त वर्णन और मदन-दाह प्रसंग लिये जा सकते हैं। नवन झकोरों से थिरकती हुई लताओं का नर्तकी रूप में वर्णन करते समय अत्यन्त सुकुमार वर्ण-विन्यास का आयोजन किया गया है—

श्रुतिमुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो वभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः॥

(रघु. 9·35)

---

54. रघु. 3/68
55. वही 14/4

यहाँ कोमलकान्त पदावली व छान्दस लय मिलकर उपयुक्त वातावरण की सृष्टि मे सहायक हुए हैं। 'मदनदाह' का दृश्य कालिदास की भाषा का प्रोजस्वी रूप प्रस्तुत करता है।

तप परामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभगदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य।
स्फुरन्नुदर्चि सहसा तृतीयादक्ष्ण कृशानु किल निष्पपात।
क्रोध प्रभो सहर सहरेति यावद्गिर खे मरुता चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेष मदन चकार॥

(कु 7 1 22)

कैसी कराल कल्पना है और कैसा विकट पदबन्ध है? प्रथम श्लोक मे शब्दो के साथ ही विकराल भ्रूभग का और लपलपाती हुई अग्नि ज्वालाओं का चित्र सा खिच जाता है। उसके बाद देवताओ की 'रुको, रुको' की ध्वनि भी *इतनी ही तीव्र सुनाई देती है, पर अतत कामदेव की राख की ढेरी के समान ही* भाषा भी उस ऊर्जस्वी रूप को छोडकर सामान्य प्रवाह मे आ जाती है।[56]

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् की निम्न पक्तियो मे अनुप्रास का सौन्दर्य *दर्शनीय है—*

'उत्कण्ठाघटमानषट्पदघटसघट्टदष्टच्छद।' (वि 4 55)
'मदकलकोकिलकूजितरवझकारमनोहरे।' (वि 4 56)

प्रथम पक्ति मे महाप्राण वर्णों की भीड़ 'महमहमिकया' टूटने वाले भ्रमरो की भीड को सजीव रूप मे प्रस्तुत कर देती है। दूसरे उद्धरण मे कोयल की कूज और झकार की मनोहर ध्वनि के साथ मधुर वर्णों की सघनता ने नन्दन वन की *मनोहरता को द्विगुणित कर दिया है।*

तथापि यह मानना होगा कि कालिदास रसानुकूल वर्णयोजना का सर्वदा निर्वाह नहीं कर सके हैं। उनका मोह कोमल वर्णों के प्रति है। 'रघुवश' के सप्तम सर्ग मे युद्ध के अवसर पर वे गौडी रीति का उचित निर्वाह नहीं कर सके हैं। भवभूति एव भट्टारायण कठोर नाद-बिम्बो की योजना में निश्चित रूप से कालिदास से आगे है।

नाद योजना—प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द होते है जो अपने अर्थ के साथ ही सम्बन्धित ध्वनि का भी बिम्ब प्रस्तुत कर देते हैं। इसीलिये कुछ भाषा शास्त्रियो की यह कल्पना है कि प्राचीन काल मे शब्द निर्माण मूल रूप से नादतत्व के आधार पर ही हुआ, कलकल, झरझर, मर्मर, गर्जन,तर्जन, क्वणित, रणित, शिजित, हुकार, गुजार, टकार आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। इन अनुकरणात्मक एव अनुरणनात्मक शब्दो मे ध्वनि-मात्र से अर्थ मुखर करने की विशेष शक्ति होती

56. 'कालिदास की कला और सस्कृति' ले डा देवीदत्त शर्मा, पृ 461

है। प्रकृति और जीवन की मूल अनुभूतियों से सम्बद्ध होने के कारण ऐसे शब्द अकृत्रिम उद्गार तथा प्राकृतिक ध्वनियों को विम्बित करने के लिये विशेष उपयुक्त होते हैं। कालिदास ने ध्वन्यात्मक शब्दों का सफल प्रयोग करके वातावरण को सरसता व सजीवता प्रदान की है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

'मर्मररणितमनोहरे कानने' (वि. 4·35)
'कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिंजितम्' (वि. 4·30)
'मया दष्टाधरं तस्याः ससीत्कारमिवाननम्' (वि. 4·40)
'स्फटिकशिलातलनिर्मलनिर्झर किंनरमयुरोद्गीत मनोहर'
(वि. 4·50)
'क्षुभिताकरुणविहंगमे नदि। अलिकुलझंकारिते नदि'
(वि. 4·53)

'विक्रमोर्वशीयम्' के उपर्युक्त उद्धरणों में मर्मर, रणित, कूजित, शिंजित, सीत्कार, निर्झर, झंकारित आदि शब्दों से विभिन्न प्राकृतिक पदार्थों की ध्वनि के स्वाभाविक श्रुति-विम्ब उपस्थित किये गये हैं। इसी प्रकार—

'सिमसिमायन्ति मे अंगामि' (मा. 260 पृष्ठ)
'हुंकारेणैव धनुषः' (अभि. 3·1)
'भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः' (रघु. 4·73)
'मदकलोदकलोलविहंगमाः' (रघु. 9.37)
'उपसि स गजयूथकर्णतालैः पटपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः'।
(र. 9·71)
'विलोलघण्टाक्वणितेन नागः' (रघु. 7·41)
'पादन्यासैः क्वणितरशना' (पू.मे. 38)
'तालैः शिंजावलयसुभगैः' (उ.मे. 19)
'कुर्वन्सन्ध्यावलिपटहताम्' (पू.मे. 37)
'स्फुटति पटुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु' (ऋ. 1·25)
'क्वणितकनककांची मत्तहंसस्वनेषु' (ऋ. 3·26)

उपर्युक्त उद्धरणों के प्रथम वाक्य में विदूषक के शरीर में विष चढ़ने पर जो अनुभूति हो रही है 'सिम सिम' की ध्वनि से उसकी अभिव्यक्ति विम्बात्मक है। दुष्यन्त के धनुष् की टंकार को 'हुंकार' कहने में सिंह की भाँति बलवान् राजा की, राक्षसों के लिये चेतावनी की ध्वनि भी समाविष्ट हो जाती है। ये शब्द स्वतः बोलते से हैं। इसी प्रकार वायु से हिलते भूर्जपत्रों की 'मर्मर' पक्षियों की 'कल्लोल' ध्वनि-विम्बों द्वारा वातावरण को सजीव किये हुए हैं। 'पटुपटहध्वनि.' में हाथियों के कानों की पट्-पट् और 'क्वणित' में घण्टे की आवाज स्पष्ट सुनाई देती है। करधनी एवं नूपुरों की ध्वनि का विम्ब कर्णपटल पर 'क्वणित' व

'शिजिन' के रूप मे ही उभरता है। हिन्दी छायावादी साहित्य मे क्वरिणत, रणित, शिजित आदि अनुरणनात्मक शब्दो का पर्याप्त प्रयोग हुआ है जो कालिदास से ही गृहीत जान पडते हैं। यथा—

'क्वण क्वणित रणित नूपुर थे
हिलते थे छाती पर हार'। जयशकरप्रसाद

मेघ की 'बलिपटहताम्' में नगाडे की पट-पट बजने की ध्वनि तथा 'स्फुटति' क्रिया मे दावाग्नि द्वारा बासो के फटने की आवाज भी सुनी जा सकती है। इस प्रकार ध्वन्यात्मक शब्दो के प्रयोग से प्रकृति के उपकरण सजीव होकर विशेष सवेदनीय हो जाते हैं। इस प्रकार के ध्वनिचित्रो की रचना मे भवभूति ने और भी अधिक कौशल प्रदर्शित किया है। निम्नलिखित पूर्वोद्धृत श्लोक मे पर्वत की कन्दराओ मे गद्गद् करती गोदावरी नदी की उच्छृखल तरगो का सुदर बिम्ब इसका प्रमाण है—

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो '[57]

नाद-बिम्बो के बारे मे एक बात उल्लेखनीय है। अनुकरणात्मक ध्वनियो का अत्यधिक प्रयोग अथवा केवल चमत्कार के लिये प्रयोग स्थूलता मात्र को जन्म देता है और सर्वथा अवाछनीय है।

इस प्रवृत्ति का विकृत रूप एक अग्रेजी कविता की निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है—

"Thus roared the lions
We want Daniel, Daniel, Daniel
We want Daniel, Daniel, Daniel
G r r r r r r r
G r r r r r r r[58]

कवि के अनुसार यहाँ सिह की ध्वनि का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। किन्तु यह उदाहरण सस्कृत आलोचको के अधमकाव्य (चित्रकाव्य) की कोटि मे जा पडता है। अस्तु, उपर्युक्त उदाहरणो के आलोक में हम यह कह सकते हैं कि कालिदास के नाद-बिम्ब सघन एव मधुर हैं।

ध्वनि व्यजना—ध्वन्यर्थबोधक अनुकरणात्मक शब्दो की सहायता के बिना भी ध्वनि की ऐन्द्रिय कल्पना की जा सकती है। हृदय-वशी या गर्दभ-राग कहने में जो कल्पना है, वह ध्वनि-बिम्ब का श्रेष्ठ रूप माना जा सकता है। भाव यह है कि नाद-कल्पना का अर्थ जानी-पहचानी ध्वनियो की शाब्दिक अनुकृति मात्र नहीं है।

---

57 उद्धृत पृष्ठ 31
58 उद्धृत—'काव्यात्मक बिम्ब'—नगेन्द्र ब्रजनन्दन प्रसाद, पृ 91

अनुकरणात्मक व अनुरणनात्मक शब्दों के अतिरिक्त, काव्य में जहाँ अनुभूति की किसी विशेष स्थिति, भावदशा या क्रियाव्यापार की अभिव्यक्ति ऐन्द्रियग्राह्य ध्वनि द्वारा की जाती है, वहाँ ध्वनि बिम्ब का श्रेष्ठ रूप होता है। ये बिम्ब ध्वनि प्रतीकों पर आश्रित रहते हैं—यथा, वीणा, वंशी, मृदंग, कोकिल केकी आदि। इनके अपने-अपने चाक्षुप बिम्ब भी होते हैं परन्तु वे अप्रासंगिक होते हैं। अपवाद रूप में कवि इन प्रतीकों से चाक्षुप बिम्बों का सर्जन भी करते हैं।

कालिदास ने संगीत के संकेतों से, मानव के धीर-गंभीर व मधुर स्वर से, मेघ के मंद व प्रचण्ड गर्जन से, पशु-पक्षी व अन्य पदार्थों की विभिन्न ध्वनियों से, पर्वतादि में गूंजने वाली प्रतिध्वनि से सुन्दर श्रव्य बिम्बों का सृजन किया है।

संगीत में कवि की गहरी पैठ है। कण्ठ संगीत एवं वाद्य संगीत दोनों के सुन्दर बिम्ब उनके काव्य मे मिलते हैं। हिमालय में शिवजी के चरणचिह्न से युक्त शिला पर पहुँचकर जब मेघ गरजता है तो कवि संगीत का निम्न रूपक प्रस्तुत करते हैं—

> शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
> संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।
> निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
> संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः॥ (पू. मे. 59)

यहाँ कीचक मे वंशी की ध्वनि की कल्पना, किन्नरियों के गाने की कल्पना एवं मेघ की ध्वनि मे नगाड़े की ध्वनि की संगीत कल्पना श्रोत्रेन्द्रिय को परितृप्त करती है। वंशी व नगाड़े के साथ कण्ठस्वर की कल्पना अपने आप में पूर्ण है। यहाँ मेघ के स्वर में मृदग की थाप की कल्पना मेघ के गम्भीर घोप को मांसलता प्रदान करती है इसके विपरीत 'मालविकाग्निमित्रम्' के निम्न श्लोक में मृदंग की थाप में मेघ-गर्जन की मनोरम कल्पना मिलती है—

> जीमूतस्तनितविशंकिभिर्मयूरै
> रुद्ग्रीवैरनुरमितस्य पुष्करस्य।
> निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था
> मायूरी मदयति मार्जना मनांसि॥ (मा. 1·21)

मालविका के नृत्य अवसर पर वाद्य संगीत प्रारम्भ होता है। जैसे ही मृदंग पर मध्यम स्वर मे मिली हुई थाप पड़ती है, मोर उसे मेघ-गर्जन समझ उद्ग्रीव हो कूकने लगते हैं। वह मायूरी थाप श्रोताओं का मन मुग्ध कर देती है। मयूरों को उन्मत्त करने के कारण ही इस थाप विशेष को 'मायूरी' कहा है। संगीत के जानकार 'मध्यम' स्वर की संवेदना भी ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि वाद्य 'मध्यम' स्वर में मिलाये गये हैं। चतुर्थ चरण में 'मकार' की अनुवृत्ति से मृदंग की तालध्वनि का मनोरम अनुकरण भी लक्षित होता है। कवि ने यहाँ अपने संगीत ज्ञान से पाठकों के

लिए पनि सूचकर तत्त्व एकत्र किये हैं। राजा को तो यह शब्द ऐसा लगता है मानो सिद्धि के मार्ग पर उतरते हुए उनके मनोरथ की ही आवाज हो।[59] राजा के मन की इस अमूर्त ध्वनि को कालिदास का कवि हृदय ही सुन सकता है और उनका कलाकार ही उसको मूदग घाप के इन्द्रियगम्य रूप में प्रस्तुत कर सकता है।

सगीत के अतिरिक्त कालिदास ने मानव स्वर की मधुरता, गभीरता व कठोरता आदि को विभिन्न बिम्बो से गोचर किया है। पार्वती का स्वर अत्यन्त अभिजात व अमृतवत् मधुर है, उसके समक्ष कोयल का स्वर भी कानो को बेसुरा सा प्रतीत होता है।[60] 'रघुवश' मे भगवान विष्णु की देवताओ के प्रति उच्चरित वाणी के गुरु गभीर स्वर के लिए कवि ने सुन्दर ध्वनि बिम्ब दिया है—

अथ वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना।
स्वरेणोवाच भगवान् परिभूतार्णवध्वनि॥ (रघु 10 35)

इस बिम्ब मे वाणी की गुरुता व गूज स्पष्ट सुनी जा सकती है। अप्रिय वाक्य को कवि ने 'श्रवणकटु' द्वारा सवेद्य किया है।[61] अप्सराओ के करुण क्रन्दन को कवि ने अनेक श्रोत उपमानों से बिम्बित किया है—'आर्त कुररी पक्षियो का शब्द' कुसुमरस से मत्त भ्रमरो का कलरव, परभृत का धीर नाद एव कलमधुर सगीत'।[62] सच तो यह है कि कवि को जगत् के विभिन्न स्वरो की सच्ची अनुभूति प्राप्त है जिससे उन्होंने प्रकृत ध्वनियो को अभिव्यक्त किया है। पशु-पक्षियो की ध्वनियो का वास्तविक चित्रण प्रकृति वर्णन के प्रसगो मे देखा जा सकता है। मयूरो की 'षड्ज-सवादिनी केका'[63] एव 'वयसा विरावै'[64] मे न केवल दिलीप अपितु कालिदास का भी 'आलोकशब्द' सुनाई देता है। कहीं मधुकर गीत गा रहे हैं तो परभृत तुरही बजा रहे है।[65] प्रात काल कवि को विहगो की कूजन मे बन्दियो का मगलगान सुनाई देता है।[66] हसो की आवाज मे कवि को नूपुर व करधनी की आवाज सुनाई देती है और नूपुर बजने पर राजहस की ध्वनि याद आती है—

'चरणैं सनूपुरैं पदे पदे हसरुतानुकारिभि।' (ऋतु 1 5)
'सोन्मादहसरवनूपुरनादरम्या' (3 1)

---

59 भा 1/22
60 कु 1/45
61 रघु 6/85
62 वि 1/3
63 रघु 1/39
64 वही 2/9
65 वि 4/12
66 रघु 7/71

'काम्यं चं हंसवचनं मणिनूपुरेषु' (3·27)

प्राकृतिक ध्वनियों में कवि 'कीचक ध्वनि' से विशेष प्रभावित जान पड़ते हैं। जंगल में तेज हवा चलने पर बांस के झुरमुटों में वंशी जैसी आवाज सुनाई देती है, जिसका कवि ने अनेक स्थानों पर लगाव के साथ उल्लेख किया है—

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ।
शुश्राव कुंजेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥
(रघु. 2·12)

एवं 'शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः'[67] आदि मेघ के विभिन्न मंद व तीव्र गर्जन के ध्वनि-विम्ब मेघदूत में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। कठोर ध्वनियों के विम्ब अस्त्र-शस्त्रों के प्रसंग में भी वर्णित हुए हैं। कालिदास के धनुर्ज्या की कठोर ध्वनि का विशेषतया उल्लेख किया है। उसे कही आंधी के समान और कहीं मथ्यमान समुद्र के प्रचण्ड नाद से उपमित किया है।[68]

रथ की श्रोत्राभिराम ध्वनि भी कवि को विशेष प्रिय ज्ञात होती है। दिलीप को उसमें अपने पूर्ण मनोरथ की प्रतिध्वनि सुनाई देती है, और शिखण्डियों को मेघ की गर्जना।[69]

प्रतिध्वनि एवं गूंज के द्वारा भी श्रेष्ठ ध्वनि प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। पर्वत की खाली गुफा अथवा बड़े-बड़े रिक्त भवनों में शब्द का प्रतिशब्द सुनाई दिया करता है। इसके आधार पर श्रेष्ठ ध्वनि-विम्ब का सृजन हो सकता है। हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त के प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' से एक उदाहरण यहां अप्रासंगिक न होगा—

"बोले नृप, 'राम नहीं लौटे' ?
गूंजा सब धाम, 'नहीं लौटे' ।"

यहां 'नहीं लौटे' इस पद की आवृत्ति से उपस्थित लोगों की मूकता एवं वातावरण की प्रतिध्वनि का सफल अंकन मिलता है। कालिदास ने भी अपने काव्यों में गुहागत प्रतिध्वनि को विम्बों द्वारा संवेद्य किया है। सिंह द्वारा आक्रान्त गाय का करुण क्रन्दन गुफा में प्रतिध्वनित होने से दयालु राजा को दुगुने स्वर से पुकारता-सा सुनाई देता है—

---

67. पू.मे. 59 व रघु. 4/73
68. रघु. 3/59
69. वही 2/72 व 1/39

'तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् ।[70] इसी प्रकार सिंह की प्रतिध्वनि के रूप में मानो हिमालय भी राजा से 'अपने शरीर-रक्षा' हेतु निवेदन करता बताया गया है ।[71] पुरूरवा की पर्वतराज से किया गया प्रश्न जब सकारात्मक उत्तर के रूप में प्राप्त होता है तो वे बड़े प्रसन्न होते हैं। यह तो वे बाद में समझ पाते हैं कि यह उन्हीं के शब्दों की गूँज है—

'सर्वक्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वांगसुन्दरी ।
रामा रम्ये वनान्तेऽस्मिन् मया विरहिता त्वया' ॥ (वि 4 51)

प्रतिध्वनि की यह सुन्दर कल्पना है ।

इस प्रकार कालिदास के बिम्बों में श्रुति सवेदना अनेक प्रकार से ध्वनित हुई है । उन्होंने एक स्थान पर तो ध्वनि का बहुत ही सूक्ष्म एव भावमय प्रयोग किया है । बहुत दिनों से सन्तान की प्रतीक्षा करने वाले राजा दिलीप को रघु के जन्म होने पर अन्तःपुर में जा चारों ओर एक दूसरे से कहा जाता हुआ वाक्य 'लड़का हुआ है' सुनाई देता है, वह ध्वनि उसके कानों को कितनी प्रिय लगती है इसकी अभिव्यक्ति कवि स्वाद स्तर पर करते हैं—

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसम्मिताक्षरम् ।
अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥

(रघु 3 16)

'कुमारजन्म' के वाक्य सुनने से जो राजा की श्रोत्रेन्द्रिय परितृप्त होती है उसका कुछ अनुमान उसके द्वारा दिये गये दान से किया जा सकता है ।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कालिदास की श्रोत सवेदना अत्यन्त जागृत है एव उनका काव्य ध्वनि-बिम्बों का धनी है ।

गन्ध बिम्ब

गन्ध बिम्ब काव्य में विरल होते हैं । गन्ध-सवेदना का मम्मूर्तीकरण अपेक्षाकृत जटिल कार्य है । इस दृष्टि से वही कवि विशेष सफल हो सकता है जो तत्तन् पदार्थों की विशिष्ट गन्धों को चतुर विशेषज्ञ की भाँति परख सके और सार्थक विशेषणों द्वारा उनको सवेदनीय भी बना सके । इसके लिए घ्राण-शक्ति की तीव्रता भी अपेक्षित है । गन्ध बिम्बों की बिम्बात्मकता बहुत कुछ पाठक की घ्राणशक्ति पर भी निर्भर है । कालिदास की गन्ध-सवेदना पर्याप्त समृद्ध है । उन्होंने विविध पुष्पों पाटल, अरविन्द, सहकार आदि, विभिन्न वृक्षों—देवदारु, चन्दन, इलायची, लवग व सप्तपर्ण आदि अनेक प्रकार के आसव, लेप, इत्र आदि सामान्य पदार्थों की गन्ध की अनुभूति तो व्यक्त की ही है, शिलाजीत, कस्तूरी व गजमद आदि विशिष्ट गन्धों का

70 रघु 2/28
71 वही 2/51

भी परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सामान्य व्यक्तियों के लिए अपरिचित किन्तु संवेद्य गन्धों का भी चयन किया है, जिनका आगे विवेचन किया जायेगा। उल्लेखनीय है कि सौन्दर्य के गायक कवि के काव्य में गन्धों के ही विम्ब हैं, दुर्गन्ध का कहीं वर्णन नहीं मिलता है।

गन्ध वायु का गुण है अतः वायु के साथ प्रायः कवि ने गन्ध की योजना की है जो वायु की स्पर्शानुभूति के साथ गन्धानुभूति कराके विम्ब को पूर्णता प्रदान करती है। देश और ऋतु के अनुसार कवि वायु को पृथक्-पृथक् गन्धों से संयुक्त करते हैं। वन यात्रा में दिलीप और सुदक्षिणा को वायु, सरोवर के किनारे 'अरविन्द-आमोद' का, घने जंगल में साल के गोन्द की गन्ध का (शालनिर्यासगन्धिभिः) और तपोवन के सन्निकट हवन सामग्री की गन्ध का (पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः) आनन्द प्राप्त कराती है।[72]

रघु अपने दिग्विजय-प्रयाण में विभिन्न प्रकार की सुगन्धों का अनुभव करते हैं। हिमालय पर रघु के सैनिक उन प्रस्तरों पर विश्राम करते हैं जो बैठे हुए मृगों की कस्तूरी गन्ध से वासित हैं।[73] इस प्रसंग में तथा अन्यत्र भी कवि ने गजदान की सुगन्ध का बहुशः वर्णन किया है। सप्तपर्ण गन्ध को इन्द्रियगोचर कराने के लिए वे गजमद की गन्ध का उपमान देते हैं।[74] मलय प्रदेश में इलायची के दानों के हाथियों के पैरों से दबने पर खुशबू फैल जाती है, वह भी कवि को गजमद के समान प्रतीत होती है।[75] निस्सदेह कालिदास का गजमद की गन्ध से अच्छा परिचय है किन्तु आजकल के सामान्य पाठक को नहीं है। अतः उनके लिए ये उल्लेख विम्ब नहीं बन पायेंगे।

कवि के अन्तर में हर स्थान की गन्ध सम्बन्धी 'इमेज' भिन्न है। गोवर्धन की कन्दराएँ शिलाजीत से सुगन्धित हैं—'शैलेयगन्धीनि शिलातलानि' और दक्षिण के समुद्र तट पर लौंग से सुगन्धित वायु बहती है।[76] मेघदूत में दक्षिण वायु को देवदारु के क्षीर से सुरभित कहा गया है।[77]

---

72. रघुवंश 1/38, 43 व 53
73. वही 4/74
74. वही 23/4
75. रघुवंश 4/47
76. वही 6/51 व 57
77. मेघ. पू. 50

ऋतु के अनुसार बदलती पवनगन्ध का कालिदास का ज्ञान प्रशंसनीय है। ग्रीष्म में जहाँ 'पाटलसंसर्गिसुरभिवनवाता'[78] का आनन्द है, वसंत में 'चूतामोद-सुगंधि मंदपवन'[79] आम के बौर की महक है।

कालिदास को 'मुख-गन्ध' और 'निःश्वास-सौरभ' ने प्रायः आकृष्ट किया है। यथा—

'तासां मुखैरासवगन्धगर्भैः' (रघु 7 11)
'सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः'
(रघु 9 30)
'प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु' (ऋ 1 3)
'पुष्पासवामोदसुगन्धिवक्त्रो
निःश्वासातिं सुरभीकृताङ्गः'। (ऋ 4'12)
'सुगन्धिनिःश्वासविकम्पितोत्पलम्' (ऋ 5 10)
'मधुसुरभिमुखाब्जम्' (ऋ 6 33)

पार्वती का मुख विशेष रूप से सुगन्धित है। कवि ने बड़े आग्रह के साथ पार्वती की मुख सौरभ के बिम्ब दिये हैं। पार्वती की सुगन्धित निःश्वास से बढ़ी हुई तृष्णा वाले भौंरे उनके बिम्बाधर के आसन्नचर हो जाते हैं—

'सुगन्धिनिःश्वासविवृद्धतृष्णं' बिम्बाधरासन्नचरं द्विरेफम्'।[80]

पार्वति के मुख-सौरभ हेतु कमल व केसर के गन्ध बिम्ब जुटाये गये हैं—

'मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि'[81]
'आर्द्रकेसरसुगन्धि'[82]

शिव अपना नेत्र दुखने पर पार्वती के कमल-गन्धवाली मुख को फूंक से दर्द दूर करते हैं—

'उच्छ्वसत्कमलगन्धये ददौ पार्वतीवदनगन्धवाहिने'।[83]

पार्वती का मुख स्वतः सुरभित है, मदिरा के सेवन से और भी सुगन्धित हो जाता है। जैसे वसन्त में आम का पेड़ अधिक सुगन्धित होकर सहकार बन जाता है।[84]

---

78 अभि 1/3
79 ऋतु 6/36
80 कु 3/56
81 कु 5/27
82 वही 8/76
83 वही 8/19
84 वही 8/78

गन्ध के विषय में यह अत्यन्त सूक्ष्म परिकल्पना है। शृंगार के अन्तर्गत कालिदास ने चन्दन आदि अनेक सुगन्धित लेपों का इन्दुमती व पार्वती के विवाहावसर पर उल्लेख किया है। बालों का कालागुरु आदि से सुवासित करने का वर्णन प्रायः मिलता है। यथा[85]—

'शिरो रुहैःस्नानकषायवासितैः'

'शिरांसि कालागुरुधूपितानि'

'अगुरुसुरभिधूपामोदितं केशपाशम्'

वसन्त में जुटों से चम्पे के महकते फूलों की गन्ध का भी कवि ने अनुभव किया है—

'सुवासितं चारुशिरश्च चम्पकैः'

विवाह-अग्नि से उठते पवित्र धूम से निकलती घृत, शमी, पल्लव, लाजा आदि की गन्ध कवि को खूब पसन्द है।

'हविः शमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः' ।[86]

उपर्युक्त सामान्य गन्धों के अतिरिक्त कालिदास ने असामान्य धरातल से भी कुछ गन्धों को चुना है और सुन्दर विम्ब देकर अपनी उत्कृट संवेदनशीलता का परिचय दिया है। इनमें एक है मिट्टी की सोंधी खुशबू। तुरत की जोती भूमि से निकलती यह गन्ध कवि को बहुत प्रिय है—

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालम्' [87]

वर्षा के कारण पोखर से उठने वाली सोंधी महक राम को सीता के विना अखरती है—'गन्धश्च धाराहत पल्वलानाम् ।[88] यह गन्ध गजराज को भी अत्यन्त प्रिय है। इसको उपमान बनाते हुए कवि निम्नलिखित श्लोक में एक अत्यन्त सुन्दर गन्ध-कल्पना का सृजन करते हैं—

'तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ॥

(रघु. 3·3)

गर्भावस्था में मिट्टी खाये हुए पत्नी सुदक्षिणा के मुख को एकान्त में बार बार सूंघकर भी दिलीप उसी प्रकार अघाते नहीं थे जैसे ग्रीष्मान्त में प्रथम वर्षा से सिक्त पोखर की सोंधी मिट्टी को गजराज बार-बार सूंघता है।

---

85. ऋतु. 1/4, 4/5, 5/12 व 6/3
86. रघु. 7/26
87. पू.मे. 16
88. रघु. 12/27

इतना ही नही कालिदास का ध्यान कवियो द्वारा सर्वथा अछूतो 'रति-परि-मल' की ओर भी गया है—

'य पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥' (पू मे 46)

कालिदास ने राजा दिलीप को यश से सुरभित कर गन्ध-सवेदना का सर्वथा अभिनव प्रयोग किया है—'सुरभिर्यशोभि ' ।[89]

इस प्रकार कालिदास के गन्ध-बिम्ब सर्वथा नय धरातल का स्पर्श कराते हैं और अंग्रेज कवि कीट्स की घ्राण-सवेदना से तुलनीय हैं। कालिदास के गन्ध बिम्बो की विवधता इसलिए और भी प्रभावित करती है क्योंकि गन्ध की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत कठिन होती है। यहाँ तक कि हिन्दी कवि तुलसीदास के काव्य मे तो गन्ध-बिम्बो का एकदम अभाव है।[90]

स्वाद बिम्ब

पूर्वानुभूति मधुर, तिक्त, कटु और कषाय आदि रसना के अनुभवो का काव्य मे बिम्बात्मक ऐन्द्रियानुभव कराना स्वाद बिम्बो का कार्य है। यह ऐन्द्रियबोध का अपेक्षाकृत स्थूल स्तर है। इसीलिये स्वाद-सवेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति कठिन कार्य है। साधारणत कवि मधुर, कटु, कषाय, तिक्त आदि रस्य विशेषणो का लाक्षणिक प्रयोग तो करते हैं, यथा—मधुर आकृति, कटूक्ति आदि, किन्तु प्रत्यक्ष स्वाद बोध को जीवन के उच्चतर सौन्दर्यमूल्यो में रूपान्तरित करने का प्रयास प्राय नही कर सके हैं। विश्व के बहुत कम कवि इस प्रक्रिया मे सफल हो सके हैं। जर्मन भाषा का प्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि रेनर मारिया रिल्के इस क्षेत्र मे एक विरल उदाहरण है।

कालिदास के साहित्य मे स्वाद की कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते हैं। वे रूप व शब्द को स्वाद-सवेद्य बनाने मे सिद्धहस्त हैं। शकुन्तला के सन्दर्भ मे 'किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्' उक्ति अति मधुर है। मधुरता रसना का विषय है, आकृति नेत्रों से देखे जाने की वस्तु है, 'आकृति' को मधुर कहना लाक्षणिक प्रयोग है जिसे आज की आलोचना मे 'विशेषण विपर्यय' का नाम दिया गया है। लाक्षणिक रस्य विशेषणो के अतिरिक्त कवि ने अनेक स्वादो के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। अतुलनीय मधुरता के लिए अमृत का बिम्ब प्राय रूढ हो चला है। कालिदास ने 'रघुवश' म नन्दिनी गाय के आशीर्वादात्मक 'उत्तिष्ठ

---

89 रघु 2/13

90 'तुलसी की बिम्ब योजना' ले सुशीला शर्मा, पृ 68

91 देखें—'आधुनिक हिन्दी कविता मे बिम्बविधान' पृष्ठ 210

वत्स' वाक्य को 'अमृतायमानं वचः' कहकर दिलीप की श्रुति-सम्बन्धी आनन्दानुभूति को स्वाद के स्तर पर व्यक्त किया है। मधु व मकरन्द भी कवियों के प्रिय स्वाद-प्रतीक रहे हैं—

'अपरिक्षतकोमलस्य यावत्कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन'[92]

में प्रस्तुत व अप्रस्तुत दोनों रस-अधररस व पुष्परस इन्द्रिय बोध्य हैं।

शकुन्तला के अछूते सौन्दर्य के लिए प्रयुक्त निम्न आस्वाद विम्ब अविस्मरणीय है—

'मधु नवमनास्वादितरसम्' यहाँ शकुन्तला के रूप के आस्वाद्य पक्ष को ताजा मधु के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया है, इसमें शकुन्तला का मांसल और आन्तरिक दोनों सौन्दर्य व्यक्त है। वसन्त ऋतु का रूप, रंग, ध्वनि व गन्धादि से समन्वित वैभव कवि को कामदेव के रसायन की भाँति स्वादिष्ट जान पड़ता है—

रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः
पुंस्कोकिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः।
मत्तालियूथविरुतं निशि सीधुपानं
सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य॥ (ऋ. 6·35)

कालिदास ने दृश्य के अतृप्तिकर सौन्दर्य को अनेक स्थानों पर 'पा' धातु के प्रयोग से कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। शिव, पार्वती के मदिरापान से मनोहर मुख को देर तक नेत्रों से पान करते रहते हैं—

घूर्णमाननयनं स्खलत्कथंस्वेदबिन्दु मदकारणस्मितम्।
आननेन न तु तावदीश्वरश्चक्षुषा चिरमुमामुखं पपौ॥
(कु. 8·80)

सामान्यतः 'पान' मुख से किया जाता है किन्तु 'आननेन की अपेक्षा चक्षुषा' 'पानक्रिया' के द्वारा कवि ने जो अतृप्ति का भाव जगाया है, अद्भुत है। निम्नलिखित उदाहरणों में भी इसी प्रकार दृश्य को पान क्रिया द्वारा स्वादविम्बों में उपस्थित किया गया है—

वनिष्ठवेनोऽरनुयामिनं तमावर्तमानं वनिता वनान्तात्।
पपौ निर्मेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्॥
(रघु. 2·19)

आश्रम से लौटते दिलीप के सम्बन्ध में नागरिकों ने—

'नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवोषधीनाम्'।

अज जब विदर्भ में राजमार्ग पर निकलते हैं तो नगर की स्त्रियों की समस्त इन्द्रियवृत्तियाँ नेत्रों में प्रविष्ट होकर अज का पान करने लगती हैं—

---

92. अभि. 5/4

ता राघव दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासा सर्वात्मना चक्षुखि प्रविष्टा ॥ (7 12)

कृषि के जीवनस्वरूप मेघों का सौन्दर्य भी कृषिबालाग्रो का पेय बनाया गया है—

'प्रीतिस्निग्धजनपदवधू लोचनैं पीयमान' । (पू मे 16)

कवि ने केवल दृश्य को ही स्वाद सवदना का विषय नही बनाया अपितु ध्वनि को भी सुन्दर ढग मे सम्मिलित करने मे सफलता प्राप्त की है—

'सदेश मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्' । (पू मे 13)

सदेश के शब्दो के लिये 'पीना' क्रिया का प्रयोग यहाँ एक ओर सूक्ष्म सम्मिलित अर्थ का बोध कराना है ग्रौर दूसरी ओर ध्वनि तथा स्वाद के ऐन्द्रिय मिश्रण का भी सौन्दर्य उपस्थित करता है ।

कवि ने सर्वानुभत स्वाद-सवेदनाग्रो के सकेतो से, कई स्थानो पर बडे सहज ढग से मानसिक स्थितियो के चित्र प्रस्तुत किये हैं । राजा दुष्यन्त का, अन्त पुर की सुन्दर व शिष्ट रानियो के होते हुए, वनवासिनी शकुन्तला पर आसक्त होना, विदूषक की दृष्टि म पिण्डखजूरो को खाने मे ऊबे हुए व्यक्ति का इमली पर मन आने जैसा है—

'यथा कस्यापि पिण्डखजूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत्
तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना' । (अभि अक 2)

यहाँ स्वाद की एक विशिष्ट स्थिति को उचित अवसर पर उपस्थित किया गया है जो रोचक है । इसी प्रकार अग्निमित्र का विदूषक मित्र, अपने राजा की मानसिक अवस्था का मजाक उडाता हुग्रा कहता है—

'एतत्खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यण्डिकोपनता' । (माल अक 3)

राजा पहले से ही मालविका के प्रति प्रेमोन्मत्त हुग्रा बैठा है, तभी मालविका आती दिखाई देती है । विदूषक कहता है कि यह 'मदिरोन्मत्त' को और अधिक उन्मत्त करने के लिये 'मिश्री' आ पहुँची । मदिरापान के बाद मिश्री का सेवन और अधिक नशा उत्पन्न करता है । इस प्रकार के सहज चित्र उपस्थित करना कालिदास जैसे महाकवि की ही सामर्थ्य है । अत स्पष्ट है कि कालिदास के काव्य मे विविध प्रकार के स्वाद विम्ब मिलते हैं ।

सह सवेदनात्मक बिम्ब

जैसाकि इस अध्याय के प्रारभ में कहा गया है बिम्ब एक से अधिक इन्द्रिय-सवेदनाग्रो के वाहक हो सकते हैं । प्राय दृश्य रूप तो गन्ध स्पर्श आदि अन्य सवेदनाग्रो के साथ आवश्यक रूप से जुडा ही रहता है, एक श्रेष्ठ बिम्ब सवेदना के एकाधिक स्तरो का एक साथ प्रत्यक्षीकरण कराता है । ऐसे बिम्बों को सह-संवेदनात्मक अथवा मिश्रित बिम्ब कह सकते हैं । संश्लिष्ट होने के कारण मिश्रित बिम्ब का प्रभाव तीव्र और गहरा होता है । सवेदनाग्रों के इस मिश्रण के पीछे

ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में यह सिद्धान्त काम करता है कि वस्तुजगत् की वर्ण-गन्ध मय अनेकता के अन्तर में एकता की सूक्ष्म प्रक्रिया भी चलती रहती है। फलस्वरूप अनुभूति के जटिलतम स्तर पर पहुँचकर वर्ण गन्ध स्वाद और स्पर्श के बीच की स्थूल दूरियाँ समाप्त हो जाती है और अनुभूतियों के विषय परस्पर घुल-मिल जाते है।

सह-संवेदनात्मक बिम्ब का एक रूप तो संवेदन-विपर्यय ही हो सकता है, जहाँ दृश्य की अनुभूति स्वाद के स्तर पर या स्पर्श की अनुभूति दृश्य आदि अन्य स्तर पर कराई जाए।

इस प्रकार के उदाहरण ऊपर आस्वाद्य बिम्बों के अन्तर्गत भी दिये जा चुके हैं। दूसरी प्रकार की सह-संवेदनात्मकता कालिदास के प्रकृति-वर्णन संबंधी लक्षित बिम्बों में परखी जा सकती है। ऋतुवर्णन करते समय कवि ऋतु के राग-रंग, ध्वनि, गन्ध सभी की समाकलित अनुभूति के एकत्र चित्र प्रस्तुत करता है। कालिदास के वसन्त के चित्रों में एक साथ चार-चार, पांच-पांच ऐन्द्रिय संवेदनाओं का आस्वाद है। यथा—'रमणीय सन्ध्या काल है, चमकती चांदनी है, नर कोकिल की मधुर ध्वनि, सुगन्धित पवन, मदमत्त भ्रमरों की गुनगुन, रात्रि में मदिरापान, यह सब मानो कामदेव के रसायन है।[93] यहाँ सन्ध्या व चांदनी मे नेत्रों का आनन्द, कोयल व भ्रमरों की गुंजार में श्रुतिसुख, पवन मे गन्ध व आनन्द दायक स्पर्श व मदिरापान से आस्वाद का अनुभव एक साथ होता है। इसी प्रकार वसन्त का निम्न श्लोक एक साथ अनेक संवेदनाओं का संवाहक है—

मलयपवनविद्धः कोकिलालापरम्यः
सुरभिमधुनिषेकाल्लब्धगन्धप्रबन्धः।
विविधमधुपयूथैर्वेष्ट्यमानः समन्ताद्
भवतु तव वसन्तः श्रेष्ठकालः सुखाय॥ (ऋ. 6·37)

इस चित्र में भी मलय पवन का स्पर्श, कोकिल व भ्रमरों की ध्वनि, सुरभिमधु का सुवासित स्वाद एक साथ चित्रित हुए हैं। वस्तुतः इन वासन्ती चित्रों मे रूप, रस गन्ध, स्पर्श तथा शब्द का वह अपूर्व समन्वय प्राप्त है जो वासन्ती फूलों में प्राप्त होता है।

शकुन्तला के रूप सौन्दर्य वर्णन में मिश्रित संवेदना का एक श्रेष्ठतर स्वरूप प्राप्त होता है। रूप का आलंकारिक वर्णन करते हुए पूर्वोद्धृत निम्न श्लोक मे कवि ने शकुन्तला के लिये अनेक इन्द्रियानुभूतियों से सम्बन्धित अप्रस्तुत संजोए हैं—

'अनाघ्रात पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैः' आदि[94]

---

93. ऋतु. 6/35
94. उद्धृत पृष्ठ 196

अनुभूति के गहन स्तर पर पहुँचकर वर्ण में गंध की अनुभूति होने लगती है और रूप में स्पर्श व स्वाद की भी तो राजा को कभी शकुन्तला अनसूंघे फूल की भाँति ताजा गन्धयुक्त, कभी अछूते पत्ते जैसी स्पर्श कोमल और कभी अनचखे मधु जैसी स्वादिष्ट जान पड़ती है। उपर्युक्त पद्य में एक सुन्दरतम सह-संवेदनात्मक बिम्ब चित्रित हुआ है। यह 'अनघ' रूप का अनमोल चित्र है।

इस प्रकार के मिश्रित बिम्ब कालिदास के साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिल जाएंगे।[95]

(ख) भावात्मक बिम्ब

किसी कवि के बिम्बों का अध्ययन भावों के आधार पर भी किया जा सकता है। यों तो काव्य मात्र के लिये भाव आवश्यक तत्व हैं, काव्य-बिम्ब के लिये भी भाव अनिवार्य है किन्तु इस अध्याय में विशेष रूप से उन बिम्बों की चर्चा की जायेगी, जिनमें संवेदना अथवा वस्तु आदि की अपेक्षा रस-भाव का ही अधिक आकर्षण है।

यहाँ भावात्मकता में बौद्धिकता का भी समावेश अभीष्ट है। वस्तुतः बौद्धिक विचार भी किन्हीं अंशों में भावात्मकता का प्रतिपादन करते हैं और भाव किसी न किसी रूप में बुद्धि का समाधान प्रस्तुत करते हैं। अतः यहाँ भाव व विचार *दोनों का ही ग्रहण मानना* चाहिये, *यद्यपि काव्य में भाव को ही प्रमुख स्थान प्राप्त* रहता है। यहाँ भाव को संस्कृत काव्यशास्त्र के पारिभाषिक 'भाव' ('रतिर्देवादि-विषया व्यभिचारी तथाञ्जित') की संकुचित परिधि में न लेकर उसी विस्तृत अर्थ *में ग्रहण किया गया है, जिस रूप में वह सामान्यतः काव्यचर्चा में प्रयुक्त किया* जाता है।

बिम्ब भावों की व्यंजना का प्रमुख साधन

भाव की सत्ता काव्य में आवश्यक मान लेने पर उसकी अभिव्यक्ति के रूप का प्रश्न सहज ही उठता है। भाव चित्त की 'विशिष्ट चेतन दशा' का नाम है। यह दशा अपने आप में अरूप व अमूर्त होती है। इस अरूपता को मूर्तित करना ही काव्य का लक्ष्य है। भाव काव्य में कथ्य रूप में प्रकट नहीं होता। यदि कहीं प्रकट किया जाय तो स्वशब्दवाच्यत्व दोष माना जाता है। अर्थात् 'क्रोध है' 'प्रेम है' 'लज्जा' है आदि कहने से इन भावों का अनुभव नहीं किया जा सकता, इन्हें दृश्य वर्णनों द्वारा मूर्त बनाकर प्रस्तुत करना होता है। प्राचीन आचार्यों ने इसके लिए व्यंजना का विधान किया है। उदाहरण के लिये रति भाव को लीजिये। भाव रूप में वह हृदय की एक विशिष्ट अनुभूति अथवा अवस्था है जो काव्य में केवल शब्दों

---

95 देखें—पू मे 32, माल 3/4 आदि

के माध्यम से प्रस्तुत नहीं की जा सकती। कवि उसको विभाव, अनुभाव आदि के वर्णनो द्वारा व्यजित करते है। ये विभाव, अनुभाव विम्ब अर्थात् चित्र रूप मे ही प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार रस व भाव की व्यंजना का सशक्त माध्यम विम्ब ही है।

वस्तुतः भाव भी मूलतः अमूर्त या अरूप नही होते। उनके कारण अर्थात् उद्गम स्थल अवश्य ही मूर्त होते है। करुण भाव की उत्पत्ति वाल्मीकि के दृश्य में क्रौंचीविलाप के करुण दृश्य से ही हुई। भय की उत्पत्ति किसी भयानक वस्तु या प्राणी को देखकर ही कवि हृदय मे उत्पन्न होती है। इन भावों की अभिव्यक्ति के लिये भी इसी प्रकार मूर्त एव गोचर माध्यम अपेक्षित हैं। यह मूर्तता एवं गोचरता विम्ब विधान का ही कार्य है। अपने हृदय की करुणा को वाल्मीकि कवि सीता-निर्वासन के दृश्य पाठकों तक संप्रेषित करते है। भय का संप्रेषण ताड़का आदि के भयकर रूप के वर्णन द्वारा करते है। यह सब विम्बविधान का ही क्षेत्र है। मानस साक्षात्कार हेतु कवि विभाव अर्थात् आलम्बन व उद्दीपन का चित्रात्मक विवरण प्रस्तुत करते है। अनुभावो अर्थात् क्रियाओ व मुद्राओं का चित्रण करते हैं जो सदैव विम्ब स्वरूप होती है। सचारियो भी व्यंजना दृश्यों व विम्बों से कराते है। इस प्रकार विम्ब अमूर्त भावो के वर्णन की एक पद्धति है और इस सृष्टि के लिये चित्र-भाषा ही श्रेष्ठ माध्यम है।

अब हम भावों के आधार पर कालिदास के विम्बों को वर्गीकृत कर परखने का प्रयास करेंगे। प्रत्येक कवि प्रत्येक भाव में तन्मय नहीं हो पाता। कवि का जो प्रकृतिस्थ भाव होता है वह उसी में रमकर अधिक सुन्दर विम्ब सृष्टि कर पाता है। कालिदास प्रेम व सौन्दर्य के कवि हैं यह सर्वविदित ही है। यही कारण है कि प्रेम के संयोग, वियोग व करुण के दृश्य उनके कोमल स्वभाव के अनुकूल पड़ते है। सौन्दर्य का कवि वीभत्स के सटीक चित्र नही दे पाता। उत्साह के चित्र भी कालिदास की अपेक्षा भट्टनारायण में अधिक प्रभावोत्पादक मिल जाएंगे। करुण के सम्राट् भवभूति हैं। इस प्रकार भावात्मक विम्बविधान द्वारा कवि के स्वभाव का अच्छा अध्ययन किया जा सकता है।

कालिदास के भावात्मक विम्बो को हम (क) स्थायी भावो (ख) व्यभिचारी भावो एव (ग) सात्विक भावों के क्रम मे ही देखने का प्रयास करेंगे। सर्वप्रथम स्थायी भावो के आधार पर कवि के विम्बो को निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है—

(1) रति (संयोग व विप्रलम्भ)–नायकनायिकागत
(2) रति–देव, मुनि विषयक (भक्ति भाव)
(3) वात्सल्य रति
(4) उत्साह (धर्म, दान, दया, युद्ध)
(5) क्रोध
(6) शोक

(7) भय
(8) जुगुप्सा
(9) शम
(10) हास्य
(11) आश्चर्य

रति (सयोग)

कालिदास के काव्य मे शृ गार के दोनो प्रकार व करुण रस की सर्वोत्तम व्यजना हुई है। विशेषकर शृ गार म कालिदास की निपुणता देखकर जयदेव ने उन्हे कविता कामिनी का विलास कहा है। रति व विलासपूर्ण चित्रो म कालिदास की रचनाएँ भरी पडी हैं। एक सुभाषितकार ने तो शृ गाररस म और ललित पद-योजना मे कालिदास से बढकर अभी तक किसी का भी नही माना है। रति भाव को आस्वादावस्था तक पहुँचाने म विभाव (आश्रय व आलम्बन) का बिम्बात्मक वर्णन प्रथम आवश्यकता है। कालिदास ने अपने काव्यो व नाटको मे नायक नायिकाओ के सुन्दर चित्र खीचे हैं जिनका उल्लेख चतुर्थ अध्याय म मानव बिम्बो के अन्तर्गत किया जा चुका है। रति क्षेत्र मे उद्दीपन विभाव प्रकृत भाव को विशेष रूप से उभारता है। नायक व नायिका के परस्पर हावभाव, चेष्टाओ आदि का बिम्बात्मक वर्णन परस्पर रति को बढाता है। देशकाल का वर्णन भी उद्दीपन का रूप है, जिसके अन्तर्गत परिस्थिति, प्रकृति आदि आती है। कालिदास ने रति म उद्दीपन हेतु प्रकृति के बिम्बात्मक वर्णन प्रस्तुत किये हैं।

'ऋतुसंहार' की प्रकृति मुख्य रूप मे रति भाव के उद्दीपन हेतु ही प्रस्तुत की गई है। रूप, रस गन्ध के अनेक सुन्दर चित्र वहाँ मिलते हैं जिनका विस्तृत विश्लेषण प्रकृति-बिम्बो मे किया गया है। 'कुमारसभव' का वसन्त वर्णन मुख्यत इसी हेतु सजोया गया है। अनुभाव, आश्रयगत वे शरीरिक विकार हैं, जिनसे पाठक व दर्शक को आश्रम के हृदयस्थ रतिभाव का भान होता है। 'कुमारसभव' म शिव की बारात को देखने के लिय उमडती स्त्रियो के हावभावो का सुन्दर चित्रण कालिदास ने किया है। 'रघुवश' मे इन्दुमती के स्वयवर म उपस्थित राजाओ की शारीरिक चेष्टाएँ सचित्र व मनोरजक ढग से वर्णित हुई हैं। इसी प्रकार अज को देखने के लिये गवाक्षो को मुख कमलो से भरती नारियो के चित्र भी विशेष बिम्बात्मक है। यद्यपि ये सभी उदाहरण शास्त्रीय दृष्टि से भावाभास के उदाहरण है क्योकि यहाँ रति उभयनिष्ठ नहीं है किन्तु भावाभास भी भाव का ही एक रूप है वहाँ भाव का अभाव नही माना जा सकता। रति के क्षेत्र म आने वाले व्यभिचारी–यथा लज्जा, आवेग, जडता, औत्सुक्य, चपलता हर्ष आदि को भी कालिदास ने बिम्बो के माध्यम से व्यजित किया है। यहाँ सक्षेप में नायक नायिका गत रति भाव से सम्बन्धित कुछ उदाहरण लेना उचित होगा।

रति क्या है ? और एकाएक इसका आविर्भाव किस प्रकार होता है, इसका सुन्दर चित्र 'कुमारसंभव' में मिलता है। समाधिनिरत शिव जब नेत्र खोलकर उन्मादक परिवेश में पार्वती के विश्व-सम्मोहक रूप को देखते हैं तो एकाएक उनकी दृष्टि किंचित् अधीर होकर मानसिक विचलन के साथ पार्वती के बिम्बाधर मुख पर जा टिकती है।

हरस्तु किंचित् परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशि।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि॥

(कु. 3·66)

इस श्लोक में शिव के मन मे एकाएक पैदा होने वाले रतिभाव का उत्तम बिम्बात्मक वर्णन हुआ है। 'किंचित्परिलुप्तधैर्यत्व' को पुनः अंग बिम्ब 'चन्द्रोदयारम्भ' में 'अम्बुराशिः' की हलचल मे मूर्त किया गया है।

कालिदास के नाटकों में संयोगरति के विलासपूर्ण चित्र उपलब्ध होते हैं। भ्रमर की चेष्टा के बहाने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में रति का सम्पूर्ण चित्र पूर्वोद्धृत निम्न श्लोक में किया गया है—

चलापांगां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमती
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः॥ (1·20)

यहाँ भ्रमर के मिस कामिजन के व्यवहार-दृष्टि-स्पर्श, मृदु कथन, अधरपान आदि के बिम्ब उपस्थित किये गये हैं। भ्रमर की स्वाभाविक चेष्टाएँ अलग बिम्ब बना रही हैं किन्तु यहाँ वास्तविक उपभोग्य चित्र दूसरा ही है जो रति मे परिपूर्ण है।

कालिदास रति के चित्र प्रस्तुत करने में बड़े प्रगल्भ है, इन्हें वास्तव में भ्रमर के बहाने की भी कोई आवश्यकता नही है। 'मालविकाग्निमित्र' में राजा और मालविका का यह चित्र द्रष्टव्य है—

हस्तं कम्पयते रुणद्धि रशनाव्यापारलोलांगुली:
स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामालिंग्यमाना बलात्।
पातुं पक्ष्मलनेत्रमुन्नमयत साचीकरोत्याननं
व्याजेनाप्यभिलापपूरणमुखं निर्वर्तयत्येव मे॥ (4·15)

मुग्धाशकुन्तला अपना रतिभाव न तो सर्वथा छिपा पाती है न प्रकट कर पाती है, उसका व्यापार कुछ इस प्रकार का होता है—

'अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणं
हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्।
विनयावारितवृत्तिरतस्तया
न विवृतो मदनो न च संवृतः॥ (अभि. 2·11)

शकुन्तला राजा से आँखें मिलने पर तुरन्त दृष्टि हटा लेती थी और किसी अन्य बात के बहाने हँस भी देती थी। उसका आँखें चुराना, हँसना उसकी शृगार लज्जा को ध्वनित करते हैं। *शास्त्रीय शब्दो मे यह 'हेला' व 'माट्टायित' भाव* व्यग्य है। इसी प्रकार—

मुहुरगुलिसवृताधरोष्ठ प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्या कथमप्युन्नमित न चुम्बित तु॥
(अभि 3 22)

श्लोक में मुग्धा शकुन्तला का रति व्यवहार 'अगुलि सवरण' 'प्रतिषेधाक्षर' व 'असविवर्तन' की मूर्त क्रियाओ द्वारा अभिव्यक्त हुआ है।

नाटको के अतिरिक्त काव्यो मे भी कालिदास ने अनेक शृगारिक चित्र दिये हैं। 'रघुवश' के उन्नीसवें सर्ग मे अग्निवर्ण के चरित मे अवैध विषयविलास का मुक्त चित्रण हुआ है जो विम्बात्मक होते हुए भी मधुर प्रभाव नही छोडता। इसके विपरीत 'कुमारसभव' मे शिव-पार्वती का विलास बडी मधुर भावविभूति के साथ कवि ने प्रस्तुत किया है। 'कुमारसभव' के अष्टमसर्ग मे रति-सम्बन्धी अनेक विम्ब देखे जा सकते है। 'मेघदूत' यद्यपि विरह का काव्य है किन्तु कवि की विलास भावना ने *स्मृति व मानवीकरण के आधार पर अनेक सयोग* रति के चित्र प्रस्तुत किये हैं। अलका के भवनो का वर्णन करते करते यक्ष वहाँ के रति विलास का स्मरण करने लगता है। अलका का एक रति चित्र इस प्रकार है—

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिल यत्र विम्बाधराणा
क्षौम रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तु गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपा—
न्ह्रीमूढाना भवति विफलप्रेरणाचूर्णमुष्टि॥ (उ मे 5)

यहाँ रति-सम्बन्धी अनेक क्रिया-कलाप विम्बो मे उपस्थित किये गये हैं। यक्षिणी नारियो की रतिलज्जा का सुन्दर चित्रण किया गया है।

'मेघदूत' मे ही मानवीकरण द्वारा कवि ने अनेक रति विलास पूर्ण विम्ब प्रस्तुत किये हैं। मेघ का गभीरा नदी के साथ प्रेम-व्यापार अश्लीलता की सीमा मे पहुँच जाता है।[96] मानवेतर विलास होने के कारण इसे भावाभास रसाभास की कोटि मे रखा जा सकता है। इस प्रकार हम देखते है कि कालिदास के काव्य मे सयोग-रति के विम्बो *की मात्रा सर्वाधिक है*, जो उनके *शृगार प्रेम को व्यजित* करती है।

---

96 पू मेघ 41

रति (वियोग)

विप्रलम्भ रति वर्णन में कालिदास ने असाधारण कुशलता प्रदर्शित की है। उनकी सभी रचनाओं में प्रायः वियोग के चित्र मिलते हैं जिनमें 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' व 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटकों में नायक गत वियोग का सुन्दर चित्रण है। महाकाव्यों में अजविलाप व रति विलाप में भी विप्रलम्भ के विम्ब मिलते यद्यपि यह अन्तः शोक भाव के अधिक निकट है। 'मेघदूत' तो विप्रलम्भ का ही काव्य है। इसका अर्थ वियोग से ही होता है और अन्त भी उसी से हो जाता है। कालिदास के विप्रलम्भ रति के अध्ययन से एक यह उल्लेखनीय बात सामने आती है कि कवि ने नायकों की ही विरह-व्याकुलता के अधिक चित्र दिये हैं। दुष्यन्त, पुरूरवा और यक्ष की विरह-व्यथा के विम्ब जैसे कालिदास ने दिये है, अन्य कवियों मे नायकगत ऐसे विम्ब दुर्लभ हैं। 'मेघदूत' में यक्ष अपनी कल्पना से विरहिणी यक्षणी के जो चित्र देता है वे भी बड़े प्रभावी हैं।

'काव्यानुशासन' के अनुसार विप्रलम्भ की निरुक्ति इस प्रकार है—'सम्भोग-सुखास्वादलोभेन विशेषण प्रलभ्यते आत्मात्रेति विप्रलम्भः' अर्थात् नायक नायिका के परस्परानुराग मे मिलन की निराशा ही विप्रलम्भ है। 'नाट्यदर्पण' के अनुसार 'परस्परानुरक्तयोरपि विलासिनो, पारतन्त्र्यादेरघटनं चित्तविश्लेषणे वा विप्रलम्भः' इस प्रकार वियोग मे नायक नायिका का परस्पर अनुराग तो रहता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता।[97] वियोग मे रति का भाव लगा रहता है जो उसे करुण मे भिन्न बनाए रखता है। पुनर्मिलन की आशा वियोग में संयोग के सुखस्वप्न दिखाती है, वास्तविक मिलन मे काल्पनिक मिलन के चित्र अधिक रंगीन होते हैं। इसीलिये वियोग मे भी आनन्द है।

विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद है—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। कालिदास की रचनाओं में ये सभी स्थितियाँ प्राप्त होती हैं। उनके तीनों नाटकों मे प्रेमविवाह होते हैं अतः 'पूर्वराग' के विम्बों के अच्छे अवसर कवि को प्राप्त हुए हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में इरावती के 'मान' का अच्छा चित्रण हुआ है। 'मेघदूत' में काल्पनिक 'मान' के चित्र है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद व जड़ता, इन प्रेम दशाओं के सुन्दर विम्ब रति चित्रों में कालिदास ने संजोए है। 'मेघदूत' में प्रवास का विस्तृत वर्णन है। 'दशरूपक' के अनुसार प्रवास-विप्रलम्भ में नायिका की अनेक चेष्टाएँ हुआ करती है—अंगमालिन्य वस्त्र मालिन्य, एकवेणीधारण, निश्वास-उच्छ्वास, रोदन, भूमिपतन आदि।[98]

---

97. सा. दर्पण 3/187
98. दशरूपक 4/204

कालिदास ने यक्षिणी की इन सभी अवस्थाओं के सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। विरह मे अगों का असौष्ठव सन्ताप, पाण्डुता, दुबलता, अरुचि, अधीरता, अनालम्बनता, तन्मयता, उन्माद तथा मूर्छा ये दस कामदशाएँ देखी जाती हैं।[99] कालिदास के विरह-चित्रो मे ये सभी दशाएँ बिम्बित की गई हैं।

अब कुछ उदाहरण लेकर हम सक्षेप में वियोग-बिम्बो की व्याख्या करने का प्रयत्न करेंगे। 'मेघदूत' में कवि ने बडी कुशलता मे विप्रलम्भ रति के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। रामगिरि पर बैठा यक्ष स्वय रति-विप्रलब्ध, कृशकाय, विरह की प्रतिमूर्ति बना हुआ है। उसकी इस कृशकाय अवस्था को 'कनकवलयभ्रंशरिक्त-प्रकोष्ठ'[100] के बिम्ब से व्यजित किया गया है। उधर यक्ष अपनी पत्नी की कल्पना करता है और उसके वियोग का जो चित्र करता है वह रति भाव को उभयनिष्ठ बनाकर, काव्य मे विप्रलम्भ चित्रण को सम्पूर्णता पर पहुँचा देता है।

विरहिणी यक्षिणी के चित्रण में कालिदास ने बिम्ब-रचना का चरम निदर्शन उपस्थित किया है। यक्ष को विश्वास है कि उसकी विरह दशा के बिम्बात्मक वर्णन से मेघ उसकी प्रिया को अवश्य पहचान लेगा—

तां जानीथा परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥ (उ मे 23)

प्रिय वियोग मे यक्षिणी, जो यक्ष का दूसरा प्राण है, चुपचाप रहती होगी। उसकी एकाकिनी अवस्था के लिये चक्रवाकी का उपमान बडा व्यजक है। शिशिर मथिता पद्मनी के रूप म यक्षिणी का बिम्ब हृदय द्रावक है जो उसकी क्षीणता की स्पष्ट व्यजना करता है। यहाँ वियोग रति से सम्बन्धित शोक, विषाद, चिन्ता आदि व्यभिचारी भावो की सुन्दर व्यजना हो रही है।

दिन रात रोने मे यक्षिणी की सूजी हुई पलकें, गरम आहो से उडे हुए रग वाले ओठ, हथेली पर टिका हुआ, रूखी अलको मे कुछ-कुछ छिपा हुआ उदास चेहरा, जैसे मेघ से आवृत चन्द्रमा का कान्तिहीन मण्डल, विरहिणी के दैन्य का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है—

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा—
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति॥ (उ मे 24)

---

99 सा दर्पण–3/205

100 पू मेघ–2

यक्षिणी की इस दीनता का पाठक पर करुण प्रभाव होता है। इसी प्रकार के विरह के अनेक बिम्ब कवि ने प्रस्तुत किये है। कभी वह व्याकुल मन से देवताओं की पूजा करती है कभी कल्पना से यक्ष का विरह व्याकुल चित्र बनाती है कभी पिंजड़े में बैठी मैना से पति के बारे में चर्चा करती है।[101] ये चिन्ता, उत्कण्ठा आदि भावों के बिम्ब है। कभी मलिन-वसन-अंक में वीणा रखकर पति के नाम वाले गीत गाती है, किन्तु भावावेश मे निकले आंसूओ को तारो पर से पोंछते-पोंछते स्वरों के आरोहावरोह भूल जाती है।[102] यह बिम्ब विरह की 'मनःसंग' अवस्था को व्यंजित करता है। विरह के प्रथम दिन से ही यक्षिणी देहली पर नित्य पुष्प रखकर गिनती रहती है कि अब विरह के कितने दिन और शेष है ?[103] विरहिणी का निम्न बिम्ब भी अतीव भाव-व्यंजक है—

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-
न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सनिवृत्त तथैव।
चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्ती
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ताम्॥ (उ.मे. 32)

गवाक्ष मे से छनकर आती चन्द्रमा की किरणों को पहले की भांति ठंडा व सुखदायक समझकर यक्षिणी उनकी ओर अभिमुख होती है, किन्तु विरह के कारण वे किरणे उसे जलाने लगती है, इस विष वस्था मे यक्षिणी की पलके आंसुओ से भारी हो जाती है जैसे बदली के दिन अवखिली कमलिनी की भांति न जागती हो न सोती हो।

यहां विरह की अरति या विषयद्वेष अवस्था के लिये मर्मस्पर्शी बिम्ब दिया गया है।

यक्ष की विरहावस्था निम्न बिम्ब में अविस्मरणीय है—

त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागैः शिलाया
मात्मानं ते चरणपतित यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगम नौ कृतान्तः॥ (उ.मे. 37)

विरही यक्ष प्रकृति के पदार्थों मे कही भी समूची प्रिया के दर्शन दुर्लभ देख चि।-रचना में प्रिया की कमनीय काया को निरखना चाहता है। वह उपकरणों के अभाव में पत्थर पर गेरु से मान करती प्रिया का चित्र बना उसको मनाने के लिये चरणो में पड़ना चाहता है किन्तु अश्रु प्रवाह से दृष्टि अवरुद्ध हो जाती है।

---

101. उ.मे. 25
102. वही 26
103. उ.मे 27

निर्दयी देव (अनवसर मे अश्रुप्रवाहित कर) चित्र मे भी सयोग नही होने देता। इस प्रकार मेघदूत मे विरह के अनेक बिम्ब देखे जा सकते है जहाँ रति भाव का पूर्ण-परिपाक हुआ है।

राजा दुष्यन्त के भी विरह चित्र अत्यन्त सजीव हैं। यथा—

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृत
निशि-निशि भुजन्यस्तापागप्रसारिभिरश्रुभि।
अनभिलुलितज्याघाताक मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलय स्रस्त-स्रस्त मया प्रतिसार्यतें॥ (अभि 3 10)

यक्ष की भाँति दुष्यन्त का भी कनकवलय खिसकता रहता है, जो कृशता की व्यजना करता है। कगन की मणियाँ गम आँसुओ मे भीगते रहने के कारण विवर्ण हो गई हैं। कारण हर रात भुजा पर टिके अपागो से आँसू बहते रहते हैं। इससे राजा का रात्रि जागरण सूचित होता है। राजा होने के कारण दिन मे रो भी नही सकता। भुजबन्द को वह बार-बार ऊपर सरकाता है, किन्तु कृश इतना हो गया है कि वह पुन कलाई पर सरक आता है। भ० श० उपाध्याय के शब्दो मे इस श्लोक मे 'निशि' 'निशि' और स्रस्त 'स्रस्त' का प्रयोग द्विरुक्ति द्वारा स्थिति को अत्यन्त करुण बनाने के लिये हुआ है। निशि-निशि, रात-रात, रात के बाद रात, एक के बाद एक लगातार रातें जैसे शेक्सपीयर मेक्बेथ' मे कहता है—'टुमारो एण्ड टुमारो' वैसे ही स्रस्त स्रस्त मे निरन्तर सरकते रहने की ध्वनि है और दोनो की इस ध्वनि मे एक अजीब दर्दभरी बेबसी है सभाल से परे की लाचारी।[104]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास ने विरह व्याकुलता के अनेक स्पष्ट बिम्ब प्रस्तुत किये हैं जो शृगार रस को सफलता प्रदान करने मे एकमात्र कारण है।

(ग) देव रति (भक्ति भाव)

देव, गुरु, मुनि आदि के प्रति जो रति भाव होता है वह भक्ति भाव कहा जा सकता है। कालिदास यद्यपि भक्त कवियो की श्रेणी मे नहीं आते किन्तु कथानक के आग्रह से कई अवसरो पर उन्होने भक्ति भाव का चित्रण किया है। देव विषयक रति का 'कुमारसभव' के द्वितीय सर्ग मे तारक राक्षस से सत्रस्त देवो की ब्रह्मा के प्रति की गई स्तुति मे अच्छा निर्वाह हुआ है। षष्ठ सर्ग मे सप्तर्षियो द्वारा शिव की स्तुति भी कवि के हृदयस्थ, भक्तिभाव को प्रकट करती है। 'रघुवश' का 'दिलीप-गोसेवा' प्रसग भी भक्ति भाव की ही रचना है। दशम सर्ग मे 'विष्णु स्तुति' के प्रसग मे भी देव विषयक रति का मनोहर स्वरूप प्राप्त होता है। यहाँ कवि का भक्तिभाव सुन्दर बिम्बो की सृष्टि करता है। रावण के भीषण अत्याचार

---

104 'कालिदास के सुभाषित' पृ० 121

से पीडित देवगण भगवान विष्णु की शरण में उसी प्रकार जाते है जैसे धूप से व्याकुल पथिक छाया वाले वृक्ष की शरण में जाता है।[105] जैसे एक ही स्वाद वाला वर्षा का जल विभिन्न देशों में वर्षण करने कारण भिन्न स्वाद वाला बन जाता है। उसी प्रकार आप (ईश्वर) निर्विकार होते हुए भी सत्व, रज, तप, तीनों द्वारा अनेक रूप धारण कर लेते है।[106] यहा भक्ति जैसे अमूर्त भाव को सादृश्य भाव विम्ब द्वारा स्पष्टता प्रदान की गई है।

मुनि विषयक रति का चित्रण 'कुमारसंभव' में हिमालय तथा सप्तर्षियों के संवाद में हुआ है। हिमालय सप्तर्षियो अपने घर आया देख अत्यन्त गद्‌गद् हो उठते हैं और अपनी भक्ति विभिन्न बिम्बो के सहारे निवेदन करते है। उल्लेखनीय है कि विम्बो की सृष्टि सदैव,भावावेग की अवस्था में ही सहज है। हिमालय ऋषियों से कहते हैं—

अपमेघोदयं वर्षमदृष्टकुसुमं फलम् ।
अतर्कितोपपन्नं वो दर्शनं प्रतिभाति मे ।।
मूढ बुद्धमिवात्मानं हैमीभूतमिवायसम् ।
भूमेर्दिवमिवारूढं मन्ये भवदनुग्रहात् ।।
अद्यप्रभृति भूतानाधिगम्योऽस्मि शुद्धये ।
यदध्यामितमर्हद्‌भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ।। (6.54-56)

ऋषियों के अचानक दर्शन के लिए बिना मेघ की वर्षा और बिना कुसुम के फलदर्शन का विम्ब दिया गया है. इससे हिमालय की अतिशय प्रसन्नता घोषित होती है। ऋषियों के आगमन मे जो गौरव हिमालय अनुभव करते है उसे भी मूर्त रूपों से स्पष्टकरते है 'मानो' अज्ञानी से ज्ञानी हो गया हूँ, लोहे से सोना बन गया हूँ, अथवा पृथ्वी से स्वर्ग पहुंच गया होऊं"। अन्त में तीर्थ का प्रतीक पवित्रता की व्यंजना करता है। आज से मैं स्वयं को ऐसा विशाल तीर्थ का समझता हूं, जहां आते ही लोग पवित्र हो जाएं, क्योंकि जहां सज्जनो का निवास हो जाए वहीं तीर्थस्थल बन जाता है।' 'रघु-कोत्स प्रकरण' में भी गुरु जन विषयक भक्ति-भाव के चित्र मिल जते हैं। गुरु से शिष्य उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करता है जैसे लोक सूर्य से चेतनता प्राप्त करता है—

'यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः
(रघु० 5·4)

इस प्रकार हम देखते है कि यद्यपि भक्ति के अनेक स्थल कालिदास के कथानकों में आए है तथापि भक्ति के वैसे विम्ब कवि नही दे सका जैसे शृंगार

---

105 रघु० 10/5
106 वही 10/17

रति के दे सका है। कारण भक्ति कवि का प्रकृतिस्थ भाव नहीं है। भक्ति के कहीं अच्छे बिम्ब हिन्दी भक्त कवि तुलसीदास की रचनाओं में मिल जाते हैं, अस्तु।

(घ) वात्सल्य रति (वत्सल भाव)

वत्सल भाव का अति सुन्दर चित्रण कालिदास की रचनाओं में हुआ है। अनपत्यता की व्यथा जितने मार्मिक ढंग से कवि ने व्यक्त की है उतने ही सुन्दर बिम्ब वात्सल्य भाव के प्रस्तुत किये हैं। यद्यपि अपनी सभी कृतियों में कवि ने सन्तान विषयक रति के प्रति आसक्ति प्रदर्शित की है किन्तु कुछ स्थल बिम्ब की दृष्टि से अविस्मरणीय हो गये हैं।

राजा दिलीप को कठिन तपस्या के बाद पुत्र रघु की प्राप्ति होती है। तेजस्वी पुत्र को पाकर दिलीप और सुदक्षिणा उसी प्रकार भाव विभोर हो उठते हैं जैसे कार्तिकेय को पाकर शंकर-पार्वती।[107] पुत्रोत्पत्ति की बात सुनते ही वे अन्तःपुर में जाते हैं और जैसे वायु के रुक जाने पर कमल निश्चल हो जाता है वैसे ही वे एकटक होकर अपने पुत्र का मुंह देखने लगते हैं। जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र में ज्वार आ जाता है, इस प्रकार उनका आनन्द अंगों में नहीं समा पाता।[108] यहां राजा के अपार हर्ष के लिये ज्वार का बिम्ब बड़ा सशक्त है। जब बालक रघु कुछ बड़े होते हैं तो धाय के द्वारा सिखाई बातों को अपनी तोतली बोली में बोलते हैं। धाय की अंगुली पकड़कर धीरे-धीरे चलते हैं और झुककर गुरुजनों को प्रणाम करते हैं। यह सब देखकर पिता प्रसन्नता में फूला नहीं समाते—

> उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्।
> अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः॥
>
> (रघु० 3 25)

यहां कवि ने बालक रघु का अत्यन्त स्वाभाविक व स्पृहणीय बिम्ब प्रस्तुत किया है जो सहृदय को वत्सल भाव में विभोर कर देता है। पिता की भाव विभोरता का चित्र द्रष्टव्य है—

> तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।
> उपान्तसम्मीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ॥

राजा पुत्र को गोद में लेकर गद्गद् हो जाते हैं। स्पर्श सुख से लगता है कि गात अमृत से सिंच गया हो। राजा आँखें मूंदकर (अन्य विषयों से निरत हो) पुत्र स्पर्श के एकान्त सुख का देर तक आनन्द लेते रहते हैं। यहां राजा के आनन्द का सचित्र वर्णन हुआ है जो स्वाद व स्पर्श संवेदना से परिपूर्ण है।

---

107 रघु० 3/23
108 वही 3/17

दुस्यन्त भी अनपत्यता से अभिशप्त है, बालक भरत को देखकर वे पुलकित हो उठते हैं। इस संदर्भ में भरत के मिस एक शिशु का जो बिम्ब कालिदास ने दिया है वह साहित्यिक कौशल का बेजोड़ नमूना है—

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन् ।
अंकाश्रयप्रणयिनस्तनयान्वहन्तो धन्यास्तदंगरजसा मलिनीभवन्ति ॥
(अभि. 7·17)

इस बिम्ब की रचना मे कालिदास ने उच्चकोटि की कल्पना का परिचय दिया है। बालक की अकारण हँसी, उससे कली जैसे दातों का कुछ कुछ चमकना तोतले बोल, और गोद में आने के लिए हुलसना, ये सभी क्रियाएं आकर्षक और सचित्र हैं। बालक का ऐसा सीधा सच्चा किन्तु सूक्ष्म पकड़ वाला और स्पृहणीय चित्र साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। एक आलोचक के अनुसार इस पद्य में सत्यं, शिव सुन्दरं की समन्वित अभिव्यक्ति हुई है। बिम्ब और कल्पना का यह चरम निदर्शन है। वत्सल भाव की यह श्रेष्ठतम बिम्बात्मक अभिव्यक्ति है।[109]

शोक

शोक भाव की व्यंजना कालिदास साहित्य में अनेक स्थलों पर हुई है। 'अजविलाप' व 'रतिविलाप' तो मृत्यु के कारण अनन्त शोक पूर्ण घटनाओं पर आधारित हैं। 'सीता-निर्वासन' व 'शकुन्तला की विदाई' तथा परित्याग के दृश्य भी सहृदय को शोक मग्न करने की क्षमता रखते है। इसके अतिरिक्त 'रामवनगमन' 'दशरथ मरण' आदि अनेक करुण प्रसंग कालिदास की रचनाओं में प्राप्त होते है। कोमल स्वभाव के कवि ने इन स्थलों में अनेक प्रभावशाली बिम्ब प्रस्तुत किये है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। शकुन्तला के विदा होते समय महर्षि कण्व का यह शोक विह्वल रूप सामाजिक के हृदय पर संक्रामक प्रभाव डालता है—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ॥ (अभि. 4·5)

वनवासी होते हुए भी कन्या को विदा करने की बात सोचते ही ऋषि का हृदय भर जाता है, गले मे बोल नहीं निकलता, दृष्टि को कुछ सूझता नही। अवश्य ही यह बिम्ब बहुत दृश्य नही है लेकिन संयमी ऋषि की व्याकुल अवस्था का सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत करता है। तपोवन के जीव जन्तुओं का शोक सर्वथा दृश्य है—

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूर्यः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः ॥ (11)

---

109. अन्यत्र भी देखें वि 5/9, 11 व 12

यहाँ आश्रम की शोकावस्था का व्यजित करने के लिए तीन बिम्ब दिये गये हैं (1) हरिणी, जो घास को उगले दे रही है (2) मयूरी-जिन्होने उदास होकर नृत्य छोड दिया है और (3) लताए जो अचेतन होते हुए भी नित्य साहचर्यवश शकुन्तला के आसन्न वियोग पर पीले पत्तो के रूप म अश्रु बहा रही हैं। विशेष रूप से स्त्रीलिंग निर्देश से कारुणिकता व कोमलता मे अभिवृद्धि हो रही है। पिता की छत्रछाया से वचित होती हुई शकुन्तला स्वय को मलयवृक्ष से उखाडी गई चन्दन लता की भाँति निराश्रित या अत्यन्त कातर हो उठती है—

'(पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याङ्कात्परिभ्रष्टा मलय-तटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवित धारयिष्ये।' वृक्ष से उखाडी गई लता का बिम्ब अत्यन्त करुणोत्पादक है और जब धीर गम्भीर पिता कहते हैं कि 'हे पुत्री तुम्हारे द्वारा कुटिया के द्वार पर लगाई गई नीवार की बेल को देखते हुए तुमको किस प्रकार भूल सकूगा, तो सारा वातावरण ही शोक म डूब जाता है—

शममेष्यति मम शोक कथ नु त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरूढ नीवारबलि विलोकयत ॥ (4 20)

एक प्रकार से यह कण्व की अन्तिम शोक भावपूर्ण उक्ति है जिसम एक छोटी सी 'नीवार बेल' की स्मृति से भावपूर्ण बिम्ब की सृष्टि की गइ है।

'रतिविलाप' अत्यन्त करुण प्रसग है। कुमार सम्भव' का सम्पूर्ण चतुथ सर्ग करुण रस से परिपूर्ण है जहाँ अनेक बिम्बो से कवि न शोक की व्यजना की है। कामदेव के स्थान पर भस्म की ढेरी देखते ही रति बेहाल हो जाती है वह मिट्टी मे लोट-पोट कर बाल बिखेर कर विलख-विलख कर रोने लगती है और सारी वनभूमि को अपने साथ रुलाती है—

अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिंग न धूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदु खामिव कुर्वती स्थलीम् ॥

(कु 4 4)

यहाँ 'वसुधालिंगनधूसरस्तनी' व 'विकीर्णमूर्धजा' विशेषणो ने रति को मानो नयन गोचर करा दिया है। कामदेव का रति को एकाएक छोड जाना वैसा ही है जैसे पानी का बहाव बाँध को तोडकर जल मे बहने वाली कामिनी को छोडकर झटके से निकल जाये।[110] यहाँ अप्रस्तुत बिम्ब रति की दयनीय अवस्था मूर्त करने मे बडा सहायक हुआ है। यहाँ अनेक स्मृति बिम्ब देकर भी शोक भाव की सृष्टि की गई है। रति कहती है, 'एक बार भूल से अन्य स्त्री का नाम लेने पर मैंने तुम्हे मेखला से पीटा था क्या इसीलिए नाराज हो ? या मैंने अपने कर्ण-कमल से तुम्हे पीटा था तो उसके पराग से जो तुम्हारी आँखें दुखने लगी थीं, उसको याद करके

110 कु 4 16

रूठे हुए हो।[111] स्मृति के रूप में आया हुआ यह प्रेम-दृश्य प्रस्तुत शोक भाव को ही परिपुष्ट करता है।

वसन्त के आने पर रति का दुःख स्वजन को पाकर और अधिक बढ़ जाता है। इस दुःख की अधिकता को कवि ने कुशलता से बिम्बायित किया है—

तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसंबाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते॥ (4.26)

यहाँ प्रथम वाक्य में तो 'स्तनसंबाध' व 'उरस्ताडन' मूर्त क्रियाएँ है ही, द्वितीय वाक्य मे 'विवृतद्वारम्' विशेषण दुःख के प्रवृद्ध स्वरूप को मानो साक्षात् आँखो के सामने खडा कर देता है। जैसे किसी बाध का एक द्वार खोल दिया जाए तो पानी वेगपूर्वक घर-घर की ध्वनि से बहने लगता है वैसे ही शोक के, वेग से बहने की तस्वीर सामने उपस्थित हो जाती है।

वायु के झोंके से बुझे दीप की भाँति कामदेव अब वापस नही लौटेगा और रति उस बुझे हुए दीपक की (शोक रूपी) धुंआ उगलती वत्ती की भाँति अवशिष्ट है।[112]

शोकाकुल रति के लिये 'धुन्धुआती वत्ती' का रूपक अत्यन्त कलात्मक है। आकाशवाणी के धीरज बंधाने पर शोककृशा रति शाप बीतने की अवधि की उसी प्रकार बाट जोहने लगी जैसे दिन में दिखाई देने वाले निस्तेज चन्द्रमा की किरणें भी साँझ होने की बाट जोहती है।[113] यहाँ दिन के चन्द्रमा के निस्तेज रूप से रति की शोकावस्था, एवं उसकी प्रतीक्षा से सांझ ढलने का साम्य बहुत उचित एवं अर्थ-पूर्ण है। जैसे शाम बीतने पर चन्द्र किरण पुनः शोभा सम्पन्न हो जाती है वैसे ही शापावधि बीतने पर चन्द्रकिरण सी रति पुनः सौभाग्य लक्ष्मी को प्राप्त होगी।

'अज विलाप' प्रसंग भी रतिविलाप से मिलता है, हाँ, पुरुष की विकलता असामान्य होने के कारण कुछ अधिक ही प्रभावित करती है। शोक से विवर्ण हुए राजा मृत्यु से निष्प्रभ हुई इन्दुमती को गोद में लिए हुए ऐसे प्रतीत होते है जैसे प्रातःकालीन चन्द्रमा के अंक में मृग की धुन्धली छाया हो।[114] अज की सहज धीरता लुप्त हो जाती है, कण्ठ भर आता है और वे साधारण प्राणियों की भाँति करुण विलाप करने लगते है। क्योकि तपाने पर लोहा भी नरम हो जाता है प्राणियो की तो बात ही क्या है?[115] यहाँ शोक के लिये ताप एव वीर अज के लिये

---

111. वही 8
112. कु. 4/30
113. वही 46
114. रघु. 8/42
115. वही 43

लोहे की तुलना सार्थक है। इन्दुमती के अभाव मे अज अपने अर्थहीन जीवन का बडे सरल शब्दो मे स्वरूप खडा करते हैं—

घृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरत गेयमतुर्निरुत्सव ।
गतमाभरणप्रयोजन परिशून्य शयनीयमद्य मे ॥ (रघु 8 66)

अर्थहीनता और सूनेपन का यह अभिधा पर आधारित चित्र है। अज के प्रसग मे कवि ने शोक की बर्छी का बिम्ब दिया है। जैसे जड की जटाएं भवन की तली को छेदकर नीचे घुस जाती हैं वैसे ही शोकशंकु ने राजा के हृदय को बलपूर्वक आर-पार भेद दिया था—

तस्य प्रसह्य हृदय किल शोकशकुप्लक्षप्ररोह इव सौधतल बिभेद ॥
(8 93)

यह बिम्ब शोक की उस असहनीयता को प्रकट करता है जिसने राजा अज के प्राण ले लिये।

'सीता-परित्याग' का प्रसग भी बडा ही करुणोत्पादक है। लक्ष्मण से राम की कठोर आज्ञा सुनते ही सीता, अज व रति की भाँति, शोकाहत होकर सबसे पहले तो मूर्छित हो जाती हैं। कवि ने यहाँ बडा करुण बिम्ब दिया है—

'ततोऽभिषगानिलविप्रविद्धा' आदि पूर्वोद्धृत श्लोक। जैसे लू लगने से लता के फूल झड जाते हैं और वह मुरझा कर पृथ्वी पर गिर पडती है, वैसे ही, इस अपमान की आँधी से आभूषणो को गिराती हुई सीता, माँ पृथ्वी की गोद मे गिर पडी।

कवि ने इस प्रसग मे आलम्बन रूप सीता के इस शोक का आश्रय सहृदय गणो को बनाया है। जब लक्ष्मण सदेश लेकर चले जाते हैं तो सीता बडी असहाय होकर चीत्कार करने लगती हैं। यहाँ सीता के लिये भयभीत कुररी का बिम्ब कवि बडे उचित अवसर पर लाए हैं—'सा मुक्तकण्ठ व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूय।' सीता के इस विलाप से न केवल मानव अपितु तिर्यक् भी प्रभावित हो उठते हैं और वन मे हाहाकार मच जाता है—

नृत्य मयूरा कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्य ।
तस्या प्रपन्ने समदु खभावमत्यन्तमासीद्रुदित वनेऽपि ॥
(14 69)

भयभीत कुररी की आवाज सुनकर वे ही दयालु मुनि उपस्थित होते हैं जो कभी क्रौंचो की आवाज सुनकर महाकवि बन गये थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास ने शोक भाव के अत्यन्त मर्मस्पर्शी बिम्ब दिये हैं।

---

116 रघु 14/54

उत्साह

'रघुवंश' का मुख्य रस वीर रस है। अतः उत्साह भाव की अनेक स्थलों पर व्यंजना हुई है। किन्तु भाषा और भावों से कोमलता के वाहक कवि के उत्साह के वर्णन उतने प्रभावशाली नहीं है जितने शृंगार व करुण के। 'रघुवंश' के राजाओं में भी उनके युद्धवीर के स्वरूप का वर्णन साधारण ढग से ही हुआ है। केवल अज के राजाओ के साथ युद्ध-वर्णन में ही कवि ने अधिक रुचि प्रदर्शित की है। युद्ध वीरता की अपेक्षा दान वीरता, धर्म वीरता व दया वीरता का ही चित्रण 'रघुवंश' में अधिक मार्मिक ढग से किया गया है। दया, धर्म व दान के स्थलो पर उत्साह का रूप करुणा, त्याग व सहनशीलता के भावों में पर्यवसित हो जाता है। उत्साह भाव के वास्तविक विम्ब युद्ध वीरता के प्रसग मे ही प्राप्त होते हैं। उत्साह भाव के विम्ब मे युद्ध का सचित्र वर्णन प्रमुख है। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कवि ने युद्धो के कुछ सचित्र वर्णन दिये हैं। शत्रुघ्न व लवणासुर संग्राम में भी उत्साह के चित्र मिलते है। अज व राजाओं के युद्ध का कवि ने विम्बात्मक वर्णन किया है। यथा—

'जैसे ही शत्रु राजा अज को घेरते हैं, अज, मन्त्रियों को इन्दुमती की रक्षा में नियुक्त कर स्वय शत्रु सेना को रोककर उसी प्रकार खड़े हो गए जैसे बाढ के दिनो में ऊँची तरंगो वाला शोणनद गगाजी की धारा को रोक लेता है।'[117] यहाँ अज के लिए शोणनद का विम्ब सर्वथा मौलिक है। शत्रु की सेना को गगा की धारा व अज को ऊँची तरंगों वाला नद कहने से अज का उत्साह व विक्रम लक्षित होता है। 'उत्तरंगः' से अज का उत्साह जैसे मूर्त दिखाई देता है। आगे युद्ध का विम्बात्मक वर्णन है—लड़ाई छिड़ गई। पैदल पैदलों से, रथी-रथियों से, घुड़सवार घुड़सवारो से और गज सवार गज सवारो से भिड़े हुए हैं। इतनी तुरहियाँ बज रही हैं कि कुछ सुनाई नही देता। नामांकित बाणों से ही योद्धाओं का परिचय ज्ञात हो रहा है। घोड़ो की टापो, रथ के पहियो और हाथियों के कर्णतालों से इतनी घनी धूल हो गई है कि कुछ सूझता नही और लगता है जैसे सूर्य को कपड़े से ढक दिया गया हो।[118] जैसे समुद्र की दो लहरें आगे-पीछे झोका लेने वाली वायु से क्रमशः घटती-बढ़ती रहती हैं वैसे ही दोनों सेनाएँ कभी हारती और कभी जीतती थी।[119] पराक्रमी अज वैसे ही शत्रु सेना में बढ़ते जाते हैं जैसे घास-फूस में अग्नि।[120] यहाँ

---

117. रघु. 7,36
118. रघु. 7/36
119. वही 37 से 41
120. वही 55

अज के लिए अग्नि का बिम्ब उनके अतुल पराक्रम को व्यंजित करता है। आगे कवि अज को प्रलयकाल में जल को चीरने वाले वराह का बिम्ब देते हैं—

रथी निषंगी कवची धनुष्मान्दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः ।
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ॥

(रघु 7 56)

इस श्लोक में प्रयुक्त सभी विशेषण अज का उत्साह और स्वाभिमान से परिपूर्ण चित्र खड़ा करने में सहायक हुए हैं। महावराह का उपमान भी इसमें सहायक हुआ है। अज की बाण चलाने में फुर्ती का कवि ने 'स दक्षिण तूणमुखेन '[121] आदि पूर्वोद्धृत श्लोक में बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया है।

'यह पता ही नहीं चलता था कि कब उन्होंने दाएं हाथ से बाण निकाला, *कब बायें में लिया, कब डोरी खींची, और कब बाण छोड़ा तथा फिर कब दूसरा* बाण निकाला, अपितु ऐसा लगता था कि एक बार कान तक खींची हुई धनुष की मौर्वी स्वयं ही शत्रुघ्न बाणों को पैदा करती जा रही है।' इस प्रकार इस समस्त वर्णन में उत्साह भाव की व्यंजना है। युद्ध में जीतने पर उत्साही अज की वह मुद्रा भी बड़ी रीझने लायक है जब वह शिरस्त्राण हाथ में लिये हुए हैं, बाल मुख पर बिखरे हैं पसीना छाया हुआ है और धनुष के एक सिरे पर बाहु टिकाए इन्दुमती से कहते हैं—'चलो युद्ध में बालकों की तरह सोए पड़े अपने बहादुर आशिकों को तो देखलो।' [122]

क्रोध

कालिदास की रचनाओं में क्रोध भाव के व्यंजक अनेक बिम्ब हैं। घटनाओं एवं उपमानों से कवि ने क्रोध की सफल व्यंजना की है। भौंहों को टेढ़ा होना, आँखें लाल होना, दाँत पीसना, झपटना आदि अनुभावों के वर्णन में क्रोध भाव के बिम्ब बनते हैं। कालिदास ने क्रोध के सजीव चित्र दिये हैं। क्रोध का एक सशक्त बिम्ब 'कुमारसम्भव' में कामदहन अवसर का है। कामदेव के प्रभाव से जब शिव की समाधि भंग हो जाती है तो तप में विघ्न होने से उन्हें काम पर अत्यन्त क्रोध आता है उस समय उनके बढ़े हुए क्रोध से भृकुटियाँ चढ़ जाती हैं मुख मण्डल इतना विकृत हो जाता है कि देखा नहीं जा सकता। अचानक उनका तीसरा नेत्र खुल जाता है और उससे एकाएक आग की लपटें निकलने लगती हैं—

'तपःपरामर्शविवृद्धमन्योः' आदि पूर्वोद्धृत श्लोक [123]

---

121 पृष्ठ 247

122 रघु 7/66

123. पृष्ठ 262

रुद्र का यह रूप गजब का है। कालिदास की भाषा भी अपनी सहज कोमलता को छोड़ ओज रूप धारण कर लेती है। 'स्फुरन्नर्चिः' शब्द से ही लगता है जैसे चिनगारियाँ-स्फुलिंग निकल रहे हों और वह क्रोध की लपटें इतनी तेजी से निकलती है कि आकाश में भ्रान्त देवगण चिल्लाते ही रह गए कि 'रोको, रोको, क्रोध को रोको प्रभो।' और तब तक काम राख की ढेरी हो जाते हैं।[124] क्रोध का यह चित्र सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में अनुपम है।

पार्वती के क्रोध का भी कवि ने सुन्दर बिम्ब दिया है। उनका क्रोध शिव से सर्वथा भिन्न है। बार-बार अपने आराध्य की निन्दा करने वाले पर उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। ब्रह्मचारी के प्रतिकूल बोलने से पार्वती का चेहरा क्रुद्ध हो जाता है अधर काँपने लगते हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, भौंहें चढ़ जाती हैं और तिरछी दृष्टि से वह उसको तरेरने लगती है—

> इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया।
> विकुंचितभ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते॥
>
> (कु. 5·74)

पार्वती की यह क्रोध-मुद्रा अति स्वाभाविक है। शकुन्तला का क्रोध कुछ अधिक ही भयंकर है। राज सभा में दुष्यन्त जब उसे पहचानने से इन्कार कर देता है और उसे कोयल के समान स्वार्थिनी बताने लगता है तो शकुन्तला दुष्यन्त को क्रुद्ध होकर तृणाच्छन्न कुएं की भाँति ढोंगी और विष से भरा घड़ा कहती है। उस समय उसकी क्रुद्ध प्रतिमा कालिदास ने निम्न शब्दों में खींची है—

> भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
> भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य॥ (अभि. 5·23)

अत्यन्त लाल आँखें कर शकुन्तला ने जो अपनी पहले से ही कुटिल भौंहों को चढ़ाया तो ऐसा लगा कि मानो अत्यन्त क्रुद्ध होकर कामदेव के धनुष को ही तोड़ डाला हो—न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी—सारा गड़बड़ घोटाला कामदेव के ही कारण था, अतः काम के धनुष को तोड़ने का बिम्ब अनन्त अर्थ की व्यंजना कराने में समर्थ हुआ है। कवि का यह उत्प्रेक्षा बहुत ही सुन्दर, मार्मिक व गम्भीर है।

क्रोध भाव के लिए कवि स्थान-स्थान पर अग्नि का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं। अग्नि में तपाने व कष्ट देने की सामर्थ्य होने के कारण यह क्रोध भाव का अच्छा व्यंजक है। नन्दिनी के विनाश से क्रुद्ध ऋषि वसिष्ठ से कवि ने 'कृशानुप्रतिमा' की

---

124. कु. 3/72
रघु. 2/49

कल्पना की है। कार्तिकेय की शक्ति को देखकर तारकासुर की क्रोधाग्नि उद्दीप्त हो जाती है– उद्दीप्तकोपदहनो'। अन्यत्र भी क्रोध को अग्नि का उपमान दिया है।[126]

धनुर्भंग के प्रसग मे परशुराम के क्रोध की सफल अभिव्यक्ति बिम्बो मे हुई है। यहाँ भी परशुराम की दृष्टियो को क्षत्रियो के लिए क्रोध रूपी अग्नि की ज्वाला कहा है—

क्षात्रकोपदहनार्चिष तत सदधे दृशमुग्रदतारकाम् ॥

(रघु 11 69)

परशुराम के क्रोध को डण्डा मारकर जगाए गए सर्प के बिम्ब से भी मूर्तता प्रदान की गई है। वे राम से कहते हैं कि—'क्षत्रियो के विनाश से मैं शान्त हो गया था किन्तु तुम्हारे विक्रम को सुनकर उसी प्रकार क्रोधित हुआ हूँ जैसे सोए हुए सर्प को कोई डण्डा मारकर जगा दे—

सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ।

(रघु 11 71)

यहाँ 'सुप्तसर्प का बिम्ब पूरे प्रकरण को प्रभावशाली ढग से मूर्त कर देता है। साम्य सुदर है।

श्रवणकुमार के वध से दुखी और क्रुद्ध पिता के लिए भी इस बिम्ब का प्रयोग किया गया है लेकिन सर्वथा नए ढग से—

दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम् ।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजग प्रोवाच कोशलपति प्रथमापराद्ध ॥

(रघु 9 79)

यहाँ शाप को विष की भाति दुखद परिणाम वाला एव ऋषि को अपमानित सर्प की भाँति चोट खाया हुआ कहा गया है। यहाँ बिम्ब यह अत्यन्त उपयुक्त है।

इस प्रकार कालिदास की कविता मे क्रोध भाव की सफल अभिव्यक्ति बिम्बो के माध्यम से की गई है।

भय

कालिदास भय भाव को भी बिम्बो द्वारा सप्रेष्य बनाने मे पूरी तरह सफल हुए हैं। 'अभिज्ञान' मे राजा दुष्यन्त के भय से भागते हुए मृग का पूर्वोद्धृत निम्नलिखित बिम्ब अति स्वाभाविक है। आलोचको ने इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। यद्यपि यहाँ मानवेतर जाति के भाव का चित्र है किन्तु बडा सूक्ष्म है—

ग्रीवाभगाभिराम मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टि[127] आदि

126 कु 17/8, 34 व 48
127 पृष्ठ 12

यहां ग्रीवा मोड़ना, रथ पर दृष्टि बांधे रखना, शरीर संकोच, दर्भों का श्रम विवृत मुख से स्खलन, चचलता, चपलता आदि मूर्त बिम्बों के द्वारा मृगगत स्थायी भाव भय का एक संश्लिष्ट चित्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार इसी अंक में 'तीव्राघात प्रतिहततरु.' आदि श्लोक में गजगत भय का सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किया गया है—हाथी दुष्यन्त के खाली रथ को देखकर भयभीत होकर तपोवन में घुस गया है, तीव्र प्रहार से वृक्षों को तोड़ डालता है, वृक्ष का स्कन्ध उसके दांत में लगा हुआ है, पैरो में रौंदी हुई लताएँ फस गई हैं, उसने हरिणों को तितर-बितर कर दिया है और मूर्तिमान विघ्न सा जान पड़ता है।[128] यहाँ गज के सूक्ष्म सचित्र वर्णन से भय का बिम्ब उपस्थित किया गया है। एक ओर तो गज स्वयं रथ को देखकर भय का आश्रय बना हुआ है, दूसरी ओर तपोवन में त्रास फैलाकर वह भय का आलम्बन भी बना हुआ है।

'रघुवंश' के पंचम अंक में भी भय का एक सम्पूर्ण दृश्य है। महाराज अज इन्दुमती स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए जा रहे हैं। मार्ग मे नर्मदा तट पर सेना की हलचल से एक भंयकर वन्य गज नर्मदा के जल से निकलता है और सैन्य शिविर पर आक्रमण करता है। यहाँ भय का आलम्बन हाथी के स्वरूप और उसकी क्रियाओं का, तथा सेना में गज, अश्व व अन्य नर-नारियों के संत्रास का कवि ने बिम्बात्मक चित्रण किया है।[129]

प्रस्तुत बिम्बों के अतिरिक्त कवि ने अप्रस्तुत बिम्बो द्वारा भी भय की कुशलता से अभिव्यक्ति की है। भयानकता को मूर्त करने के लिए कवि ने सर्प को अनेकशः उपमान बनाया है। इन्द्र-रघु युद्ध के प्रसंग में कवि ने दोनों ओर से चलने वाले बाणों को सपक्ष-सर्पों के समान भयंकर दर्शन वाले कहा है।[130] विषैले सर्प जब उड़-उड़ कर आक्रमण करने लगें तो बेहद संत्रासात्मक स्थिति होगी।

सीता स्वयंवर में रखे गये विशालाकार धनुष को 'सोए हुए सर्पराज के समान भयकर' बताया गया है।[131] इस उपमान से धनुष की विशालता व विकरालता तथा स्थिर स्थिति को बिम्बायित किया गया है।

तारकासुर व कार्तिकेय के युद्ध प्रसंग में भी तारकासुर के चाप को 'भुजंगेन्द्र' के समान भयंकर बताया गया है।[132]

---

128. 1/29
129. रघु. 5/44 से 49
130. रघु. 3/57
131. वही 12/98
132. कु. 17/19

राम के द्वारा रावण वध के लिए छोड़ा गया ब्रह्मास्त्र नभ में शतधा फैल जाता है एवं उसके फन (अग्रभाग) चमकने लगते हैं, ऐसा लगता है मानो अपने सहस्त्र फणों का चमकता मण्डल लिये शेष नाग ही भयंकर रूप में उपस्थित हो।[133] इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी सर्प के बिम्ब से भय की अभिव्यक्ति हुई है।

रावण की भयंकरता को बिना प्रलय के वेलातिक्रम करने वाले समुद्र से बिम्बायित किया है।[134] ताड़का के भयंकर स्वरूप को भी कवि ने बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया है—

> ताडका चलकपालकुण्डला कालिकेव निविडा बलाकिनी।
> तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया।
> अभ्यभावि भरताग्रजस्तया वात्ययेव पितृकाननोत्थया॥
>
> (रघु 11 15–16)

राम के धनुष की टंकार सुनते ही ताड़का प्रकट होती है। कानों में नर-कपालों के कुण्डल हिल रहे हैं। अमावस्या की रात्रि जैसी काली कलूटी ताड़का बगुलों से युक्त भयंकर काली बदली के समान दिखाई देती है। बड़े वेग से मार्ग के पेड़ों को उखाड़ती हुई, प्रेतों के वस्त्र पहने हुए, भयंकर गर्जन करती हुई, इस प्रकार राम पर टूट पड़ती है, मानो श्मशान में उठी हुई आंधी हो।

यहाँ प्रस्तुत भयंकर भाव को उचित अप्रस्तुत द्वारा और तीव्र किया गया है। अमावस्या की काली रात, कालिका व श्मशान की आंधी के अप्रस्तुत बिम्ब भय को बढ़ाते हैं। प्रस्तुत व अप्रस्तुत में पूर्ण साम्य होने से अप्रस्तुत अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हुए हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भय भाव की व्यंजना व भयानक दृश्यों की योजना में कवि ने बिम्ब-विधान की सामर्थ्य का अनेकविध प्रयोग किया है।

जुगुप्सा

सौन्दर्य के चितेरे कालिदास के काव्य में जुगुप्सा पैदा करने वाले बिम्ब अल्प मात्रा में ही मिलते हैं। युद्ध के अवसरों पर वे वीभत्स दृश्य दिखाने का प्रयत्न अवश्य करते हैं लेकिन वे चित्र मात्रा में भी कम हैं और उनके बिम्ब भी क्षीण से बन पाते हैं। अज के अन्य नृपों के साथ युद्ध में कवि ने कुछ जुगुप्साजनक बिम्ब दिए हैं। यथा—परस्पर युद्ध करते हुए दो गजारोहियों के सिर तीक्ष्ण चक्रों के प्रहार से कट जाते हैं। उनके कटे हुए सिर बहुत देर पश्चात् पृथ्वी पर गिरते हैं क्योंकि उनके लम्बे लम्बे केश श्येनों के नाखूनों से उलझ जाने के कारण ऊपर ही लटके रह जाते

---

133 रघु 12/98
134 रघु 10/34

थे।[135] एक स्थल पर किसी योद्धा का कटा हुआ बाहु का टुकड़ा पड़ा है जिसे गिद्धादि पक्षीगण नोच रहे हैं, मास के लोभ से सियारिन उस टुकड़े को खींच ले जाती है किन्तु ज्यो ही वह खाने के लिए अपना मुंह मारती है, बाहु में बन्धे भुज-बन्द की नोक से उसका तालु छिद जाता है और वह उसे वहीं छोड़ देती है।[136]

यहाँ यद्यपि जुगुप्साजनक चित्र है, लेकिन साथ मे कुछ विनोद और चमत्कार का सा पुट होने के कारण ऐकान्तिक जुगुप्सा का भाव उत्पन्न नही हो पाता। इसी प्रकार ताड़का के निम्न वर्णन में वीभत्स के विम्ब को कवि की शृंगारिक प्रवृत्ति खण्डित कर देती है—

रामसन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥
(रघु. 11·20)

राम के वाण से ताडित ताडका दुर्गन्धयुक्त रुधिर से लिपटी हुई, इस प्रकार सीधे यमलोक चली गई मानो काम के बाण से घायल हुई कोई अभिसारिका गन्ध-युक्त चन्दन का लेप करके अपने प्रिय के घर जा रही हो। यहाँ दुर्गन्ध युक्त रुधिर में लिपटी ताडका के प्रति जुगुप्सा उत्पन्न होने से पहले ही अभिसारिका का बिम्ब उस भाव को खण्डित कर देता है। अभिसारिका का उपमान यहाँ प्रकृत भाव का उप-कारक न होने के कारण प्रशंसनीय नही माना जा सकता। सच तो यह है कि कवि का सौन्दर्य, प्रेम आदि से परिचय है और उसी मे रुचि है, वीभत्स में उन्हे कोई रुचि नही है।

आश्चर्य

आश्चर्य या विस्मय अद्भुत रस का स्थायी भाव है। विस्मय लोकोत्तर वस्तु घटना या पुरुष के वर्णन से उत्पन्न होता है। चमत्कार में स्वाभाविकता का अभाव होने से स्पष्ट विम्ब ग्रहण में बाधा आती है। विस्मय के विम्बों के लिए कल्पना का आधार लेना होता है। कथानक के आग्रह से कालिदास ने कई स्थलों पर विस्मय-जनक घटनायें व दृश्य दिए हैं। 'रघुवंश' मे मायावी सिंह के प्रभाव से दिलीप की गति का स्तम्भित होना विस्मयकारी है।[137] रघु के कोषागार में स्वर्ण वर्षा होना,[138] दशरथ के यज्ञ में दिव्य पुरुष का उपस्थित होना,[139] कुश के शयनागार

135. रघु. 7/46
136. वही 7/50
137. रघु. 2/31
138. वही 5/29
139. वही 10/50

मे स्त्री का अचानक प्रवेश[140] आदि विस्मयजनक घटनायें हैं, किन्तु इनमे चमत्कार ही प्रमुख है, स्वाभाविकता न होने से बिम्बात्मकता का अभाव है। 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' मे शकुन्तला का मेनका द्वारा ले जाया जाना[141] भी इसी प्रकार की घटना है।

निर्वेद –

कालिदास के द्वारा दिये हुए तपोवन के शान्त दृश्यो एव तपस्या के वर्णनो मे निर्वेद भाव का आस्वाद प्राप्त होता है। 'रघुवश' मे वसिष्ठ ऋषि के आश्रम के शान्त वातावरण का सचित्र वर्णन हुआ है। इसमे सहृदय के हृदय मे पवित्रता व निर्वेद के भाव उत्पन्न होते हैं। इन्दुमती की मृत्यु के अवसर पर शरीरधारी की असारता का बिम्ब भी देकर निर्वेद भाव की व्यजना की गई है। इन्दुमती के मुख पर से सुरतश्रम के बिन्दु भी न सूखने पाए थे कि उसकी मृत्यु हो गई, अत देहधारी की नश्वरता को धिक्कार है

सुरतश्रमसम्भृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते।
अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमा देहभृतामसारताम् ।।
(रघु 8 51)

यहा निर्वेद सचारी भाव के रूप मे बिम्बित हुआ है। इस अवसर पर वसिष्ठ ऋषि के द्वारा भेजे गए सन्देश म भी निर्वेद की व्यजना हुई है, यद्यपि स्पष्ट बिम्ब विधान का अभाव है, सिद्धान्त कथन पर ही अधिक बल है।

महाराज रघु, अज के युवक हो जाने पर राजपाट छोडकर वन जाने के लिये उद्यत हो जाते हैं किन्तु पुत्र के अनुनय करने पर रुक जाते हैं, लेकिन जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली छोडकर पुन उसे ग्रहण नही करता उसी प्रकार नि स्पृह वे त्यक्त राज्यलक्ष्मी को पुन स्वीकार नही करते[142]' यहा सर्प के केंचुली त्याग के बिम्ब से निर्वेद भाव की सुन्दर व्यजना हुई है।

'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग मे सती की मृत्यु के बाद विरक्त हुए शिव की तपस्या का बिम्बात्मक वर्णन हुआ है जिसमे निर्वेद का आस्वाद प्राप्त होता है।[143] 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' मे मारीच का तपोवन अत्यन्त शान्त है। वहा सब प्रकार के सुख होते हुए भी ऋषि-मुनि सर्वथा नि स्पृह हैं—

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काचनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया।

---

140 वही 16/8
141 अभि 5/30
142 रघु 8/13
143 कु 1/55

ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत्काङ्‌क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ।।

(अभि. 7'12)

इस वातावरण के सजीव बिम्ब से निर्वेद भाव का जन्म होता है ।

हास्य

हास्य के बिम्ब कालिदास के काव्य में कम ही मिलते हैं। विदूषक की हरकतों से कुछ अस्पष्ट बिम्ब बनते हैं। 'शाकुन्तलम्' का विदूषक 'कुबड़े' का अभिनय कर जब कहता है—

'यद्वे तसः कुब्जलीला विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण उत नदीवेगेन' [144] तो बेत व कुब्ज के बिम्बों से हास्य की सृष्टि होती है।

इन्दुमती स्वयंवर में जब इन्दुमती अज की ओर आसक्त हो जाती है तो इसे भांपकर सुनन्दा ठिठोली करती हुई कहती है 'हे आर्ये चलिये, आगे चलें।' यह सुनकर इन्दुमती उसको कुटिल दृष्टि से देखती है।[145] यह दृश्य को अभिव्यक्त करता है।

अजयुद्ध प्रसंग में कवि ने बड़ी रुचि दिखाई है। वहाँ विनोद का पुट देते हुए मनोरंजक बिम्ब दिये गये है– 'दो वीर एक दूसरे पर प्रहार करते हुए एक साथ मारे जाते हैं। दोनों वीरगति पाकर जब स्वर्ग पहुँचते हैं तब वहाँ एक ही अप्सरा पर दोनों आसक्त हो जाते हैं और इस प्रकार वहाँ भी वे परस्पर युद्ध करने लगते हैं।[146]

कालिदास के नाटकों में सर्वत्र विदूषक के कार्यकलापों व प्रसंग में हास्य की सृष्टि की गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास ने लगभग सभी स्थायी भावों की बिम्बों से व्यंजना की है किन्तु उन्होंने संयोग व वियोग रति, वत्सल भाव व शोक सम्बन्धी बिम्बों में अधिक कुशलता प्रदर्शित की है।

अन्य भाव

स्थायी भावों के अतिरिक्त अन्य भावों के भी बिम्ब कालिदास की रचनाओं में प्रभूत मात्रा में मिलते हैं, जिनमें व्यभिचारी भावों, सात्त्विक भावों के अतिरिक्त अन्य अमूर्त मानवीय भावनाएं भी सम्मिलित की जा सकती हैं। भावों की व्यंजना का सर्वोत्तम साधन बिम्ब है, जिसका कुशलता से प्रयोग कर कालिदास सहृदयों के हृदयहार हो रहे हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि कालिदास के जो सर्वोत्तम पद्य उनके प्रशंसकों की जिह्वा पर चढ़े हुए हैं, उन सभी में प्रायः बिम्ब का चमत्कार

---

144. अभि. 2/2
145. रघु. 6/82
146. रघु. 7/61

है, और उन बिम्बों का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति के लिये अथवा भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिये ही किया गया है। इस कथन के समर्थन में यहाँ पहले कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों को लिया जाता है।

आनन्दवर्धन, मम्मट आदि प्रसिद्ध काव्यशास्त्रियों ने एक मत से 'कुमारसंभव' के निम्नलिखित उद्धरण को उत्तम कोटि का काव्य ठहराया है—

एवं वादिनी देवर्षौ आदि[147]

जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है, यह बिम्ब का अत्युत्तम प्रयोग है। शिव की प्रशंसा सुन सुनकर पार्वती अत्यन्त प्रसन्न है। किन्तु कन्या-सुलभ शालीनता व संकोच के कारण वर चर्चा चलने पर कुछ बोलना या प्रसन्नता प्रकट करना संभव नहीं। यहाँ लज्जा, संकोच, शालीनता व प्रसन्नता व्यंजित हो रही है। साहित्य-शास्त्र में इसके लिये पारिभाषिक शब्द है अवहित्था संचारी भाव। पार्वती की लज्जा यहाँ शब्दों से नहीं अपितु एक बिम्ब से व्यंजित की गई है। यदि किसी चित्रकार से वरचर्चा के अवसर पर लज्जित कन्या का चित्र बनाने को कहा जाय, तो कुछ इसी प्रकार का चित्र होगा। इस श्लोक में जो सहृदयहारिता है वह इस बिम्ब के कारण है। संस्कृत आलोचना में बिम्ब की चर्चा न होने के कारण आलोचक स्पष्ट रूप से इस तथ्य को अनुभव नहीं कर सके हैं।

'कुमारसंभव' का अन्य प्रसंग पंचम सर्ग का है। शिव ब्रह्मचारी के वेश में आकर पार्वती को शिव से विरत करने का प्रयास करते हैं। पार्वती के प्रतिवाद करने पर भी जब ब्रह्मचारी शिव की निन्दा किये ही जाता है तो खीभ कर उमा ही वहाँ से अन्यत्र जाने का उपक्रम करती हैं। आवेश में उनका वस्त्र भी खिसक जाता है। वह चलने के लिये पहला कदम उठाती ही है कि शिव अपना कपट वेश तज मुस्कुराकर उनका हाथ थाम लेते हैं। और तब—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धु
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥ (कु 5 58)

शिव को देखकर पार्वती घबरा जाती है। शरीर कांपने लगता है। पसीने से तरबतर हो जाती हैं। पैर उठा का उठा रह जाता है न जा पाती हैं न ठहर पाती हैं, ठीक वैसे ही जैसे प्रवाह की राह में पहाड़ आ जाने से नदी की धारा एकाएक ठिठक जाती है। जैसी नाटकीय स्थिति कवि ने पैदा की है, उसका उतना ही असाधारण निर्वाह कवि ने किया है। पार्वती के हृदय में भावों की जो धक्का मुक्की हो रही थी, उसका इससे सुन्दर चित्र और क्या हो सकता है? कदम उठाते

147 कु 6/84

समय ब्रह्मचारी के प्रति क्रोध, असूया और संभ्रम आदि भाव थे, शिव को देखते ही हर्ष, लज्जा आदि विपरीत भावों का आक्रमण हुआ। फलत: जड़ता का प्रादुर्भाव हुआ और पार्वती किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। मूढ़ता का यह अनुपम वर्णन है। कम्प, स्वेद आदि सात्त्विकों के उल्लेख से पार्वती की स्पष्ट मूर्ति खड़ी हो जाती है। यहाँ विम्ब ही भावों को व्यंग्य बनाने में, मुख्य कारण है। सिन्धु के सादृश्य से प्रस्तुत विम्ब और भी सजीव हो गया है। वाहरी गति के साथ पार्वती के आन्तरिक प्रवाह में भी बाधा पड़ती है। पर्वत के द्वारा सहसा अवरुद्ध होने पर नदी जिस प्रकार अन्तर्वेग के कारण अपने भीतर ही उमड़ती रहती है, पार्वती का अन्दर ही अन्दर रोका भाव-संवेग भी उसी प्रकार उमड़ रहा था।

इस प्रकार यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत के योग से एक अति सुन्दर विम्ब की सृष्टि की गई है जिससे अनेक सचारी व सात्विक भावों की सशक्त व्यंजना हो रही है। स्पष्ट है कि कालिदास के काव्य सौन्दर्य का मुख्य रहस्य विम्बविधान है। कालिदास के कुछ अन्य भाव-विम्ब इस प्रकार है—

ईर्ष्या

चित्र में राजा अग्निमित्र को इरावती पर आसक्त देखकर मालविका के मन में जो डाह उत्पन्न होती है उसका विम्ब कवि इस प्रकार प्रस्तुत करते है—

भ्रूभंगभिन्नतिलकं स्फुरिताधरोष्ठं
सासूयमाननमित: परिवर्तयन्त्या।
कान्तापराधकुपितेष्वनया विनेतु:।
संदर्शितव ललिताभिनयस्य शिक्षा॥ (मा. 4·9)

मालविका ने ईर्ष्या से अपना मुख चित्र की ओर से घुमा लिया है। भ्रूभंग से माथे की विंदी अपने स्थान से हटी लग रही है। होंठ फड़क रहे है। ऐसा लगता है मानो स्वामी के अपराध पर रूठने की जो शिक्षा अपने गुरू से ली है वही अभिनय करके दिखा रही हो। इसी प्रकार मेघदूत के गंगावर्णन में—

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनै:
शम्भो:केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता॥ (पू.मे. 52)

पार्वती की त्योरी चढ़ी देख, गंगा ने, मानो, फनरूपी हास्य करके, शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा तक अपने तरंग रूपी हाथ ऊँचे उठाकर शिवजी के बालों का जूड़ा पकड़ लिया है। यह भी अमर्ष भाव का विम्ब है।

हर्ष

'ऋतुसंहार' में वर्षा का वर्णन करते हुए कवि कहते है—वन में चारों ओर खिले हुए कदम्ब के फूल ऐसे लगते हैं, मानो वर्षा के नए जल से गर्मी दूर हो जाने पर जंगल मगन हो उठा हो। पवन से झूमती शाखाओं से लगता है मानो पूरा का पूरा जंगल अपने हाथ मटका-मटका कर नाच रहा हो और केतकी की

उजली कनियो को देखकर लगता है मानो जगल खिल खिलाकर हस रहा हो,[148] राजा दुष्यन्त मारीच के आश्रम मे अत्यन्त अलौकिक आनन्द प्राप्त करते है। इसकी अभिव्यक्ति वह अमृत सरोवर मे अवगाहन करने के विम्ब से देते हैं—

'अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि[149]

अन्य अनेक स्थनो पर हर्ष की व्यजना बिम्बो के माध्यम से हुई है।[150]

औत्सुक्य

यक्ष मेघ से कहता है 'जब तुम वायु पर पैर रखकर ऊपर चढोगे तो पथिक वनिताएँ अपनी पलक उठाकर बडे विश्वास के साथ, आश्वासन पाकर तुम्हारी ओर एकटक देखेंगी क्योकि मुझ जैसे पराधीन को छोडकर कौन ऐसा निर्दयी है जो तुम्हे देखकर वियोग मे व्याकुल अपनी पत्नी से मिलने के लिये उतावला न हो उठे।'[151]

विभ्रम

उमा की माता मैना उमा के तिलक करने लगती है। पार्वती का मुख ऊपर उठाते ही भाव-विह्वल हो जाती है। तिलक तो जैसे तैसे लगा देती ह, लेकिन उनकी सुन्दरता से ठगी रह जाती हैं। पार्वती के भावी सौभाग्य के बारे मे सोच आनन्द से आँखो मे आसू आ जाते हैं। कुछ दिखाई नही पडता तो कगन कही का कही पहना देती हैं। तब धाय उसे ठीक स्थान पर खिसकाती है।[152] भावों मे खो जाने का यह सुन्दर बिम्ब है।

चपलता

मेघदूत' मे चपलता का सुन्दर बिम्ब है। 'अलका के सतमजिले भवनो की ऊपरी मजिलो मे, मेघखण्ड, वायु के झोको से प्रवेश कर वहाँ के चित्रो को अपने नवजलकणो से नष्ट कर, फिर शकित से होकर, धुएँ के समान शीघ्र ही झरोखो से भाग निकलते हैं।'[153]

स्मृति

राम सीता से कहते हैं—'आज मुझे वे दिन याद आ रहे हैं जब मेघ गर्जन से भयभीत हो, तुम मुझसे लिपट जाती थी। तुम समझ नही सकती कि माल्यवान् पर्वत पर पावस के दिन मैंने कितने कष्ट से बिताए हैं। वर्षा के कारण वहाँ की

---

148 ऋतु 2/24
149 अभि 7/11
150 देखें–मा 3/16, रघु 18/2, वि. 4/40 आदि
151 पू मे 8
152 कु 7/25
153 उ मे 8

धरती से जो भाप निकली उससे कदलियों की कलियाँ खिल गईं और वैसी ही लाल लाल हो गईं जैसे विवाह के समय हवन का धुआँ लगने से तुम्हारी आँखें लाल हो गई थी, अतः उन्हें देखकर मैं तुम्हारी याद में बेचने हो जाता था। मुझे वे दिन स्मरण हो रहे हैं जब मैं यहाँ (पंचवटी में) एकान्त में वेतसगृह में तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोया करता था और गोदावरी का तरंगानिल मेरे आखेट-खेद को मिटाया करता था'[154] स्मृतिभाव के ये सरस चित्र है।

अन्य

'तारकासुर द्वारा त्रस्त देवताओं के वर्णन में अनेक भावों के सुन्दर विम्व मिलते है। ब्रह्मा कहते हैं—'हे देवताओ, आप लोगों के मुख की पहली वाली कान्ति कहाँ गई, आप सब हिमाच्छादित धुँधले तारों के समान क्यों दिखाई दे रहे है।[155] यहाँ धुँधले तारो के विम्ब से देवों का विषाद अभिव्यक्त हो रहा है।

'शत्रुओं का नाश करने वाले वरुणदेव का पाश, बद्ध सर्प के समान अतिदीन क्यों दिखाई दे रहा है?'[156] बद्ध सर्प के विम्ब से यहाँ दैन्य का चित्र बन रहा है।

इसी प्रकार 'कुवेर का यह बाहु गदा के विना ऐसा क्यों लग रहा है, जैसे कटी हुई शाखा वाले वृक्ष का ठूंठ हो। अपने निस्तेज दण्ड से पृथ्वी को कुरेदते यमराज ऐसे क्यों लग रहे हैं जैसे उनका कठोर दण्ड बुझी हुई मशाल (अलात) की भाँति नाकाम हो गया हो।[157] यहाँ चिन्ता, जड़ता, लज्जा, ग्लानि, दैन्य व खेद आदि व्यभिचारी भावों की अभिव्यक्ति विम्बों के माध्यम से की गई है।

कालिदास के कुछ वर्णन भावात्मक विम्वविधान की दृष्टि से विशेषतः उल्लेखनीय है। इन्दुमती की बारात को देखने के लिये नगर की स्त्रियाँ बड़ी उत्सुक हैं। वे वाद्य-ध्वनि सुनते ही हड़बड़ी में खिड़कियों की ओर भागती हैं। उनके संभ्रम और उत्सुकता का वर्णन कालिदास ने अत्यन्त सूक्ष्मता और अनुभवजन्य बारीकी के साथ किया है। यथा—

> आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः।
> बद्धं न सम्भावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः॥
> प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव।
> उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान॥
> विलोचनं दक्षिणमंजनेन सम्भाव्य तद्वंचितवामनेत्रा।

---

154. रघु. 13/28, 29 व 35
155. कु. 2/19
156. वही 21
157. कु. 2/22, 23

तथैव वातायनसन्निकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ।।
जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम् ।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वास ।।
अर्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ।।

(रघु 7 7–10)

यहाँ अनेक चित्र हैं। यथा—एक नारी जब वर को देखने के लिये खिडकी की ओर लपकी तो अधबधा जूडा खुलकर बिखर गया। जल्दी मे वह खुले केशो को हाथ में पकडे ही आ खडी हुई। खुले बालो म गुँथे हुए फूल नीचे गिरते रहे। एक दूसरी स्त्री दासी से महावर लगवाते अपने पैरो को खीचकर भागी। महावर से गीले पैरो, से झरोखे तक पैरो की लाल छाप बनाती गई। एक स्त्री उस समय आँखो मे अजन लगा रही थी। दाई आख मे लगा चुकी थी और बाँई मे लगाने ही वाली थी कि बारात के बाजे सुन बिना अजन लगाए हाथ मे शलाका लिय ही दौड गई। एक स्त्री अधबधे अधोवस्त्र को हाथ मे पकडे-पकडे ही खिडकी मे जा खडी हुई। हाथ मे पहने आभूषणो की चमक उसके नाभि सौन्दर्य को बढा रही थी। अन्य स्त्री बैठी हुई पैर के अगूठे मे सूत बाधे उसमे मणियाँ गूथकर करधनी बना रही थी। अज का आना सुनकर आधी पिरोई लडी के साथ ही झरोखे की ओर भागी। फलस्वरूप मणियाँ तो एक-एक कर सूत से निकल निकल कर इधर उधर बिखर गई केवल सूत पैर मे बँधा रह गया।

ये सभी वर्णन बिम्ब रूप हैं और अति सूक्ष्म है। ये सभी श्लोक शिव की बारात के समय भी ज्यो के त्यो मिलते हैं। इस प्रकार प्रसाधन करती नारियो की मूर्तिया कुषाणकालीन स्तम्भो पर बनी हुई हैं। ये बिम्ब चपलता, आवेग, हर्ष, मोह, औत्सुक्य आदि भावो की व्यजना करते हैं। सस्कृत साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से यह भाव न होकर भावाभास है क्योकि अनुराग उभयगत नहीं है। बिम्ब-विधान की दृष्टि से चित्र अत्युत्तम हैं। इसी प्रकार रसाभास के रूप ने 'रघुवश' मे एक स्थल पर बडी सुन्दर बिम्ब योजना की गई है। इन्दुमती को प्राप्त करने की इच्छा से देश-देशान्तर के राजा स्वयवर मे उपस्थित होते हैं। असाधारण सुन्दरी इन्दुमती को देखकर उनका मन तो इन्दुमती के पास चला जाता है केवल शरीर मात्र ही अपनी-अपनी कुर्सी पर रह जाता है। तब वे राजा अपनी विभिन्न शृगारिक चेष्टाओ से इन्दुमती के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगते है—

'कोई राजा हाथ मे लीलारविन्द लेकर उसकी डठल पकडकर घुमाने लगा। उसके घूमने से भौंरे तो इधर उधर भाग गए पर उसमें जो पराग था उसकी कमल के भीतर कुडली सी बन गई।' यहाँ टीकाकार मल्लिनाथ ने एक और बिम्ब की कल्पना की 'राजा कमल घुमाकर यह प्रकट करता था कि विवाहोपरान्त हम भी तुम्हारे हाथो मे इसी प्रकार नाच सकते हैं।'

'अन्य विलासी राजा, थोड़ा मुँह चारुता से घुलाकर कन्धे से सरकी रत्न-जटित भुजबन्द से उलझी माला को यथास्थान करने लगा। तीसरा राजा भौंह सचालन करता हुआ, पैरों की उंगलियों को सिकोड़कर स्वर्ण पीठिका को कुरेदने लगा। अन्य राजा सिंहासन के वामपार्श्व मे भुजा टेककर समीपासन्न मित्र से इस प्रकार वार्तालाप करने लगा कि उसका बाँया कन्धा कुछ उठ गया और कण्ठ की माला भी एक ओर लटक गई। एक युवा राजा प्रिया के नितम्बों पर चिह्न बनाने वाले नखाग्रो से (अपने आतुर क्षणों मे) केतकी दलों पर ही चिह्न बनाने लगा। एक अन्य राजा अपनी कमल के समान लाल व ध्वजा की रेखाओं से अंकित हथेली मे पासे उछालने लगा। एक दूसरा राजा पहले से ही ठीक मुकुट को बार-बार अपने हाथो से ठीक करने लगा। ऐसा करने मे उसके हाथों की उंगलियों का मध्यभाग रत्नो की किरणों से चमक उठता था।'[158]

राजाओं की ये चेष्टाएँ रति के अनुभाव रूप हैं। रति अनुभयनिष्ठ होने के कारण रसाभास रूप मे है। आधुनिक आलोचना मे ये चेष्टाएं राजाओं के आतुर भाव को प्रकट करने वाले बिम्ब है। मल्लिनाथ ने इन बिम्बों के अन्दर भी अन्य बिम्बो की व्यंजना मानी है। यथा—कमल घुमाने मे हाथों में नाचने का, पासो मे सदा खेलते रहने का, मुकुट पर हाथ लगाने मे सर-आँखों पर बैठाने आदि का। किन्तु वस्तुतः यहाँ कवि, ध्वनि, द्वारा, मानव हृदय की सहज कमजोरियो को प्रदर्शित करना चाहता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब मनुष्य परीक्षा व प्रतीक्षा की विकट घड़ियों मे खाली बैठा हो तो अपनी आतुरता व घबराहट मे मेज कुरेदना या घास तोड़ना या वस्त्र संभालना जैसे निरुद्देश्य कार्यो मे अपने को व्यस्त कर भावों को छिपाना चाहता है। जो भी हो, बिम्ब विधान की दृष्टि से ये स्थल महत्त्वपूर्ण हैं। वातावरण के इस सचित्र वर्णन से कवि ने स्वयवर के सम्पूर्ण दृश्य को एक सफल व सजीव प्रकरण-बिम्ब के रूप में उपस्थित किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि कालिदास के काव्य मे बिम्ब-योजना द्वारा भावो की अति सुन्दर व्यंजना हुई है। क्या दृश्य काव्य और क्या श्रव्य काव्य, सर्वत्र भाव-बिम्ब सागर मे रत्नो की भाति बिखरे पड़े है। जितना जो चाहे, खोज सकता है। तथापि उनमें-प्रेम, शृंगार व करुण कोमल भावों की अधिकता है।

---

158. रघु. 6/13 से 19 तक

6

बिम्ब-योजना का शैली-पक्ष

गत अध्यायों मे कालिदास की बिम्ब-योजना के वस्तु पक्ष पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया। इस अध्याय म कवि की बिम्ब-योजना के अभिव्यक्ति-पक्ष की समीक्षा की जायेगी।

कला-पक्ष की दृष्टि से बिम्ब-विधान की निर्माण-प्रक्रिया का विश्लेषण कई आधारो पर किया जा सकता है। प्रथम आधार तो बिम्ब की स्थिति का हो सकता है। काव्य-बिम्ब की स्थिति प्रबन्ध से लगाकर शब्द तक मे हो सकती है। कालिदास के बिम्बो का अध्ययन इस दृष्टि से किया जा सकता है। दूसरा आधार बिम्बों की प्रकृति है। विषय को मूर्त कराना बिम्ब का व्यापार या प्रकृति है। किसी बिम्ब मे मूत वस्तु से अमूर्त को गोचर कराने का प्रयत्न रहता है, कही मूत को ही अन्य मूर्त पदार्थ के सादृश्य से स्पष्ट आकार प्रदान किया जाता है। कभी-कभी मूर्त प्रस्तुत को भी अमूत उपमान से प्रभावशाली रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। इस दृष्टि से आलोच्य कवि के बिम्बो का अध्ययन रोचक होगा।

एक अन्य पक्ष अभिव्यक्ति का हो सकता है। कवि की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति अनेक प्रकार के पूर्व प्रचलित शास्त्रीय प्रतिमानो के आधार पर हुआ करती है। कही अलकारो द्वारा मूर्तता लाई जाती है, कही शब्द शक्तियो का प्रमुख हाथ रहता है। मानवीकरण, मुहावरे आदि भी अभिव्यक्ति के साधन के रूप मे अपनाये जा सकते हैं।

इस प्रकार कालिदास की बिम्ब-योजना के कलापक्ष का अध्ययन निम्न-लिखित आधारो पर करने का प्रयास किया जायेगा—

(1) बिम्बो की स्थिति
(2) बिम्बो की प्रकृति
(3) बिम्बो की अभिव्यक्ति

अब हम क्रमश इन तीनो का विवेचन करगे।

बिम्ब की स्थिति

जैसाकि प्रथम अध्याय 'बिम्ब सिद्धान्त' में स्पष्ट किया गया है बिम्ब की स्थिति प्रबन्ध से लेकर किसी विशेष पद तक में हो सकती है। इस दृष्टि से बिम्ब के निम्न भेद किये गये हैं—

प्रबन्ध बिम्ब
प्रकरण बिम्ब
वाक्य बिम्ब
वाक्यांश बिम्ब

प्रबन्ध व प्रकरण बिम्ब

प्रबन्ध काव्य के प्रसंग में बिम्बो का अपना अलग स्वरूप और उपयोग है। कथानक का लघुतम रूप है घटना, घटनाओं के संघात से प्रकरण का निर्माण होता है और प्रकरणों के संयोजन से कथानक का। प्रबन्ध काव्य में इन सबके पृथक्-पृथक् निजी बिम्ब होते है या यों कह सकते है कि ये सभी वस्तुतः बिम्ब हैं। जिस प्रकार काव्यगत भाव का स्वरूप अनुभूतिमय न रहकर बिम्बात्मक बन जाता है, इसी प्रकार काव्यगत घटना का स्वरूप भी बिम्बात्मक ही होता है। मूल रूप में उस घटना की भौतिक सत्ता रहती ही है। काव्य मे इस घटना के द्वारा अभिव्यक्त अनुभूति ही मुख्य प्रयोजन रहता है। घटना बिम्बों के संयोजन से प्रकरण बिम्बों का निर्माण होता है। कालिदास के नाटको और महाकाव्यों के कथा सूत्र अवश्य पूर्ववर्ती ग्रन्थों से लिये गये है, किन्तु घटनाओं एवं प्रकरणों के आधार पर कवि ने अपने कथावस्तु के बिम्ब की संयोजना स्वयं की है। यथा 'कुमारसंभव' का कथासूत्र रामायण व महाभारत में उपलब्ध है किन्तु उसमें अनेक प्रकरणों की कल्पना स्वयं कवि ने की है और उनके आधार पर कवि ने अपने प्रबन्ध-बिम्ब की कल्पना की है। 'कुमारसंभव' मे निम्नलिखित कुछ प्रकरण कवि की अपनी मौलिक कल्पना हैं यथा—

(1) नारद द्वारा यह पूर्व सूचना कि पार्वती शिव की पत्नी होंगी।
(2) विवाह से पहले वसन्त की सहायता से कामदेव द्वारा शिव की समाधि भग्न करने का यत्न व कामदहन।
(3) रति विलाप।
(4) ब्रह्मचारी शिव व पार्वती का वार्तालाप।
(5) सप्तर्षियों के मुख से शिव का हिमालय के सामने विवाह प्रस्ताव।

इन प्रकरण बिम्बो की सर्वथा नई योजना एवं पूर्वप्राप्त प्रकरणों की निजी कल्पना द्वारा कवि ने अपने प्रबन्ध बिम्ब की सृष्टि की है। स्पष्ट ही है कि उपर्युक्त नवीन प्रकरणों की कल्पना से कथा में रोचकता व सरसता की अभिवृद्धि हुई है एवं काव्य में नाटक जैसी दृश्यात्मकता आ गई है। इसी प्रकार 'रघुवंश' के

प्रबन्ध बिम्ब में कौत्सकथा का प्रकरण, श्रवणकुमार के वध का विस्तृत वर्णन, कुमुद नाग से कन्या कुमुदिनी का जन्म आदि कवि के निजी बिम्ब है। इनसे प्रबन्ध बिम्ब में क्रमश दानवीरता, त्यागप्रियता, आखेट व अद्भुत की सुन्दर व्यंजना का अवसर उत्पन्न हुआ है। जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है, 'अभिज्ञान-शाकुंतल' मे 'दुर्वासा का शाप' एक 'प्रकरण है जिसमे दुर्वासा का भिक्षा के लिये आना, शकुंतला की विरह-मूढ दशा और उसके कारण दुर्वासा की उपेक्षा, दुर्वासा का शाप, सखी द्वारा अनुनय और दुर्वासा द्वारा शाप-मुक्ति के उपाय का उपदेश आदि घटनाएँ समवेत हैं। इनमे से प्रत्येक घटना किसी न किसी अनुभूति का बिम्ब है और इनसे निर्मित 'दुर्वासा शाप' का संश्लिष्ट बिम्ब एक विशेष काव्यार्थ का व्यंजक माध्यम बिम्ब है, जिसके तथ्यार्थ का विशेष मूल्य न होकर व्यंग्यार्थ का ही कलात्मक महत्त्व है। इसी प्रकार सम्पूर्ण कथानक भी एक बृहद् बिम्ब है, जिसका निर्माण अनेक प्रकरण बिम्बो से मिलकर होता है यही प्रबन्ध-बिम्ब है।'[1]

यहा तक एक प्रकार से हमने अति सक्षेप मे बिम्ब सिद्धान्त के आधार पर प्रकरण व प्रबन्ध योजना का एक विश्लेषण प्रस्तुत किया। 'वक्रोक्ति सिद्धान्त' एव 'ध्वनि सिद्धान्त' की भाँति पाश्चात्यो ने बिम्ब-सिद्धान्त को काव्यालोचन के एक सम्पूर्ण मानदण्ड के रूप मे स्थापित किया है। प्रबन्ध रचनाओ म सिद्धान्त का औचित्य सिद्ध करने के लिये कुन्तक की 'प्रकरण-वक्रता' 'प्रबन्ध-वक्रता' जैसी *कल्पनाएँ की गई है जो सर्वथा उचित कही जा सकती है। जैसाकि ऊपर दिखाया* गया है, कालिदास के नाटको व महाकाव्यो मे 'प्रकरण बिम्ब व प्रबन्ध बिम्बो' के आधार पर कथा-प्रबन्ध का विश्लेषण स्वत किया जा सकता है।

स्थिति की दृष्टि से बिम्ब की वाक्य व वाक्याश म स्थिति की विवेचना ही अधिक आवश्यक है। भाषा की दृष्टि से बिम्ब की सृष्टि किसी एक या अनेक वाक्यो मे ही मूलत रहा करती है किन्तु कभी-कभी कोई एक पद ही समस्त व्यापार को मूर्तित करने के लिये पर्याप्त होता है वहाँ वाक्याश या एक शब्द में बिम्ब की स्थिति स्वीकार की जा सकती है।

वाक्य मे स्थिति

भाषा की दृष्टि मे बिम्ब की स्थिति प्राय एक अथवा एकाधिक वाक्यों मे ही रहा करती है। कालिदास के बिम्ब वाक्यो मे ही स्थित है। केवल एक शब्द अथवा वाक्याश मात्र पर स्थित बिम्ब की अपेक्षा वाक्य-बिम्ब सम्पूर्णता एव संश्लिष्टता के कारण अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। प्रकृति वर्णन, मानवीकरण पर आश्रित बिम्ब, सादृश्यमूलक बिम्ब, भाव-चित्र और स्वभाव चित्र सभी वाक्यो मे ही आश्रित रहते हैं। लोकोक्ति, अन्योक्ति व मुहावरो पर आश्रित बिम्ब भी वाक्यो मे रहते हैं। एक शब्द से ये बिम्ब नही बन पाते।

---

1 'काव्यबिम्ब' (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967) पृ. 13-14

कालिदास के कुछ विम्ब विशालता एवं संश्लिष्टता के कारण एकाधिक श्लोकों में भी चलते हैं। 'रघुवंश' में तेरहवें सर्ग का गंगा-यमुना संगम का वर्णन इसी प्रकार का माना जा सकता है। यद्यपि ध्यान से देखें तो ये संश्लिष्ट विम्ब भी अनेक छोटे-छोटे विम्बों से मिलकर ही बनते हैं। कालिदास के विम्ब प्रायः बड़े से बड़े सम्पूर्ण छन्द में व्याप्त रहते हैं। कारण है कि सफल विम्ब निर्माण के लिये पृष्ठभूमि का अत्यन्त महत्त्व होता है। चित्र बनाते समय पृष्ठभूमि (बैक-ग्राउण्ड) का ध्यान रखना ही होता है-और कालिदास तो स्वयं इस बात को अच्छी तरह से जानते थे। इसलिये दुष्यन्त जब शकुन्तला का चित्र बनाते हैं तो उन्हें बिना इर्द-गिर्द के वातावरण के चित्र अधूरा जान पड़ता है, और वे कहते हैं—

'कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी.' आदि[2]

'शकुन्तला का चित्र तो बना लिया किन्तु अभी पृष्ठभूमि में मालिनी नदी बनानी है जहाँ बालू में हंसों के जोड़े बैठे हों। नदी के दोनों ओर हिमालय की तलहटी हरिणों से संयुक्त करके बनानी होगी। वृक्षों की शाखाओं पर वल्कल वस्त्र लटके होंगे और शाखाओं के नीचे कृष्णमृग के सींग पर बाएं नेत्र को खुजलाती हुई मृगी को चित्रित करना चाहता हूँ।' इस प्रकार स्वभावोक्ति के आधार पर जो विम्ब बनते हैं वे अपेक्षाकृत कई वाक्यों में रहते हैं। सांगरूपक के आधार पर निर्मित विम्ब में प्रयुक्त सभी शब्द (संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि) विम्ब में योग देते हैं। इसी प्रकार दृष्टान्त में सभी पदों का विम्ब प्रतिविम्ब भाव रहने से विम्ब पूरे वाक्य में व्याप्त रहता है। उदाहरण के लिये 'रघुवंश के निम्न श्लोक में—

रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे ॥ (रघु. 10·48)

रावण द्वारा पीड़ित देवताओं के विष्णु की शरण ग्रहण करने पर विष्णु, रावण वध का आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गये हैं जैसे—अनावृष्टि के कारण शुष्क शस्य को जलाभिषेक द्वारा सरस कर मेघ अन्तर्धान हो जाता है। यहाँ सांगरूपक के द्वारा विम्ब खड़ा किया गया है जिसमें प्रतिपद पर आरोप होने के कारण सभी शब्दों का विम्ब-निर्माण में महत्त्व है। विष्णु मेघ है, रावण अनावृष्टि, वाणी है अमृतमय जल और देवगण ही शुष्क शस्य है।

अन्यच्च—

तासांच पश्चात् कनकप्रभाणां
काली कपालाभरणा चकाशे।
बलाकिनी नील-पयोदराजी
दूरं पुरः क्षिप्तशतह्रदेव ॥ (कु. 7·39)

शिवजी की बारात में आगे-आगे चल रही है कनक प्रभा मातृकाएं, उनके

---

2. उद्धृत पृष्ठ 150

पीछे चल रही है सितकपाना मरणा काली। जैसे आगे तो चमक रही है विद्युत और पीछे है नील मेघमाला, जो बगुलों से युक्त है। यहाँ रंग-रूप का साम्य तो है ही, भाषा की दृष्टि से प्रत्येक पद में साम्य है जो बिम्ब-निर्माण में सहायक हुआ है।

वाक्य-निर्मित बिम्बों में कालिदास ने लोकोक्तियों व अन्योक्तियों से भी सुन्दर बिम्ब विधान किया है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ अधिकांशतः बिम्बात्मक होती हैं। इनके पीछे जो घटना या कथा होती है उसका बिम्ब पाठक के मन में पहले ही रहता है, अतः इनके द्वारा बहुत थोड़े से शब्दों में ही स्पष्ट बिम्बों की रचना की जा सकती है। कालिदास ने इस प्रकार के अनेक बिम्ब रचे हैं जिनका विश्लेषण आगे 'अभिव्यक्ति' शीर्षक के अन्तर्गत किया जायगा। यहाँ उदाहरण के लिये विदूषक की निम्न उक्तियाँ ली जा सकती हैं—

(1) अरण्ये मया रुदितमासीत्।
(2) त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ।

प्रथम में 'अरण्यरोदन' मुहावरे के द्वारा विदूषक की स्थिति की सुन्दर व्यंजना की गई है। दुष्यन्त शकुन्तला के ध्यान में मग्न है, विदूषक अपनी गाथा दुष्यन्त से निवेदन कर रहा है, दुष्यन्त जब उस पर ध्यान नहीं देता तो विदूषक को लगता है वह अरण्यरोदन कर रहा है। द्वितीय में 'त्रिशंकु' एक पौराणिक प्रतीक है जो 'न इधर का न उधर का' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। दुष्यन्त न तो तपोवन को छोड़ना चाहता है न माताओं की आज्ञा की अवहेलना करना चाहता है उसकी स्थिति त्रिशंकु की स्थिति से गोचर कराई गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुहावरे व लोकोक्तियों के आधार पर बिम्ब-रचना में कवि ने व्यंजना का सहारा लेने के कारण अल्पतम भाषा प्रयोग से काम चलाया है। किन्तु यह बिम्ब भी वाक्य में ही स्थित है वाक्यांश में नहीं। इसी प्रकार पहले उदाहरणों में आए अनेक बिम्ब वाक्याश्रित ही हैं।

वाक्यांश में स्थिति

कुछ बिम्ब ऐसे होते हैं जिनमें बिम्ब ग्रहण कराने में एक पद या वाक्यांश ही महत्त्वपूर्ण होता है। संज्ञा, क्रिया, विशेषण या क्रिया-विशेषण आदि में से कोई भी एक, कभी बहुत सशक्त होता है और वही बिम्ब का केन्द्र रहता है। कालिदास ने प्रायः सावयव व संश्लिष्ट बिम्ब दिये हैं किन्तु कहीं-कहीं वे एक पद या वाक्यांश से भी बिम्ब बनाने में सफल हुए हैं। ऐसे बिम्बों में वे 'संकेतगर्भी' पदों में संकेत मात्र करते हैं। रूपरंग भरने का काम पाठक पर छोड़ देते हैं। कालिदास के वाक्यांश विनिर्मित बिम्बों में तीन प्रकार की बिम्बात्मकता देखी जा सकती है—

(1) क्रिया (2) विशेषण (3) संज्ञा

क्रिया बिम्ब रचना का सशक्त माध्यम है। जब क्रिया ऐन्द्रिय गुण से युक्त होकर आती है तब वह अकेले ही बिम्ब बनाने में समर्थ हो जाती है। अचेतन

पदार्थों को चेतन क्रिया से युक्त करके सुन्दर क्रिया विम्ब वनते हैं। यथा-'ख' प्रसुप्तमिव' 'आकाश सो गया' मे सो गया क्रिया के प्रयोग से आकाश की नीरवता का जो विम्ब सामने आता है वह विना इस क्रिया के सम्भव नहीं है, राजा दिलीप जव वन से लौटकर आते है तो सुदक्षिणा उनको अत्यन्त तृष्णा के साथ देखती है। इस समस्त उत्कण्ठा को कवि ने एक क्रियापद 'पपौ' से इन्द्रिय स्तर पर जीवन्त कर दिया है—

पपौ निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्।

इसी प्रकार निम्न चरण में 'अवरोहतीव' क्रिया की विम्बात्मकता चमत्कार पूर्ण है—

'शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जता मेदिनी'।

उतरने की क्रिया से पृथ्वी का संपूर्ण वैभव नेत्रगम्य हो गया है। यहाँ क्रियोत्प्रेक्षा के द्वारा विम्ब विधान हुआ करता है। किन्तु विना उत्प्रेक्षा के भी यह सभव है। यथा-सन्तान-कामना से तप करने के इच्छुक दिलीप प्राजापालन के भार को अपनी भुजाओं से उतार कर सचिवों पर डाल देते है—

संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे॥ (रघु. 1·34)

यहाँ राज्य कार्यभार अचेतन भाव है जिसे 'स्वभुजादवतारिता' भुजाओं से उतारने की क्रिया से ऐन्द्रिय रूप में प्रस्तुत किया गया है। अन्यत्र भी-जैसे दुष्यन्त को शकुन्तला की प्रत्याख्यान काल की सवाष्प दृष्टि जलाती है 'सविषमिव शल्य दहति माम्'। यहाँ 'दहति' क्रिया दृष्टि से वाधक होने में 'अतिशय ताप' को अनुभव कराने में समर्थ हुई है। इस प्रकार क्रियाओं के उदाहरण अन्यत्र भी देखे जा सकते है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि क्रिया से तात्पर्य तिङन्त पद से ही नहीं लिया गया है अपितु किसी भी कर्म के अभिप्राय को क्रियापद से प्रकट किया गया है।

विशेषण विम्ब

क्रियाओं के अतिरिक्त विशेषण भी सजीव विम्बों का निर्माण करते है। विशेषण वस्तु के रंग, गन्ध आदि का वोध कराकर भाव को ऐन्द्रियता से युक्त कर देते है। अभिधा और स्वाभावोक्ति के आधार पर निर्मित विम्वों में विशेषण ही वस्तु के आकार प्रकार को मूर्त करते है। कालिदास सदैव उचित विशेषणों का प्रयोग कर वर्णन में सजीवता लाने का प्रयास करते है। ग्रीष्मऋतु के दिवसों की स्पृहणीयता को कवि ने विशेषणों से ही चित्रित किया है—

---

3 कु 3.52, रघु. 7/12 आदि

सुभगसलिलावगाहा पाटलसंसर्गसुरभिवनवाता ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसा परिणामरमणीया ॥ (अभि 1 3)

यहा 'सुभग' आदि विशेषण पद से ग्रीष्म दिनो का जलक्रीडा योग्यत्व 'पाटल' आदि से वायु का शीतलत्व, माधत्व एव सुखस्पर्शित्व गोचर होता है। 'प्रच्छाय' पद से श्रमहरत्व तथा अन्तिम विशेषण से अतिशय शोभा ध्वनित होती है। ग्रीष्म का स्वाभाविक चित्र बिना किसी सादृश्य विधान के विशेषणो के आधार पर खडा है। इस प्रकार रम्यान्तर कमलिनी हरितैं सरोभि '।[4] आदि पद्य मे मार्ग के सुखकर तत्वो को विशेषणो से ही बिम्ब रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार इसी नाटक के —

'आमष्टवक्षो हरिचन्दनाका मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा'[5] में रेखाकित विशेषण ही मन्दारमाला को गोचरता प्रदान करता है।

अप्रस्तुत विधान मे भी उपयुक्त विशेषण बिम्ब ग्रहण कराने म सहायक होते हैं। दुष्यन्त के कमरती शरीर का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम् ।
अपचितमपि गात्र व्यायत्वादलक्ष्यम
गिरिचर इवनाग प्राणसार बिभर्ति ॥ (अभि 2 4)

यहा राजा के लिये जो गिरिचर नाग का अप्रस्तुत बिम्ब लाया गया है उसे 'रविकिरणसहिष्णु' आदि विशेषण स्पष्टता व भास्वरता प्रदान करते हैं।

विशेषण बिम्बो मे प्राचीन दृष्टि से परिकर अलकार का चमत्कार ही कार्य करता है।

सज्ञा बिम्ब

सज्ञा मे स्वतन्त्र बिम्ब कम ही प्राप्त होते हैं। सामान्यत सज्ञा वाक्याश से सम्बद्ध रहकर ही बिम्ब बनाती हैं। वे बिम्ब निर्माण मे योग देती हैं, स्वतत्र रूप से बिम्ब निर्माण की क्षमता उनमे कम होती है। लक्षणा व व्यजना की शक्ति से विशिष्ट पर्याय का प्रयोग कर कालिदास सज्ञापदो से बिम्ब-निर्माण का कार्य लेते हैं। यथा 'कुमारसम्भव' मे कवि ने शिव के विभिन्न नामों का भिन्न भिन्न स्थानो पर प्रयोग कर उपयुक्त चित्र दिये हैं। सती की मृत्यु से अपरिग्रह का

---

4 अभि 4/10
5 वही 7/2

धारण किये शिव के लिये 'पशूनाम् पति'[6] कहा गया है जो उनके निर्मोही स्वरूप को अधिक स्पष्ट कर सकता है। अविचलित शिव की सेवा में जब पार्वती लगी हुई है तो कवि ने उन्हें 'स्थाणु' ठूंठ कहा है —

गुरोर्नियोगाच्च नगेन्द्रकन्या स्थाणुं तपस्यन्तमधित्यकायाम्।
(कु.3·17)

यहा अन्य पर्यायों की अपेक्षा 'स्थाणु' संज्ञा ही शिव के तप करते अविचल स्वरूप को बिम्बित कराने में अधिक समर्थ है। शिव के सर्जक स्वरूप का वर्णन करते समय उन्हें 'भव' कहा है — अमी हि वीर्यप्रभवं भवस्य,[7] शृंगार के प्रसंग मे उन्हें 'हर' कहा है। नारद हिमालय से कहते है — 'तुम्हारी पुत्री' 'हर' की शरीरार्धहरा होंगी'[8] भाव है कि जो शिव सबके हृदय को हरने वाले है उन्हें भी हर लेगी।

दिलिप अपना शरीर सिंह को सौंपते हुए कहते हैं—

एकान्तविध्वंसिषु मद्विधाना पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु'।
(रघु.2·57)

यहां 'शरीरेषु' के स्थान पर 'पिण्डेषु' संज्ञा भौतिक शरीर की सारहीनता को सशक्त ढंग से प्रस्तुत करती है जिससे दिलीप के अनास्था भाव को बल मिलता है।

कवि ने निरंग रूपकों द्वारा कही कही एक सज्ञा मे ही पूरा बिम्ब प्रस्तुत कर दिया है। इन्दुमती को अज से विवाहित देख अन्य राजा उसको रास्ते में रोककर खड़े हो जाते है—

स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम्।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ॥
(रघु.7·31)

यहां 'प्रमदा' पर 'आमिष' सज्ञा के आरोप मात्र से पूरा बिम्ब सामने आता है कि जैसे कोई मांस का लोभी गृध्रसमूह, आमिष को देखते ही उस पर टूट पड़ता है, उसी प्रकार इन्दुमती के सुन्दर शरीर मात्र के लोभी राजसमूह ने अज को घेर लिया। यहा अकेली 'आमिष' संज्ञा ही उस बिम्ब निर्माण में कारण है अन्य क्रिया विशेषण आदि पदों की उसे अपेक्षा नही है।

इस प्रकार कालिदास के काव्यो में बिम्ब अनेक प्रकार से स्थित हैं।

---

6. कु. 1/53
7. वही. 3/15
8. वही. 1/50

बिम्बो की प्रकृति के आधार पर कालिदास के बिम्बों का अध्ययन

मूतता बिम्ब की प्रकृति मे निहित है। उसका प्रमुख कार्य सम्मूर्तन व्यापार है। इस सम्मूर्तन व्यपार मे सादृश्य विधान का महवत्पूर्ण हाथ रहता है और विम्बो का एक बड भाग सादृश्यमूलक अलकारों से बनता है। इस अप्रस्तुत या उपमित विम्ब विधान मे कुछ कवियो की दृष्टि मूर्तता की ओर अधिक रहती है। वे मूर्त व अमूर्त सभी वस्तुओ को स्थूल मूर्त पदार्थों से उपमित करते है। इसके विपरीत कुछ कवि अमूर्त की ओर अधिक रुचि रहते हैं। किसी भी भाषा के प्रारभिक कवियो के साहित्य मे मूतता का ही आग्रह दिखाई देता है। धीरे-धीरे भाषा के शब्द भण्डार आदि के समृद्ध होने पर अमूतता की ओर भी रुचि दौडती दिखाई देती है। अग्रेजी के रोमाटिक साहित्य व हिन्दी के छायावाद मे अमूतता का विशेश आग्रह दिखाई पडता है जिससे इनकी कविता में झिलमिल सा सौन्दर्य औ वायवीय आकर्पण-सा दिखाई पडता है। सुमित्रानन्दन पत का निम्न उदाहरण इसका चरम निदर्शन माना जा सकता है –

'एक जल--कण, जलद–शिशु सा, पनक पर
आ पडा सुकुमारता–सा, गान–सा,
चाह–सा, सुधि–सा, सगुन– सा, स्वप्न–सा' (ग्रन्थि 19)[9]

इसी प्रकार नारी को मीन, मृग, खजन, कमल के कटघरे से निकाल कर' 'विश्वमाया कुहुक सी साकार' व 'प्राणसत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार' कहा है।

इस प्रकार मूतता व अमूर्तता क आधार पर उपलक्षित बिम्बो का अध्ययन रोचक हो सकता है। इस प्रकृति के आधार पर बिम्बो को तीन वर्गों मे बाटा जा सकता है—

(1) मूर्त उपमान से मूर्त की अभिव्यक्ति
(2) मूर्त उपमान से अमूत की अभिव्यक्ति
(3) अमूत उपमान से मूत की अभिव्यक्ति

साधारणत प्रथम दो प्रकार की उपमान – योजना ही विम्ब-निर्माण मे अधिक सहायक होती है। तीसरी योजना भी भाव की उपकारक होने पर प्रस्तुत मूत को अधिक स्पष्टता प्रदान करने में सहायक हो सकती है जैसा कि छायावादी काव्य के उपयुक्त उदाहरणो मे देखा गया है। अमूर्त उपमान से अमूर्त प्रस्तुत की तुलना केवल अलकार का विषय हो सकती है, वहा बिम्बात्मक का अभाव रहता है।

---

9 उद्धृत–आधुनिक हिन्दी कविता मे चित्र-विधान, पृष्ठ 115
ले डा रामयतन सिह

कालिदास के साहित्य में उपर्युक्त तीनों प्रकार की बिम्ब योजना का अत्यन्त कलात्मक विधान हुआ है। यद्यपि उनकी दृष्टि विषय को मूर्त कराने की ओर ही अधिक रही है अतः प्रथम दो प्रकार के बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। अब हम तीनों प्रकार के उदाहरण लेकर देखेंगे।

मूर्त से मूर्त की अभिव्यक्ति—

कालिदास के काव्य मे मूर्त से मूर्त की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर हुई है। इस योजना में प्रस्तुत मूर्त को अप्रस्तुत योजना से और अधिक स्पष्टता प्राप्त होती है, जिसमे प्रस्तुत का रूप, रेखा, रंग और गति आदि पाठक के मन पर स्पष्ट अंकित हो जाते है। इसके साथ ही पाठक को एक साथ आस-पास सजे हुए दो चित्रों का आनन्द भी आता है। विभिन्न पात्रों के रूप-वर्णन मे प्रयुक्त परम्परागत अथवा मौलिक वस्तु-बिम्ब सामान्यतः इसी वर्ग में आते हैं। चन्द्र, सूर्य, कमल, कमलिनी, लता, वृक्ष, हरिणी आदि की परम्परागत उपमाएं इसी प्रकार की हैं। इनके उदाहरण स्वतः देखे जा सकते है। यहां कुछ मौलिक व कलात्मक उदाहरण लिये जा रहे हैं।

दिलीप व सुदक्षिणा दोनो वसिष्ठ आश्रम की ओर जा रहे है। जिस रथ पर वे दोनो बैठे हुए थे वह मीठी घरघराहट करता हुआ चला जा रहा था। उस पर बैठे हुए वे दोनो ऐसे जान पड़ते थे मानो वर्षा के बादल पर ऐरावत और बिजली दोनों चढ़े जा रहे हों।

स्निग्धगंभीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव ॥ (रघु.1 36)

यहां प्रस्तुत व अप्रस्तुत दोनों ही मूर्त है। स्निग्ध गंभीर ध्वनि करने वाला रथ वर्षा का मेघ है (क्योंकि उसकी ध्वनि भी स्निग्ध गंभीर है।) दिलीप ऐरावत की भांति विशालकाय व गौरवर्ण हैं। सुदक्षिणा विद्युत् की भांति सौन्दर्य की ज्योति से चमक रही है। यहां मूर्त अप्रस्तुत मे प्रस्तुत के आकार, रंग, ध्वनि व गति को स्पष्टता प्रदान की गई है। कालिदास के मूर्त बिम्बो में सर्वांगीणता रहती है जो चित्र को सर्वथा गोचर कर देती है। यथा—

शरीरमात्रेण नरेन्द्रतिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥
(रघु. 5·15)

समस्त धन दौलत बांट देने के बाद शरीर मात्र से स्थित राजा रघु, कौत्स को, उस नीवार की भांति प्रतीत होते है जिसकी समस्त शस्य-सम्पत्ति तपोवन के निवासियों द्वारा ले ली गई हो और जो स्तम्ब मात्र रह गया हो। तपोवन मे फल-मूल लेने जाते समय जैसे स्तम्बावशिष्ट नीवार से ब्रह्मचारी कौत्स का प्रयोजन

सिद्ध नहीं होना होगा उसी प्रकार सम्प्रति रघु से उनका प्रयोजन सिद्ध नहीं हो रहा है।

कालिदास की मूर्त से मूर्त की अभिव्यक्ति कुछ स्थलों पर इस प्रकार की है कि लगता है मानो कवि ने पास-पास दो चित्र सजा दिये हों और वे दोनों चित्र मानो एक दूसरे को प्रभावित कर एक ही फल उत्पन्न कर रहे हों यथा—जब राजा दिलीप द्वारा सेवित नन्दिनी को सिंह दबोच लेता तो पाटल वर्ण वाली गाय पर बैठा हुआ सिंह ऐसा प्रतीत होता है जैसे पर्वत की धातुमयी अधित्यका कोई प्रफुल्लित लोध्रद्रुम हो—

स पाटलाया गवि तस्थिवासं धनुर्धरं केसरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्या लोध्रद्रुमं सानुमत प्रफुल्लम॥

(रघु 2 29)

राजा पहले से ही पर्वत की शोभा देखने मे मग्न थे। गाय पर सिंह को देखते ही उनकी दृष्टि मे कोई सद्य दृष्ट बिम्ब आना अति स्वाभाविक है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कवि का वर्ण्य-प्रस्तुत मूर्त है किन्तु पाठक का देखा हुआ नहीं है, जबकि दूसरा वृक्ष का दृष्ट है। अत कवि ने अपने कल्पना के दृश्य को सर्व-संवेद्य बिम्ब मे गोचर कराया है जिससे पाठक को बिम्बग्रहण मे कोई कठिनाई नही होती।

इसी प्रकार जब अज गन्धर्व अस्त्र के प्रभाव से प्रतिपक्षी सेना को सुला देते हैं तो, अज के योद्धाओं को, सोते हुए शत्रुओं के बीच अज ऐसे लगते है मानो मुंदे हुए कमलों के बीच मे चन्द्रमा चमक रहा हो—

निमीलितानामिव पङ्कजाना मध्ये स्फुरन्त प्रतिमाशशाङ्कम्॥

(रघु 7 64)

रघु के दिग्विजय प्रसग मे पारसीकों के सिर कट कट कर पृथ्वी पर गिर पडते हैं। उनके दाढी मूछों से व्याप्त सिर जमीन पर गिरे हुए ऐसे लगते हैं जैसे मधुमक्खियों से भरे उनके छत्ते हों।[10] यहाँ मधुमक्खियो के छत्तो के बिम्ब से दाढी मूछो से व्याप्त सिरो की यथार्थ कल्पना उत्पन्न होती है।

पूर्व अध्यायों मे वर्णित कालिदास के बिम्बो में इस प्रकार के उदाहरण स्थल देखे जा सकते हैं। सक्षेप मे यह कह सकते हैं कि कालिदास मूर्तीकरण मे वस्तुओं के आकार-प्रकार, रंग व गति आदि का पूरा ध्यान रखते हैं।

अमूर्त की मूर्त से अभिव्यक्ति

बिम्ब भाषा का चित्र-धर्म है। अमूर्त पदार्थों व भावों को मूर्तता प्रदान करना बिम्ब का मुख्य कार्य है। सादृश्य मूलक अलंकारों मे भी जहाँ अमूर्त की

---

10 रघु 4/62

मूर्त से अभिव्यक्ति की जाती है, सुन्दर बिम्ब बनते हैं। कालिदास ने अमूर्त की मूर्त से अभिव्यक्ति अत्यन्त कुशलतापूर्वक की है। इनके इस कोटि के बिम्ब अति सुन्दर हैं। कालिदास का काव्य, हृदय पर इसलिये अमिट छाप छोड़ता है क्योंकि वे अमूर्त से अमूर्त वस्तु को, मूर्त उपमा से गोचर करा देते है। कालिदास की उपमाओ मे अमूर्त मानसिक अवस्थाओ का प्रकाशन अतीव सूक्ष्मता से किया गया है, जिससे साधारण चित्तवृत्तिया भी यथार्थ चित्र के रूप में पाठक के निकट स्पष्ट हो उठती हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण कवि की रचनाओं में से एकत्र किये जा सकते हैं। यथा– धोबी के द्वारा सीता पर लगाया गया कलंक एक अमूर्त भाव है। सूर्यवंशी राजर्षियो के पवित्र कुल में सदाचारीराम के कारण फैला यह कलंक वैसा ही है जैसे भाप पड़ने से स्वच्छ दर्पण का धुंधला हो जाना—

'मत्त: सदाचारशुचे: कलंक: पयोदवातादिव दर्पणस्य'।

(रघु.14·37)

बरसात की गीली हवा में दर्पण का धुंधला होना व उसमें धब्बे पड़ जाना एक आम बात है। इस साधारण अनुभव को अत्यन्त मार्मिकता से प्रयोग कर अमूर्त कलक को मूर्त स्वरूप दिया गया है। आगे राम कहते हैं– 'जैसे पानी की लहरो पर तेल की बूंद फैलती ही चली जाती है, उसी प्रकार मेरी निन्दा फैल रही है। इस प्रथम अपयश को मैं उसी प्रकार सहने में असमर्थ हूं जैसे गजराज पहली बार बाधे जाने पर आलान (खूंटे) को सहने में असमर्थ होता है—

पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरंगेष्विव तैलबिन्दुम्।
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकं स्थाणुमिव द्विपेन्द्र:॥

(रघु.14·38)

अपयश बड़ी शीघ्रता से फलता है इसे जल की लहरों में तेल बिन्दु की व्याप्ति से कवि ने मूर्त किया है। राम प्रथम अपयश को बर्दाश्त नही कर पाते और अपयश के कारण को मिटा देना चाहते हैं। यह एक अगोचर स्थिति है। इसे स्पष्ट किया है हाथी की उपमा से – हाथी प्रथम बन्धन को स्वीकार नहीं कर पाया और बन्धन के कारणभूत खूंटे को उखाड़ फेकना चाहता है। यहीं अमूर्त 'निन्दा' को मूर्त शल्य भी कहा है।[11] जिससे निन्दा का कष्टदायी होना ध्वनित होता है।

राज्य का भार भी एक अमूर्त वस्तु है। राज्य की प्राप्ति से सुख तो होता है किन्तु प्रजापालन मे कठिनाई भी होती है अत: वह ऐसे छत्र के समान है जिसका डंडा खुद पकड़कर चलना पड़े। उस छत्र से जो वर्षा व आपत से रक्षा का सुख मिलता है, वह उठाने के श्रम से बराबर हो जाता है—

---

11. रघु. 14/42

नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय
राज्य स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् । (अभि 5 6)

यहाँ अमूत राज्य के लिये मूर्त आतपत्र का साम्य अति प्रभावशाली है ।

शाप भी अमूर्त है । दशरथ,श्रवण के पिता द्वारा दिये गये शाप को उस अग्नि के समान बतलाते हैं जो जगल को जलाने के बावजूद पृथ्वी को इतनी उपजाऊ बना देती है कि भविष्य मे बड़ी अच्छी उपज होती है क्योकि सन्तानविहीन दशरथ को, पुत्रशोक मे मरने के अभिशाप से, पुत्रप्राप्ति का वरदान भी अनायास ही मिल जाता है—

शापोऽप्यदृष्टतनयाननदमशोभ सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम ।
कृष्या दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननी ज्वलन करोति
(रघु 9 80)

'रघुवश' के प्रारम मे ही कवि ने अमूर्त की मूर्त से अभिव्यक्तियो का समावाय दिया है । यथा-पार्वती परमेश्वर को वाक्-अर्थ की भाँति सम्पृक्त कहना । छोटी सी बुद्धि से महान् वश का गुणगान, जैसे, उडुप मे महासागर पार करने का बालिश प्रयास । साधारण कवि द्वारा महाकवि के यश को प्राप्त करने का प्रयत्न जैसे बौने के द्वारा उच्च फलो को बाहे उठाकर तोडने का असफल प्रयास । यहाँ अमूर्त स्थितियो को बड़े मौलिक बिम्बो से गोचर कराया गया है । इसी प्रकार यहाँ कवि कहते हैं कि पूर्व वाल्मीकि आदि कवियो द्वारा सूयवश का वर्णन करदिये जाने से मेरे लिये 'रघुवश' लिखना वैसा आसान हो गया है जैसे मणि मे वज्र द्वारा छेद कर दिय जाने पर धागे का प्रवेश आसान हो जाता है । यहा रघुवश का वर्णन है मणि मे प्रवेश, वाल्मीकि, व्यास आदि हैं वज्र और कवि स्वय को सूत्र के समान कहता है । इस बिम्ब से कवि ने गति की सरलता का मूर्तित किया है ।

पार्वती ने जब पढना प्रारम्भ किया तो पूर्वजन्म की विधाएँ उन्हे स्वत स्मरण हो आई , जैसे कि, शरद्ऋतु आ जाने पर गगा मे हस-पक्ति स्वत आ जाती है, या, स्वत चमकने वाली जडी बूटियो मे रात को चमक आ जाती है—

ता हसमाला शरदीव गगा महौषधि नक्तमिवात्मभास ।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्या ।। (कु 1 30)

बालक रघु के विद्या-प्राप्ति अवसर पर भी कवि ने इसी प्रकार सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है । रघु लिपि सीखने के बाद वाड्मय मे प्रवेश कर जाते हैं जैसे कि नदी के मुहाने से समुद्र म कोई प्रवेश करे ।[13]

---

12 सर्ग 1/1 से 4

13 रघु 3/28

इसी प्रकार 'मेघदूत' मे कवि ने आशा के वन्धन को कुसुम के वृन्त से बन्धन की भाँति कहा है—

> आशावन्धः कुसुमसदृश प्रायशो ह्यंगनानाम् ।
> सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणाद्धिः।। (पू. मे. 9)

वियोग में विरही हृदय कभी का नष्ट हो जाय यदि आशा का बन्धन उसे रोके न रखे। वृन्त से हिला हुआ भी फूल मिट्टी में गिरने से पहले, उसी बन्धन के सहारे टिका रहता है।

कालिदास के नाटकों मे हृदय की अमूर्त अवस्थाओं का अत्यन्त कलात्मक मूर्तन किया गया है। उपमादि सादृश्य के द्वारा अति सुन्दर विम्व मिलते है। उर्वशी जव स्वर्ग से बुलावा आने पर चल देती है तो राजा पुरूरवा अपने मन की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते है —

> एवा मनो मे प्रसभं शरीरात्
> पितुःपदं मध्यममुत्पतन्ती ।
> सुरांगना कर्षति खण्डिताग्रात्
> सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ।। (वि. 1·20)

आकाश मार्ग से उड़कर जाती हुई उर्वशी राजा के मन को वलात् शरीर से वहार खीचे लिये जा रही है, ठीक वैसे ही जैसे राजहंसी कमल की टूटी डंडी सूत (तन्तु) खीचे लिये चली जाती है। हृदय के अपहरण का जो अमूर्त व्यापार है, उसका कुछ मिलता-जुलता चित्र दुष्यन्त का भी है। यहाँ राजा को ही नायिका से दूर हटना है। शकुन्तला मे प्रथम मिलन के वाद, राजा की इच्छा नगर जाने की कतई नही है। अपने पड़ाव की ओर जाते समय उनका शरीर ही जा रहा है, मन, तो पीछे आश्रम वासिनी शकुन्तला की ओर ही दौड़ लगा रहा है—

> गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
> चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ।। (अभि. 1·30)

सामने से आती हवा के प्रतिकूल जव पताका को लेकर चला जाता है तो डंटा ही आगे चलता है, पताका का रेशमी वस्त्र तो तेजी से पीछे की ओर ही फरफराता रहता है। इस मूर्त योजना से प्रणय के सूक्ष्म मनोव्यापार को ऐन्द्रियता प्रदान की गई है।

दुष्यन्त के राज दरवार में शकुन्तला के प्रस्तुत किये जाने पर राजा उसे पहचान नही पाते। उसके अनुपम रूप से आकृष्ट होकर उसका परित्याग भी नही कर पाते। राजा की मानसिक अवस्था उस भ्रमर जैसी हो जाती है जो अन्तस्तुषार कुन्द के चारों ओर मंडराता ही रहता है। मधु के लालच में न तो उसे छोड़ पाता है और तुषार के भय से न उसे भोग पाता है। राजा भी रूप-लोक मे

शकुन्तला को छोड नही पाता और पर-स्त्री स्पर्श की आशका से उसे ग्रहण भी नही कर पा रहा—

> इदमुपनतमेव रूपमविलष्टकान्ति
> प्रथम परिगृहीत स्यान्नवेति व्यवस्यन् ।
> भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुपार
> न च खलु परिभोक्तु नैव शक्नोमि हातुम् ॥ (5 19)

कवि कालिदास जटिल से जटिल मन स्थिति को मूर्त बिम्ब द्वारा सरलता से गोचर कराने की सामर्थ्य रखते हैं । दुष्यन्त, शकुन्तला के मिलने पर अपने मनो विकार का विश्लेपण करते हैं—

> यथा गजा नेति समक्षरूपे
> तस्मिन्नपक्रामति सशय स्यात् ।
> पदानि दृष्टवा तु भवेत्प्रतीति—
> स्तथाविविधो मे मनसो विकार (7 31)

जैसे, 'जब हाथी सामने आए तो लगे कि यह हाथी नही है । उसके गुजर जाने पर सन्देह होने लगे कि शायद हाथी था, तदनन्तर पदचिह्नो को देखकर विश्वास किया जाय कि ये तो हाथी के ही पैर हो सक्ते हैं ।' शकुन्तला जब सामने आई, उसने अनेक पूर्व-परिचय भी दिये किन्तु राजा उसे पहचान नही पाया । उसके चले जाने पर मन की बलवान् पीडा ने सशय उत्पन किया और अगूठी को देखकर विश्वास हुआ । यह प्रतीति का ढग सर्वथा समझ में न आने योग्य है । कवि ने गज के माध्यम से मनोविकार का रूप नेत्रो के लिये प्रत्यक्ष कर दिया है । किसी अन्य वस्तु या प्राणी के स्थान पर गज का उल्लेख भी विशेष कौशल का परिचायक है । हाथी जैसा भारी भरकम जीव आंखो के सामने से निकल जाय और लगे कि हाथी नहीं है—असम्भव बात है । इसी प्रकार शकुन्तला जैसी सुन्दरी से 'तथाविध' प्रेम करने के बाद भूल जाना अत्यन्त विस्मय की बात है । दुष्यन्त इसीलिए अपने इस सम्मोह की अन्धे के व्यापार से तुलना करते हैं—

> प्रबलतमसामेवप्राया शुभेषु हि वृत्तय ।
> स्रजमपि शिरस्यन्ध क्षिप्ता धुनोत्याहिशक्या ॥ (7 21)

अज्ञानी की शुभ कार्य मे इसी प्रकार की (सम्मोहात्मक) मानसिक अवस्था हुआ करती है । अन्धे के गले मे फूलो की माला डाल देने पर भी वह साप की आशका से उसे दूर फैंक देता है ।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण कवि की रचनाओ मे खोजे जा सकते हैं । सक्षेप मे कह सकते हैं कि अमूर्त पदार्थ व मनो-व्यापार मूर्त-पदार्थों व व्यापारो से स्पष्टता प्राप्त कर सहज ही गोचरता प्राप्त कर जाते हैं । इस पद्धति से पदार्थो व भावों को प्रत्यक्ष कराने मे कालिदास सर्वातिशायी हैं ।

मूर्त की अमूर्त अभिव्यक्ति

जिन्हें हम साधारणतया अमूर्त गुण या वस्तुहीन कहते हैं और एकदम रूप वर्णहीन समझते हैं, उनमें बाहरी तौर पर कोई रूप या वर्ण न होने पर भी अनेक बार हमारे मन में उनके भी रूप एवं वर्ण रहते हैं। उनमें कई बार अत्यन्त सूक्ष्म मूर्तता की रेखा होती है। जब मूर्त पदार्थों की तुलना अमूर्त उपमान से की जाती है तो प्रस्तुत मूर्त मे किसी न किसी गुण या विशेषता को प्रकट करने के लिये ही ऐसा किया जाता है। ऐसी स्थिति में अमूर्त उपमान भी बिम्ब के साथ के साधन बन जाते हैं। यद्यपि अप्रस्तुत बिम्बों का मुख्य प्रयोजन स्थूल उदाहरणों द्वारा सूक्ष्म भावों को प्रकट करना ही है किन्तु काव्य कुशलता की उच्चतम स्थिति मे पहुँचकर कवि उसके विपरीत पद्धति भी अपना सकता है। जैसा कि बिम्बों की प्रकृति के प्रारम्भ मे कहा गया है, हिन्दी छायावादी कवियों की कविता में यह प्रवृत्ति बहुलता मे देखी जाती है। प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत बादलों को 'अपयश की भाँति' फैलते देखते है और जल प्रपात को 'वासना की भाँति हिलोरें लेता हुआ' पाते हैं। अंग्रेजी के रोमांटिक कवि शैली आदि में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। कालिदास भी अमूर्त भावों के द्वारा मूर्त की सफल अभिव्यक्ति करने में निपुण हैं। इस योजना मे बहुधा व्यक्तीकृत भाव उपमा का मापदण्ड हो जाता है और विपरीत पद्धति से बिम्ब का आनन्द आता है। यथा—

'शाकुन्तल' मे दुष्यन्त के रथ से डरकर हाथी कण्व के आश्रम में घुस जाता है। वह हाथी तीव्र आघात से वृक्षों को तोड देता है। टूटे वृक्ष की टहनी उसके दांत मे अटकी हुई है। पैरों द्वारा खींची गई लताओं के उलझ जाने से जिसके पैरों मे फन्दे से पड़े हुए हैं। मृगो के झुण्ड को जिसने तितर-बितर कर दिया है, ऐसा वह ऋषियों की तपस्या के लिए मूर्तिमान् विघ्न रूप है। यहां प्रस्तुत हाथी की विध्वंसक क्रियाएँ मूर्त है इनके लिए 'मूर्त विघ्न' अमूर्त उपमान है। तपस्वियों के लिये जो विघ्न हो सकते है उसका मूर्त रूप उक्त प्रकार का हो सकता है। इस अमूर्त उपमान से जैसे पाठक के सामने यह स्पष्ट हो रहा है कि यदि अमूर्त विघ्न का बिम्ब कल्पित करें तो उक्त प्रकार से तपोवन का रौंदा जाना हो सकता है। इसीलिये कह सकते हैं कि अमूर्त उपमान मे मूर्त वस्तु की उपमा दिये जाने पर बिम्ब मे बाधा नहीं आती बल्कि एक प्रकार का आनन्द ही आता है। कालिदास ने अपनी प्रौढ़ रचनाओं में इस प्रकार के अनेक बिम्ब सजोए हैं। शकुन्तला के निर्दोष सौन्दर्य की तुलना महान पुण्यों के अखण्ड फल से की गई है।[14] पश्चाताप करता हुआ दुष्यन्त शकुन्तला से हुए अपने अल्पावधि मिलन की तुलना उतने ही कम पारितोषिक से करता है। इसी अवसर पर दुष्यन्त शकुन्तला से अपने प्रथम मिलन को

14· अभि. 2 /10

स्वप्न, माया, मतिभ्रम आदि अप्रस्तुत भावों से उपमित करता है—

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु
विलष्ट नु तावत्फलमेव पुण्यम् ॥ (अभि 6 10)

स्वप्न मे देखी वस्तु नष्ट हो जाती है, जादू भी थोडी देर के लिये रहता है, बुद्धिभ्रम मे व्यक्ति कुछ का कुछ समझ लेता है। तपोवन म थोडे समय के लिये शकुन्तला का मिलन और फिर सदा के लिय दुलभ हो जाना इसी प्रकार का है। अपि च, पुरूरवा उर्वशी के साथ रथ पर बैठे हुए हैं। रथ के हिलने डुलने से उर्वशी के शरीर का स्पर्श पाकर राजा के शरीर मे जो रोमाच हो उठता है, वह ऐसा जाना पडता है जैसे प्रेम के अकुर फूट आए हो—

यदिद रथसक्षोभादगेनाग ममायतेक्षणया।
स्पृष्ट सरोमकण्टकमकुरित मनसिजेनेव ॥ (वि 1 13)

यहाँ 'मनसिज' अमूर्त भाव है किन्तु अकुरित होना मूत क्रिया है जिससे रोमाच को दृश्य रूप मे अनुभव किया जा सकता है। इसी प्रकार चिर वियोग के बाद जब राजा को अचानक उर्वशी प्राप्त होती है तो वह कहता है कि तुम्हारे विछोह के अन्धकार मे डूबते हुए मैंने भाग्यवश तुम्हें क्या पा लिया, मानो, मरते हुए को प्राण मिल गये—

दिष्टया प्रत्युपलब्धासि चेतनेव गतामुना। (उ 4 71)

'मरते हुए को सास वापस आना' एक अमूर्त भाव है किन्तु उसकी गभीरता बहुत कुछ अनुभव की बात है-'सास मे सास आने' का अनुभव सभी को है। इस उपमान मे राजा का सन्तोष भलीभाति हृदयगम किया जा सकता है।

इन्दुमती अज के गले मे जो वरमाला डालती है, वह मानो मूर्त अनुराग ही है—

आसजयामास यथा प्रदेश कण्ठे गुण मूर्तमिवानुरागम् ॥ (रघु 6 83)

माला को साक्षात अनुराग कहने से इन्दुमती के हृदय का वह अनुराग ही सामने आता है, जिस अनुराग से उसने माला पहनाई है। तभी तो राजकुमार अज उस माला को इन्दुमती का 'कण्ठार्पितबाहुपाश'[15] मानते हैं।

कवि, काव्य मे मूर्त विधान के महत्त्व को भलीभाति समझते हैं इसीलिये वे अमूर्त विषयो को बराबर मूर्त, साक्षात् आदि विशेषणो से युक्त करके प्रस्तुत करते हैं। यथा—

राजकुमार अज, विजय घोषणा हेतु जब शख अपने होठों पर रख कर फूकते हैं तो ऐसा लगता है मानो अपने हस्तोपार्जित मूर्त यशोराशि का पान कर रहे हैं—

---

15 रघु 6/84

ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे
निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः ।
तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरः
पिबन् यशो मूर्तमिवावभासे ।। (रघु. 7·63)

श्वेत शंख मानो शुभ्र यशोराशि है । यश यद्यपि अमूर्त है किन्तु उसका 'पान करना' कहने से उसे मूर्त की भांति प्रस्तुत किया गया है । थोड़ा विचार करने पर यह दीख पड़ेगा कि राजकुमार अज की यशोराशि, जैसे, एक धवल शंख में मूर्त हो उठी है, वैसे ही अज का शौर्य-वीर्य भी इस एक उत्प्रेक्षा में बहुत कुछ मूर्त हो गया है ।[16]

इसी प्रकार दिलीप जब नन्दिनी का दुग्धपान करते हैं तो उसे कवि 'शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः' कहते हैं ।[17]

यही नहीं, कवि ने अभिव्यक्ति के इसी विलास में, इन्दुमती के रूप में विजयलक्ष्मी का सुन्दर बिम्ब भी दिया है—

रथ तुरग रजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा
समरविजयलक्ष्मी सैव मूर्ता बभूव ।। (रघु. 7·70)

अपने शत्रुओं के मस्तक पर बायां पैर रखकर, अज, सुन्दरी इन्दुमती को लेकर चल दिये । उस समय रथ के घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल से इन्दुमती के केश भर गए थे । वही अज के साथ चलती साक्षात् विजयलक्ष्मी हुई ।

स्पष्ट है कि अमूर्त उपमान योजना से भी प्रस्तुत मूर्त पदार्थ के सुन्दर बिम्ब निर्मित किये जा सकते हैं । किन्तु मूर्त की अमूर्त से अभिव्यक्ति सदैव बिम्बात्मक नहीं होती । अनेक स्थानों पर यह रूखी सादृश्य योजना मात्र रह जाती है । उदाहरणार्थ—

मंगलालंकृता भाति कौशिक्या यतिवेषया ।
त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया ।। (मा. 1·14)

मांगलिक वस्त्राभूषणों से अलंकृत महारानी यतिवेशधारिणी कौशिकी के साथ ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे 'त्रयी' 'अध्यात्मविद्या' के साथ शरीर धारण करके चली आ रही हो ।

यहां बिम्ब ग्रहण नहीं हो पाता क्योंकि त्रयी का विग्रह भी पुस्तकादि के रूप में ही बन पाता है । इसके विपरीत उपर्युक्त 'विजयलक्ष्मी' के मूर्त रूप में बिम्बात्मकता का कारण यह था कि विजयलक्ष्मी स्वयं में कल्पित किया गया है ।

16. 'उपमा कालिदासस्य' पृष्ठ 93
17. रघु 2/69

अमूर्त उपमान में अमूर्त प्रस्तुत की अभिव्यक्ति में भी बिम्ब ग्रहण नहीं हो पाता। कारण है कि बिम्ब में मूर्तता का होना आवश्यक है। प्रस्तुत व अप्रस्तुत दोनों के अमूर्त होने से केवल सादृश्यमूलक अलंकार का विषय तो हो सकता है किन्तु गोचरता के अभाव में बिम्ब विधान का क्षेत्र नहीं माना जा सकता। स्पष्ट है कि कालिदास में मूर्तता की प्रवृत्ति अधिक है। उपमान चाहे मूर्त हो या अमूर्त, उनका आग्रह किसी न किसी प्रकार वस्तु को गोचर बनाने का ही रहता है। वे रूपवर्णहीन अप्रस्तुताकाश में पंख मारकर वस्तु व नामहीन वायवीय सौन्दर्य की सृष्टि में आस्था नहीं रखते।

बिम्बों की अभिव्यक्ति का माध्यम

बिम्ब के कलापक्ष में अभिव्यक्तिगत प्रयोग का अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण है। कवि अपनी अनुभूति की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न माध्यमों का आश्रय लेता है। इसके आधार पर बिम्बों के शैलीगत रूप भेदों का अध्ययन किया जा सकता है। इससे कवि का भाषाधिकार एवं शैलीगत कौशल प्रकट होता है। इससे वर्ण्य एवं भाषा के पारस्परिक समंजस्य का सही विश्लेषण भी किया जा सकता है। प्रत्येक कवि की अपनी शैली होती है जो बिम्बों के प्रयोग में विशिष्टता का कारण बनती है। उदाहरणार्थ, कुछ कवि अभिधात्मक वस्तुकथन तथा इतिवृत्तों के सूक्ष्म विवरणों द्वारा एवं स्वभावोक्ति के आधार पर बिम्ब-निर्माण में अधिक रुचि प्रदर्शित करते हैं, अन्य कवि सादृश्यमूलक अलंकारों द्वारा बिम्ब निर्माण के अधिक शौकीन होते हैं, कुछ मानवीकरण में विशेष सिद्धहस्त हो सकते हैं। साधारण कवि प्रचलित परिपाटी पर ही चलकर अपनी परम्परा-प्रियता को प्रदर्शित करते हैं। जबकि युगान्तरकारी कवि प्रयोगों की नवीनता द्वारा प्रचलित शैली के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हैं। श्रेष्ठ कवि अपने वर्ण्य विषय की आवश्यकता को देखते हुए अपनी स्वभावगत विशिष्टता में नियमित होकर विभिन्न शैलियों का अवलम्बन किया करता है। उदाहरणार्थ वाल्मीकि की कविता में स्वाभाविक शैली का ही अधिक आश्रय लिया गया है। कालिदास का उपमा, मानवीकरण व स्वभावोक्ति इन तीन साधनों के प्रति विशेष मोह है। वाल्मीकि में कालिदास जैसी मानवीकरण शैली का सौन्दर्य नहीं प्राप्त होता है। माघ, श्रीहर्ष आदि में कलात्मक और ऊहात्मक सादृश्य की प्रधानता है। भवभूति में नाद-व्यंजना व स्वभाव-वर्णन के साथ संवेदनशीलता का योग हुआ है। इस प्रकार बिम्बों के अभिव्यक्तिगत प्रयोगों के आधार पर कवि की शैलीगत रुचि प्रकट होती है। कवि की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति के अनन्त रूप हो सकते हैं, कहा भी है 'अनन्ता हि वाग्विलासा' किन्तु सामान्य उन्हें निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति
(2) लक्षणा द्वारा

(3) अलंकारों द्वारा
(4) मानवीकरण
(5) प्रतीक
(6) अन्योक्ति
(7) मुहावरे व लोकोक्ति
(8) विशेषण-विपर्यय
(9) अन्य

अध्ययन सम्बन्धी सुविधा के लिए ही यह विभाजन किया गया है। अवश्य ही इनमें से कई साधन एक दूसरे की सीमा रेखा में आ सकते हैं जैसे विशेषण-विपर्यय एक प्रकार की लक्षणा हो सकती है और मानवीकरण का रूप समासोक्ति अलकार में देखा जा सकता है। यहाँ प्राचीन व आधुनिक प्रचलित मानदडों को दृष्टिगत रखते हुए ही यह विभाजन समीचीन समझा है। अब हम कालिदास के बिम्बों को इन शैलीगत भेदों के आधार पर परखने का प्रयत्न करेंगे।

(1) अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति

यद्यपि कालिदास को उपमा का कवि कहा जा है किन्तु अभिधा की इतिवृत्तात्मक शैली के आधार पर भी वे चित्र देने में समर्थ हैं। वस्तुओं के अभिधा के आधार पर सूक्ष्म विवरण देकर वे चित्रात्मकता का सर्जन कर देते हैं। प्रकृति-वर्णन नगर-वर्णन व चित्रण मे अभिधा शैली का प्रयोग किया गया है। सेना का अभियान, आखेट वर्णन आदि को कवि ने विम्ब रूप में ही हमारे सम्मुख रखा है। 'ऋतु-संहार' मे इस सीधी सपाट शैली द्वारा अनेक स्थानों पर बिम्ब सृष्टि हुई है। यथा—वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

> वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
> ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
> नद्यो घना मत्तगजा वनान्ता:
> प्रिया विहीना: शिखिन: प्लवंगा:॥ (2.19)

यहाँ बिना किसी उपचार के ऋतु के विभिन्न उपादानों का वर्णन करने से वर्षा का दृश्य जीवन्त हो उठा है। शरदृतु मे श्वेत रंग के साम्राज्य का वर्णन भी इसी प्रकार किया गया है—

> काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो
> हंसैर्जलानि सरितां कुमुदै: सरांसि।
> सप्तच्छदै: कुसुमभारनतैर्वनान्ता:
> शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभि:॥ (3.2)

इसी प्रकार वसन्त के शनै: शनै आगमन का चित्र रेखांकित करता हुआ कवि कहता है—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥
(रघु. 8 26)

अवश्य हो। सूक्ष्म वर्णन के कारण यहाँ बिम्बात्मकता की सृष्टि हुई है।

ऋतु वर्णन के अतिरिक्त घटनाओं के वर्णन भी कवि ने बिम्बात्मकता के साथ प्रस्तुत किये हैं। व्यक्तियों की मुद्राओं व क्रियाओं का सूक्ष्म वर्णन व परिस्थिति का चित्रांकन करके कवि ने अभिधा शैली द्वारा ही घटनाओं को प्रत्यक्ष किया है। 'कुमारसम्भव' के तृतीय सर्ग में[18] शिव की समाधि व कामदेव का वर्णन इसी प्रकार का है। शिव लतागृह में बैठे हुए हैं। लतागृह के द्वार पर शिव का नन्दी द्वारपाल बना बैठा है। बाएँ प्रकोष्ठ पर हेमयष्टि को टिकाए हुए होठों पर उँगली रखकर गणों को चंचलता से रोक रहा है। वृक्ष निष्कम्प हैं, भौंरे शान्त। पक्षी मौन साधे हुए हैं और मृग ठिठके हुए। यह सारा वर्णन चित्रात्मक है। इसमें कामदेव नन्दी की आँखें बचाकर नमेरु शाखाओं से घिरे समाधिस्थान में पहुँचता है। वहाँ क्या देखता है—

स देवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।
आसीनमासन्नशरीरपातस्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श ।
पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायतं संनमितोभयांसम् ।
उत्तानपाणिद्वयसंनिवेशात्प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये ॥
भुजङ्गमोन्नद्धजटाकलापं कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम् ।
कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम् ॥
किंचित्प्रकाशस्तिमितोग्रतारैर्भ्रूविक्रियायां विरतप्रसङ्गैः ।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैर्लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखैः ॥
(3 44–47

शिव देवदारु वृक्षों के बीच बनी वेदी पर बाघाम्बर बिछाए बैठे हैं। उन्होंने वीरासन लगा रखा है। ऊपर का अर्ध शरीर बिलकुल सीधा तना हुआ है, दोनों कन्धे तनिक झुके हुए हैं दोनों हथेलियाँ गोद में (कमल की भाँति) सीधी पड़ी हैं। जटाएँ साँपों से बँधी हुई हैं। दोहरी रुद्राक्ष माला कान पर टँगी हुई है। गले की नीलिमा से अधिक साँवली दिखाई पड़ने वाली मृगछाला एक गाँठ से शरीर पर बाँध रखी है। भौंह तनी हुए हैं। कुछ-कुछ प्रकाश देने वाली निश्चल उग्रतारों वाली और नीचे की ओर किरणें डालने वाली आँखों से नाक के अगले भाग पर दृष्टि लगाए वे बैठे हैं।

---

18 श्लोक 41 से 42

इस वर्णन मे 'प्रफुल्लराजीवमिव' उपमा को छोटकर बाकी सारा विम्ब अभिधा के सहारे सूक्ष्म चित्रण शैली के आधार पर खड़ा किया गया है। जैसाकि विद्वानों का मत है, योग मुद्रा में बैठी भगवान बुद्ध की मूर्तियों का प्रभाव यदि यहाँ है तो यह भी इस वर्णन की अपूर्व मूर्तांकन-क्षमता का एक कारण हो सकता है। यहाँ यदि मूनियों का प्रभाव भी स्वीकार करनें तो इसी प्रसग में कामदेव का यह सचित्रोल्लेख तो सम्भवतः स्वतः ही किसी चित्र का आलम्बन बनने योग्य है—

स दक्षिणापागनिविष्टमुष्टि नतामसमाकुंचितसव्यपादम् ।
ददर्शचक्रीकृतचारुचापं प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥ (2·70)

कामदेव शिव पर प्रहार करने वाला है। उसने धनुष को पूरा खीचकर गोल चक्राकार किया हुआ है। डोरी को खीचने वाली मुट्ठी दाएँ नेत्र की कोर पर टिकी हुई है। बाँया पैर मोड़कर (सम्भवतः) जमीन पर घुटना टेक रखा है। दाहिना कन्धा झुका हुआ है। इस प्रकार के सचित्र वर्णन करने मे कालिदास परम प्रवीण है। महाकाव्यो मे इस प्रकार के संश्लिष्ट वर्णन कई स्थानो पर आए है। 'रघुवंश' के सोलहवे सर्ग मे उजड़ी हुई नगरी अयोध्या का चित्रण भी चित्राकन क्षमता से परिपूर्ण है। इसी सर्ग में कुश के अयोध्यागमन पर उनकी सेना का जो जुलूस है उसका वर्णन भी 'आँखो देखा वर्णन' सा जान पड़ता है। नवम सर्ग में दशरथ के आखेट वर्णन मे भी सीधे सच्चे चित्र मिल जाते हैं। स्थानाभाव के कारण अधिक उदाहरण देना सम्भव नही होगा, यहाँ उजड़ी हुई अयोध्या का एक चित्र प्रस्तुत किया जाता है—

चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभंगाः ।
नखांकुशाघातविभिन्नकुम्भाः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति ॥
(16·16)

अयोध्या के महलो में दीवारों पर सुन्दर चित्र बने हुए थे। कुछ चित्रो में ऐसा दिखाया गया था कि जंगली हाथी कमल के सरोवरो मे उतर रहे है। हथनियाँ उन्हे सूंड से कमल के डंठल तोड़कर दे रही है। नगर उजड़ जाने से अब उन चित्रित हाथियो के मस्तको को सिंहो ने सच्चे हाथी का मस्तक समझकर नखो से विदीर्ण कर दिया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि सूक्ष्म वर्णन से ही विम्बात्मकता का सृजन हुआ है यदि केवल इतना कहा जाता कि अयोध्या के चित्र जानवरो ने खराब कर दिये है तो यह कथन मात्र रहता, विम्ब नही बन पाता।

नाटको में भी कवि ने इसी चित्रात्मक काव्य-कौशल का परिचय दिया है। यथा—

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिताशय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ॥
हस्ताद्भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो. (अभि. 3·23)

द्रष्टव्य है कि प्रस्तुत के अभिधात्मक बिम्ब म बिम्बधर्मी विशेषणों का बड़ा महत्त्व होता है। यहाँ 'शरीरलुलिता 'वनान्त' विशेषण बिम्ब-रचना में विशेष सहायक हुए हैं।

संक्षेप मे कह सकते हैं कि अभिधा-प्रणाली कालिदास की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति का एक सफल साधन रही है। ऋतुओं व दृश्यों रूपचित्रों मुद्राओं व घटनाओं का सुन्दर चित्रांकन इस प्रणाली से हुआ है।

लक्षणा द्वारा अभिव्यक्ति

लाक्षणिकता अभिव्यक्ति की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यह अभिधेयार्थ से भिन्न बिम्बों की अभिव्यक्ति का साधन है। कवि अपने बिम्बों को लक्षणा की सहायता से समर्थ, उर्वर तथा भावोद्बोधक बनाने में समर्थ होता है। कालिदास की भाषा लक्षणा व व्यजना मे परिपूर्ण है। इनके बिम्बों की अभिव्यक्ति मे लक्षणा का महत्त्वपूर्ण हाथ है। उनकी भाषा चित्रात्मक है और चित्र-धर्म *लक्षणा से ही* आता है। सादृश्य मूलक अलंकारों द्वारा बिम्बों की अभिव्यक्ति मे आगे हम लक्षणा का विशेष चमत्कार देखेंगे। सादृश्य मूलक अलंकारों के अतिरिक्त विशेषण विपर्यय द्वारा व शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग द्वारा भी बिम्बों की सृष्टि कालिदास ने की है। यथा—राजा दुष्यन्त शकुन्तला को देखने के बाद हरिणों पर बाण चलाने मे स्वय को असमर्थ पाते हुए कहते हैं—

> सहवसतिमुपेत्य यै प्रियाया।
> कृत इव मुग्धविलोकितोपदेश ॥ (अभि 2 3)

इन हरिणो ने सहवास-जन्य मैत्री मे मानो प्रिया को सुन्दर अवलोकन का उपदेश दिया है। यहाँ 'उपदेश देना' प्रसग मे असगत होकर यह लक्ष्यार्थ प्रकट कर रहा है कि शकुन्तला के नेत्र हरिणों की भांति सुन्दर हैं। यहाँ लक्ष्यार्थ का बिम्ब बन रहा है। अथवा निम्न उदाहरण मे—

> मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पै समन्तात्
> पवनचलितशाखै शाखिभिर्नृत्यतीव।
> हसितमिव विधत्ते सूचिभि केतकीनाम
> नवसलिलनिषेकाच्छिन्नतापो वनान्त ॥ (ऋ 2 24)

यहाँ वर्षा मे वनान्त के वर्णन म 'मुदित' 'नृत्यति' व 'हसितम' जगल के धर्म नहीं हो सकते। लक्षणा से इनका क्रमश अर्थ है 'वृक्षों का प्रफुल्लित होना' 'डालियों का पवन द्वारा आन्दोलन' व केतकी की श्वेत कलियों का विकास'। लेकिन जो वाच्यार्थ है 'हँसना' 'नृत्य करना' आदि वे मूर्त होने के कारण लक्ष्यार्थ को बिम्ब रूप में प्रस्तुत करने मे समर्थ हुए हैं। लक्षणा मे बिम्ब का अन्य उदाहरण है—

> 'स सन्नद्धे विरहविधुरा त्वय्युपेक्षेत जायाम्।' (पू मे 8)

यहाँ सन्नद्ध शब्द लाक्षणिक ढंग से प्रयुक्त हुआ है इसका मुख्य अर्थ है 'कमर कसे हुए', 'कवचादि धारण किये हुए'। यहाँ मेघ के सन्दर्भ में लक्ष्यार्थ है 'उद्यतत्व' सन्नद्ध का मुख्य अर्थ लक्ष्यार्थ को विम्ब रूप में प्रस्तुत कर रहा है।

अंग्रेजी आलोचना में जिसे विशेषण-विपर्यय कहा गया है वह भी लक्षणा का ही विषय है। विशेषण-विपर्यय में एक विशेष विशेष्य के विशेषण को किसी अन्य विशेष्य के साथ जोड़कर चमत्कार व ऐन्द्रियता का समावेश किया जाता है यथा—

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम ।

यहां 'मधुर' विशेषण 'स्वाद' की विशिष्टता का द्योतक है जिसे 'दृश्य' आकृति के साथ जोड़कर एक विलक्षणता की सृष्टि की गई है और आकृति की सुन्दरता को स्वाद के स्तर पर अनुभव कराया गया है। विशेषण-विपर्यय का एक सुन्दर उदाहरण निम्न पद्य में देखा जा सकता है—

भाग्यास्तमयमिवाक्ष्णोर्हृदयस्य महोत्सवावसानमिव ।
द्वारपिधानमिव धृतेर्मन्ये तस्यास्तिरस्करिणीम् ॥

(मा. 2·11)

मालविका नृत्य समाप्त करके पर्दे के पीछे चली जाती है। उसका पर्दे के पीछे छिपना राजा को ऐसा लगता है मानो उसकी आंखों का भाग्य अस्त हो गया हो। हृदय का उत्सव समाप्त हो गया हो या धैर्य के द्वार बन्द हो गये हों। यहां मालविका के चले जाने से राजा के मन की जो अवस्था होती है उसे अनेक बिम्बों में स्पष्ट किया गया है। ये बिम्ब विशेषण-विपर्यय के द्वारा अभिव्यक्त हो रहे हैं। भाग्य मानव का होता है आंखों का नहीं। महोत्सव भी हृदय का नहीं होता। यहाँ आंखों के भाग्यास्त से, आंखों के लिए सुन्दर रूप का लुप्त हो जाना व हृदय के महोत्सवावसान से, हृदय का सूना हो जाना लक्षित है। इसी प्रकार धैर्य के किवाड़ नहीं हो सकते, किवाड़ कमरे आदि के ही होते हैं। धैर्य के 'द्वारपिधान' से यहां राजा की अधीरता लक्षित है। लक्षणा शक्ति से अनुपपन्न विशेषणों का प्रयोग कर बिम्बात्मकता लाई गई है जो सर्वथा अनोखी है।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कालिदास ने लक्षणा के माध्यम से सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति के ऊपर मानवी क्रियाओं के आरोप द्वारा, सादृश्य मूलक अलंकारों द्वारा एवं विशेषण-विपर्यय से वे अनेक भावों को व दृश्यों को बिम्ब रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों से निर्मित बिम्बों की चर्चा आगे विस्तार से की जाएगी।

अलंकारों द्वारा बिम्बों की अभिव्यक्ति

अलंकार बिम्बों की अभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम हैं। इनके द्वारा सहज रूप में कवि अनेकानेक चित्रों का निर्माण कर सकता है। अलंकार, रूप रंग या धर्म को

स्पष्ट करके तथा सादृश्य उपस्थित करके अनेकविध बिम्बों की सृष्टि करते हैं। सादृश्य के आधार पर अलंकार और बिम्ब एक दूसरे के बहुत निकट आ जाते हैं। बिम्ब व अलंकार का सम्बन्ध, सिद्धान्त-पक्ष में स्पष्ट किया जा चुका है, यहां संक्षेप में कालिदास के अलंकार-गत बिम्ब-विधान का विश्लेषण ही अपेक्षित है।

कालिदास अलंकारों के सहज प्रयोग के लिये प्रसिद्ध हैं। अतः उनकी रचनाओं में अलंकार बिम्बाभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम हुए हैं। बिम्बों की अभिव्यक्ति में शब्दालंकारों का विशेष महत्त्व नहीं है अर्थालंकारों के द्वारा ही आकार, मुद्रा, रूप वर्ण आदि का चित्रमय प्रस्तुतीकरण सम्भव है। प्रायः शब्दालंकार कृत्रिमता को ही बढ़ावा देते हैं तथापि कुशल कवि के काव्य में कहीं कहीं वे भी बिम्ब में सहायता देते प्रतीत होते हैं। अतः पहले शब्दालंकारों की ही चर्चा अभिप्रेत है।

शब्दालंकार

शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष प्रमुख हैं। अनुप्रास भाव का विशेष उपकारक नहीं होता अतः भाव बिम्बों में इसका कोई महत्त्व नहीं है। जैसा कि संवेदनात्मक बिम्बों में स्पष्ट किया गया है, ध्वनि बिम्बों की सर्जना में अनुप्रास का भी विशिष्ट सहयोग होता है। कालिदास ने रस भावानुकूल सहज ढंग से अनुप्रास का प्रयोग कर बिम्बों के सौन्दर्य को बढ़ाया ही है, घटाया नहीं है। अतः उनके काव्य में अनुप्रास को बिम्ब का बाधक नहीं कहा जा सकता। यही नहीं अनेक स्थानों पर अनुप्रास प्रभाव का सृजन करने में भी समर्थ हुआ है। यथा—

'मायूरी मदयति मार्जना मनांसि' में 'म' की आवृत्ति मृदंग की ध्वनि के बिम्ब में स्वाभाविकता व अपेक्षित संगीतात्मकता का विनियोजन करती दिखाई देती है यथा—

'उत्कण्ठाघटमानषट्पदघटासंघट्टदष्टच्छदः' में वर्णों की आवृत्ति 'अहमहमिकया' एक साथ आक्रमण करते भ्रमरों की भीड़ को सूचित करने में सहायक है। इसी प्रकार शृंगार के प्रसंग में शकुन्तला की 'पुष्पमयी शय्या' के बिम्ब में 'श' की भिन्न आवृत्ति कोमल प्रभाव उत्पन्न करती दिखाई दे रही है—

'तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियम्'। डा. दासगुप्त ने इसके समर्थन में 'रघुवंश' से निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है—

> दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी
> तमालतालीवनराजिनीला।
> आभाति वेला लवणाम्बुराशे-
> र्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा॥ (13 15)

राम के द्वारा समुद्रवर्णन के इस प्रसंग में शब्दालंकार की जो झंकार उठी है, उससे समुद्र का वर्णन सार्थक हो उठा है। 'आ' कार के वाद 'आ' कार के द्वारा समुद्र की सीमाहीन विपुलता को जैसे ध्वनि द्वारा ही मूर्त कर दिया गया है।[19]

इसी प्रकार यमक और श्लेष भी कहीं कहीं विम्व के साथ प्रयुक्त हुए हैं। 'रघुवंश' के नवम् सर्ग में अनेक सुन्दर विम्बों की योजना की गई हैं और यमक वहाँ वाधक नहीं हुआ है। यथा—

अधिगतं विधिवद्यदपालयत्प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम् ।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः ॥ (2)

यहाँ 'नगरं' 'नगरं' की आवृत्ति मे यमक है। साथ ही कुलोचित पराक्रम से राज्य का पालन करने वाले दशरथ के वाहुवल को 'पर्वत' में छिद्र करने वाले कार्तिकेय के पराक्रम से विम्बित किया गया है। इस विम्व मे उपर्युक्त यमक शोभापकर्षक नहीं है। यह सही है कि पर्वतवाची 'नग' के स्थान पर कोई पर्याय रखने पर भी विम्व की हानि नहीं थी अतः यमक विम्व का कारण नहीं है, किन्तु वह नाद-सौन्दर्य मे तो वृद्धि करता ही है। अतः मान सकते है कि जहाँ अन्य कवि यमक की झोंक में काव्य को ही अकाव्य या अधमकाव्य वना डालते है, कालिदास उस दुष्प्रवृत्ति से अपने को वचा गये हैं व यमक उनके विम्वविधान मे यदि साधक नहीं तो वाधक भी नहीं है।

इसी प्रकार श्लेष अलंकार का भी कहीं कहीं कवि ने विम्व विधान में महत्त्वपूर्ण उपयोग किया है। वाणभट्ट या सुवन्धु जैसे कवि जहाँ श्लेष के आधार पर अप्रस्तुतों की निरर्थक मीनारें एक के ऊपर एक खड़ी करते रहने में योग्यता का अनुभव करते रहते हैं, कालिदास इस नीरसता में नहीं उलझे है। उन्होंने वहुत कम स्थानों पर, जहाँ उसके कारण विशेष रम्यता आती हो या सारे वर्णन मे वह आवश्यक हो, वहीं श्लेष का प्रयोग किया है। जैसे निम्नलिखित विम्व का सारा सौन्दर्य 'कर' शब्द के प्रकृति श्लेष पर टिका हुआ है

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।
प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ (पू.मे. 41)

यहाँ मानवीकरण द्वारा, कमलिनी और सूर्य के व्यवहार मे नायिका व नायक का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह स्मरणीय विम्व 'कर' शब्द के श्लेष पर आधारित है किन्तु साधारण पाठक तक को उसका अर्थ आसानी से समझ में आ जाता है, वल्कि यह भान भी नहीं होता कि यहाँ कोई शब्दालंकार है भी। खण्डिता

---

19. 'उपमा कालिदासस्य,' पृ. 18

नायिका के अश्रु पोंछने के लिये नायक का बढ़ा हुआ हाथ (कर) और कमलिनी के ओस बिन्दु सुखाने के लिये सूर्य की बढ़ती किरण (कर) दोनों अर्थ स्वतः सिद्ध से हैं।

कालिदास ने अपने पात्रों के नाम भी सार्थक रखे हैं। उनके अर्थ के आधार पर भी वे बिम्ब विधान का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं। 'शाकुन्तलम्' दासियों के 'परभृतिका' व 'मधुकरिका' नाम वसन्त के वातावरण को उपस्थित करने में सहायक हैं, उनके ये कथन इसके प्रमाण हैं—

'परभृतिके ! किमेकाकिनी मन्त्रयसे'

'मधुकरिके' चूतकलिका दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति।

तथा 'मधुकरिके, तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम्।

यहाँ दासियों के उन्मत्त गान में भ्रमरी का उन्माद व कोयल का संगीत आरोपित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास ने बिम्बात्मकता का ध्यान रखते हुए शब्दालंकारों का प्रयोग आवश्यक होने पर ही किया है। साथ ही यह भी मानना होगा कि शब्दालंकार बिम्ब में विशेष सहायक नहीं हुए हैं।

अर्थालंकार

अर्थालंकारों के मुख्यतः दो भेद हैं—स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति। स्वभावोक्ति में कवि देखे हुए या कल्पना किये हुए पदार्थों या व्यक्तियों का यथार्थ एवं अति रमणीय चित्र खींचता है। वक्रोक्ति में उन पदार्थों या व्यक्तियों को अपनी कल्पनाशक्ति से निर्माण किये हुए अलंकार पहनाता है। स्वभावोक्ति व वक्रोक्ति दोनों ही बिम्ब विधान के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। अब कालिदास के काव्य में क्रमशः इनकी बिम्बात्मकता का विश्लेषण किया जायेगा।

स्वभावोक्ति

स्वभावोक्ति अलंकार बिम्ब का सर्वश्रेष्ठ रूप है। जिस कविता में अलंकारिक, स्वभावोक्ति अलंकार मानते हैं वहाँ बिम्ब अवश्य रहता है। जैसाकि सिद्धान्त-पक्ष में निरूपण किया जा चुका है, स्वभावोक्ति की परिभाषा में ही बिम्ब की स्वीकृति है। लक्षित बिम्बविधान के प्रायः दो रूप ही देखने में आते हैं। प्रथम' अभिधा शक्ति के द्वारा वस्तुओं का सूक्ष्म विवरण जिससे घटनाओं की चित्रात्मक अनुभूति हो सके, द्वितीय स्वभावोक्ति के आधार पर वस्तुओं व व्यक्तियों का यथावद् चारु वर्णन। इनमें स्वभावोक्ति के आधार पर निर्मित वर्णन से जो लक्षित बिम्ब बनते हैं, वे अधिक प्रभावशाली होते हैं। अभिधा शक्ति से निर्मित लक्षित बिम्बों की व्याख्या पहले की जा चुकी है, यहाँ स्वभावोक्ति में अभिव्यक्त बिम्बों का सौन्दर्य प्रेक्षणीय है।

स्वभावोक्ति के प्रयोग में कालिदास को असाधारण निपुणता प्राप्त है। उनके ग्रंथों में अनेक प्राणियों के और व्यक्तियों के चित्र गिने-चुने शब्दों में ज्यों के त्यों खींचे हुए मिलते हैं। इस प्रकार के अनेक चित्र पूर्व सदर्भों में आ चुके हैं।

'शाकुन्तलम' में राजा के रथ के आगे प्राण बचाने के लिए दौड़ते हुए हरिण का चित्र स्वभावोक्ति द्वारा प्रस्तुत सर्वश्रेष्ठ बिम्ब कहा जा सकता है। इसे यहां पुनः उद्धृत करना अभीष्ट है—

> ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
> पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम् ।
> दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
> पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥

यहाँ बार-बार गर्दन मोड़ने में मनोहरता, शरीर के पिछले भाग को सिकोड़ना, अर्धचर्चित कुशों का हांफते मुख से गिरना और उनका मार्ग पर बिखरना, ऊँची छलांगें आदि के उल्लेख से बहुत ही सूक्ष्म व सजीव चित्रांकन किया गया है। सारा दृश्य आँखों के आगे उपस्थित हो जाता है।

इसी प्रकार इसी ग्रन्थ मे सारथि के दौड़ते हुए घोड़ों के वर्णन में, शकुन्तला के वियोग प्रसंग में कण्व की व्याकुलता के वर्णन में, तथा बालक भरत के ('आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैः') स्वाभाविक वर्णन में अति सुन्दर बिम्ब प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार 'रघुवंश' मे पिता के सामने धाय का हाथ पकड़कर आने वाले बालक रघु का बिम्ब अति स्वाभाविक बन पड़ा है। धाय जो शब्द शिशु को सिखाती है उन्हें रघु जब तब बोलकर बतलाते है। उसकी उंगली पकड़कर चलते हैं, झुक-झुक कर प्रणाम करना सीख गये है।[20] ये सभी वर्णन सचित्र तो हैं ही, भावपूर्ण भी है, इसीलिये बिम्ब की कोटि में स्थान ग्रहण करते है। इसी प्रकार जब अज अपना मार्ग रोकने वाले शत्रुओं पर विजय पाकर इन्दुमती के सामने आकर खड़े होते है, उनका 'स चापकोटीनिहितैकबाहु.' आदि पूर्वोद्धृत चित्र अति रमणीय है। 'इसमें धनुष के सिरे पर शरीर का आधार देकर खड़े हुए राजा की अकड़, किरीट उतार देने से स्वच्छन्द बिखरे हुए केश और ललाट पर श्रम बिन्दुओं का सुन्दर वर्णन कवि ने चुने हुए शब्दों में, चित्र की तरह खीच दिया है। शायद किसी चित्रकार के लिए भी यह सम्भव न होगा।'[21]

प्रकृति तथा तपोवन के वर्णन भी कवि ने स्वाभाविक बिम्बों के रूप में प्रस्तुत किये है। ग्रीष्म के वर्णन में 'उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी.'[22] में चित्र बड़ा सच्चा है, अतः इसकी अनुभूति का आनन्द कोई भी ग्रहण कर सकता हैं। 'गाहन्ता महिषा निपानसलिलं शृंगैर्मुहुस्ताडितम्.'[23] आदि श्लोक मे अभयारण्य का सूक्ष्म वर्णन है।

---

20. देखें, पृष्ठ 291
21. 'कालिदास' ले. डा. मिराशी, पृ. 204
22. देखें अध्याय-3
23. देखें, पृष्ठ 160

संक्षेप में स्वभावोक्ति अलकारों में अभिव्यक्त कवि के बिम्ब उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति व वर्णन कौशल के प्रमाण हैं।

अन्य

वक्रोक्ति मूलक उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलकार भी बिम्ब-विधान के समर्थ साधन हैं। 'चित्रमीमांसा' में अप्पय दीक्षित ने जिन बारह अलकारों का निरूपण किया है, वे सभी भावपूर्ण होने पर चित्र का निर्माण कर सकते हैं। कुशल कवि अनेक अर्थालंकारों से बिम्ब की अभिव्यक्ति करते देखे जाते हैं। कालिदास ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अनेक अलकारों से बिम्ब निर्माण किया है।

उपमा

कालिदास की उपमाएं प्राय बिम्बात्मक हैं। उनकी उपमाएं रम्यता, यथार्थता, औचित्य व पूर्णता से युक्त होने के कारण बिम्ब निर्माण में सफल हुई हैं। उपमाओं की विविधता एवं मौलिकता के कारण कवि की रचनाओं में विभिन्न प्रकार के बिम्बों की अधिकता है। इनके उदाहरण पिछले अध्यायों में स्थान-स्थान पर आ चुके हैं। कवि की 'उपमा' का सूक्ष्म विश्लेषण विभिन्न विद्वानों के ग्रन्थों में देखा जा सकता है।[24] अत यहां बिम्ब की दृष्टि से संकेत मात्र किया जाना ही पर्याप्त होगा।

जिस 'सचारिणी दीपशिखेव' उपमा के कारण कवि को दीपशिखा की उपाधि मिली है, वह पूर्णत बिम्बात्मक है। सब कुछ दान करके शरीर मात्र से अवशिष्ट रघु के लिये 'आरण्यकोपात्तफलप्रसूति नीराव' की उपमा सुन्दर चित्र उपस्थित करती है। राक्षसियों से घिरी सीता के लिये 'विषवल्लीभि परीता महौषधि' की उपमा कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति की परिचायक है। रघु के साथ पूर्वसागर की ओर तेजी से गमन करती हुई सेना भगीरथ द्वारा पूर्वसागर की ओर ले जाई जा रही गंगा का चित्र उपस्थित करती है। निम्न उपमा में बिम्ब का समस्त सौन्दर्य देखा जा सकता है।

दुकूलवासा स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधरक्षैः ।
वेलासकाशं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ॥

(रघु 7 19)

यहां पूर्णोपमा में सुन्दर बिम्ब का सृजन हो रहा है, अज समुद्र हैं, उनके रेशमी वस्त्र फेनराजि सदृश हैं, अन्त पुर के सेवक चन्द्र किरणों से तुलनीय हैं, वधू इन्दुमती ही समुद्र की वेला है, चन्द्रकिरणें अन्त पुर के विनीत सेवकों की भांति मृदु (नवै) हैं। यहां समुद्र किनारे टकराती लहरों व श्वेत झाग का सुन्दर दृश्य उपस्थित होता है, साथ ही आकाश में चमकते चन्द्र का दृश्य भी प्रस्तुत किया गया

---

24 'उपमा कालिदासस्य' डा गुप्त,

है अन्यथा चन्द्र के अभाव में समुद्र का (ज्वार) किनारे की ओर आना सहज न होता। पूर्णमासी के दिन समुद्र किनारे देखा हुआ सम्पूर्ण दृश्य स्मृति मे उभर आता है।

मूर्छा से छूटती हुई उर्वशी के लिये 'अन्धकार से मुक्त होती रात्रि', धुंए के हटने से प्रकाशित अग्नि, 'धीरे धीरे स्वच्छ होता गंगा-प्रवाह' आदि के उपमान सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत करते हैं। राजा के मन को लेकर स्वर्ग की ओर उड़ती अप्सरा के लिए 'मृणाल से सूत्र खींचकर उड़ती राजहंसी' का उपमान अत्यन्त सुन्दर है। यह एक ओर कवि के मानव प्रकृति के सूक्ष्म अध्ययन से प्रेरित है, दूसरी ओर बाह्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण को प्रस्तुत करती हैं।

शकुन्तला के लिए प्रस्तुत निम्नलिखित उपमा में उपस्थित बिम्ब अत्यन्त स्वाभाविक व परिस्थिति के अनुकूल हैं—

कास्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥

(अभि. 5·13)

'किसलय' का उपमान शकुन्तला की कोमलता को व्यंजित करने में पूर्ण समर्थ है। इसके विरोध में 'तपोवनानां' के लिए 'पाण्डुपत्राणाम्' की कल्पना प्रभावशाली है। अन्यत्र-पिता की छत्रछाया से पृथक् हुई पुत्री के लिए 'तातस्याकात्परिभ्रष्टा मलयतरून्मूलिता चन्दनलता' की भाँति देशान्त में जीवन धारण करना असह्य बताकर सादृश्य व साधर्म्य दोनों की अनुपम व्यंजना की गई है।

इसी प्रकार पति वियोग में तड़पती रति के लिए मछली की उपमा,[25] विदूषक के लिए चौराहे पर ऊँघते साँड की उपमा,[26] मृगो पर शरपात के लिए तूल राशि में अग्निक्षेप,[27] चित्रकूट के लिए 'दृप्त ककुद्मान्' की कल्पना का सौन्दर्य पारखी की दृष्टि से छिपा नहीं रहता। ये सभी उपमाएं कवि की बिम्ब विधायिनी प्रतिभा को विशेष रूप से प्रकट करती हैं। पार्वती के सौन्दर्य-वर्णन में तो कवि ने एक से एक सुन्दर बिम्ब उपस्थित किये है—

'प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च॥
एवं उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥

(कु. 1·28, 32)

25. कु. 4–39
26. मा. अंक–4
27. शा. 1/10
28. रघु. 13–47

प्रथम उद्धरण मे पार्वती के आन्तरिक सौन्दर्य एवं द्वितीय मे बाह्य सौन्दर्य के लिए अनेक सुन्दर बिम्बों की कल्पना की प्रशंसा करते आलोचक अघाते नहीं हैं।

कालिदास की उपमाएँ चित्रात्मकता, भाव-सम्पत्ति व अर्थ-सम्पत्ति से समृद्ध होने के कारण बिम्ब की श्रेणी मे आती हैं। डा. रमाशंकर तिवारी के शब्दो मे कालिदास के काव्यो मे एक से एक सटीक, ललित, मार्मिक एवं हृदयावर्जक चित्रो की मनोरम मालिका अवतीर्ण हो गई है जिससे उनकी काव्य-कला चित्रकला को चुनौती देती सी प्रतीत होती है।[29]

उल्लेखनीय है कि कवि की सभी उपमाएँ बिम्ब नहीं है। कवि ने व्याकरण आदि शास्त्रो मे जो उपमान लिये हैं वे स्पष्ट व सुन्दर बिम्ब-विधान नहीं कर पाते। भाव सम्पत्ति के न होने से भी वे बिम्ब क्षेत्र में प्रवेश योग्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ सामान्य नियमो मे बाधक अपवाद का उपमान 'इ' धातु साथ के निरर्थक जुड़ा 'अधि' उपसर्ग, आदि उपमानो मे भावात्मकता कहाँ है। ये उपमाएँ चमत्कृत तो करती हैं लेकिन रसमग्न नहीं कर पाती। इसी प्रकार दुष्यन्त, शकुन्तला व भरत के लिए श्रद्धा, वित्त व विधि की उपमान योजना[30] केवल उपमान योजना ही कहलाएगी बिम्ब योजना नहीं। तथापि इस प्रकार की उपमाएँ बिम्बात्मक उपमाओं की तुलना मे कम ही हैं। अतः संक्षेप मे कह सकते हैं कि कवि को जो उपमा कालिदासस्य' का अमर-विरुद्ध प्राप्त हुआ है वह उनकी उपमाओं की बिम्बोद्भावन सामर्थ्य के कारण ही है, इस सामर्थ्य से ही उनकी उपमाएं सहृदयों की हृदयहार हो रही हैं

रूपक

उपमा की अपेक्षा रूपक बिम्ब के अधिक समीप है क्योंकि इसमे उपमेय व उपमान का भेद नहीं रहता। कालिदास के काव्य मे सागरूपकों द्वारा बिम्बों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। निरंग रूपक के बजाय सागरूपक संश्लिष्ट बिम्ब उपस्थित कर अधिक प्रभाव उत्पन्न करता है। कालिदास ने शकुन्तला के अनवद्य सौन्दर्य को 'अनाघ्रातं पुष्पम्' आदि प्रसिद्ध पद्य मे अनेक रूपकों के द्वारा ही इन्द्रिय-ग्राह्य किया है, यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है। वसन्त वर्णन के प्रसंग मे कवि ने लताओं पर वधुओं का आरोप कर सुन्दर रूपक बिम्ब 'पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्य' श्लोक मे प्रस्तुत किया है। निम्न रूपक मे भी बिम्ब का सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

> आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य।
> शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः॥
>
> (रघु. 7.42)

युद्ध भूमि मे शस्त्रो से हत घोड़े, हाथी व भटों का जो रुधिरप्रवाह है उसे बालारुण' का रूपक दिया गया है। युद्धस्थल मे जो धूलि व्याप्त है वह अन्धकार

---

29 'महाकवि कालिदास,' पृ. 362

30 अभि. 7/29

रूप है। घने अन्धकार में प्र-यूषकालीन सूर्य के प्रकाश का दृश्य सभी का देखा भाला है। इस उपमान से कवि ने युद्ध के दृश्य को सजीव कर दिया है।

इसी प्रकार 'राममन्मथशरेणताडिता.' आदि पूर्वोद्धृत[31] पद्य में रूपक द्वारा सुन्दर विम्बसृष्टि की गई है, जहां ताड़का को अभिसारिका का रूपक दिया गया है। राम का बाण काम का बाण है, रुधिर ही सुगन्धित चन्दन लेप है, 'जीवितेश' के श्लेष से 'यमराज' व 'प्राणप्रिय' अर्थ रूपक में अभीष्ट है। अन्य उदाहरण भी स्वतः देखे जा सकते हैं।

उत्प्रेक्षा

कालिदास की कल्पना को उत्प्रेक्षा के माध्यम से स्वच्छन्द विहार करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनके बिम्बों में रूपक या उपमा की अपेक्षा उत्प्रेक्षा की अधिक अभिव्यक्ति हुई है। वस्तु, क्रिया व हेतु, तीनों प्रकार की उत्प्रेक्षाएं उनके काव्य में सुन्दर बिम्बों का कारण बनी है। 'मेघदूत' काव्य में कवि ने उत्प्रेक्षा की झड़ी लगादी है और एक से एक सुन्दर काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। आम्रवृक्षों से घिरे पर्वत पर स्थित मेघ के लिए 'नमध्येश्याम: स्तन इव भुव: शेषविस्तारपाण्डु:' की उत्प्रेक्षा सर्वथा नवीन है जिसमें पीत और कृष्ण रंगों के योग से अति सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। सतरंगे इन्द्रधनुष से युक्त मेघ की शोभा के लिये 'बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः की कल्पना भी किसी महान चित्रकार के लिये ही सभंव है। नदी की धारा के बीच में स्थिर मेघ के लिये 'मोतियों की माला के बीच में स्थूल इन्द्रनील मणि' का बिम्ब भी उत्प्रेक्षा में व्यक्त हुआ है। कैलास पर्वत के ढाल पर गंगा के किनारे स्थित अलका के लिये कामिनी की कल्पना -'तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलाम्.' मनोहर बिम्ब की सृष्टि करती है। कैलास पर्वत पर स्थित हिमराशि के लिये 'राशीभूत: प्रतिदिनमिव यम्बकस्याट्टहास:' का बिम्ब कवि की अलौकिक प्रतिभा का प्रमाण है। ये सभी उदाहरण बिम्ब के विभिन्न पक्षों में पहले परखे जा चुके हैं। निम्न उत्प्रेक्षा में भी सुन्दर बिम्ब है—

> उदयगूढशशांक मरीचिभिस्तमसि दूरमित: प्रतिसारिते।
> अलकसंयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम् ॥
>
> (वि. 3·6)

उदयोन्मुख-चन्द्र-काल में पूर्व दिशा का यह अति मनोहर दृश्य है जिसे कवि ने अपनी कल्पना से और भी आकर्षक कर दिया है। चन्द्रमा रूपी पति के प्रवास से लौटने पर, पूर्व दिशा रूपी नायिका ने अन्धकार के रूप में फैले बालों को समेट लिया है और उसका मुख दृष्टि को आनन्द देता है।

---

31. पृष्ठ 303

इसी प्रकार पार्वती के तपस्या प्रसंग मे शीत ऋतु मे जल-समाधि के अवसर पर यह कल्पना फूलो के समान ताजगी से परिपूर्ण है—

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि
प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना ।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदाम्
सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम ॥ (कु 5 24)

नष्ट हुए कमल-सम्पत्ति वाले सरोवर म पार्वती के मुख के प्रतिबिम्ब से पुन कमलो का सन्धान हो रहा है। यह बिम्ब पार्वती के सौन्दर्य का काल्पनिक व पवित्र रूप प्रस्तुत करता है।

पर्वतीय नदी मे, क्रुद्ध होकर भागती उर्वशी की कल्पना भी एक संश्लिष्ट बिम्ब उपस्थित करती है—

तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभितविहगश्रेणिरसना
विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम् ।
यथाविद्धं याति स्खलितमभिधाय बहुशो
नदीभावेनेयं ध्रुवमसहना परिणता ॥ (वि 4 28)

यहाँ 'तरगो' मे 'भ्रूभग' की पक्षियो की कूक मे 'करधनी की ध्वनि' की 'फेन राजि' मे 'शिथिल वस्त्र' की उत्प्रेक्षा की गई है। पहाडी नदी पत्थरो से टकराती हुई बहती है, उर्वशी भी क्रोध मे बिना ध्यान के लडखडाती जा रही है।

स्पष्ट है कि उत्प्रेक्षा द्वारा कवि ने सुन्दर बिम्ब उपस्थित किये हैं। इनमे कवि की उच्चकोटि की कल्पना प्रकट हुई है।

दृष्टान्त

बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव पर आधारित होने के कारण दृष्टान्त अलकार मे चित्र विधान की पूरी सम्भावना रहती है। कालिदास ने अनेक स्थानो पर दृष्टान्त द्वारा बिम्बो की अभिव्यक्ति की है। यथा— स्वर्गीय माला से आहत होकर गिरती हुई इन्दुमती जब अपने साथ पति को भी गिरा देती है तो कवि कहते हैं—

ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥
(कु 8 38)

दीपक मे जब बत्ती नीचे गिरती है तो उसके साथ तेल की बूद भी गिरती है। प्राक् विद्युत् युग मे यह बिम्ब सामान्य संवेद्य रहा होगा। 'दीपार्चि' की कल्पना मर्मस्पर्शी है।

कोमलवदना पार्वती को कठोर तप से रोकती हुई उनकी माता मेना कहती है—

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्सेक्व चतावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥
(कु. 5·4)

शिरीष का पुष्प अतीव कोमल होता है उसके लिये पक्षी का भार सहन करना जैसे अति कठिन है, वैसे ही पार्वती के कोमल शरीर से तपस्या करना कठिन है। मगध देश के राजा के सामने अन्य राजाओं को, चन्द्रमा के सामने तारों की भांति फीके बताते हुए सुनन्दा कहती है—

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥
(रघु. 6·22)

यहाँ उपमेय और उपमान में पूर्ण बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है जो एक ओर चन्द्र व नक्षत्रों वाली रात्रि का स्पष्ट बिम्ब प्रस्तुत करता है, दूसरी ओर मगधराज का, दोनों की तुलना से एक विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। कवि ने लिंग-साम्य का पर्याप्त ध्यान रखा है।

'शाकुन्तलम्' में कवि ने 'कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति, 'को नामोष्णोदकेन नवमालिका सिंचति' व 'सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानदी अवरती' आदि दृष्टान्त वाक्यों से प्रस्तुत विषयों को बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार दृष्टान्त द्वारा बिम्ब सृष्टि हुई है—

'शाप से स्मृति में बाधा आने के कारण शकुन्तला परित्यक्त हुई थी अब विस्मृति के नष्ट हो जाने से उनकी पति पर पूर्ण प्रभुता होगी क्योंकि मैल जमने पर दर्पण में छाया नहीं पड़ती किन्तु मैल साफ कर दिये जाने पर वही छाया स्पष्ट प्रवेश पा जाती है।[32]

निदर्शना

निदर्शना भी दृष्टान्त की भांति बिम्बात्मक होती है. यहां सादृश्य गूढ़ रहता है। पार्वती के लाल चरणों के ललित विन्यास का वर्णन करने में कवि ने निदर्शना द्वारा मनोहर बिम्ब की रचना की है—

अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥
(कु. 1·33)

स्वाभाविक लाल चरणों के लिये 'राग उगलते चलना' सुन्दर कल्पना है। पृथ्वी पर 'स्थल कमल उगाते चलना' भी एक दृश्य व्यापार है। यह कल्पना बड़ी

32. अभि. 7/32

मौलिक है। 'शकुन्तला के निर्व्याज मनोहर' शरीर को तपस्या का साधन बनाना वैसा ही है जैसे कमलपत्र की धारा से शमीलता को काटना'।[33] इस सादृश्य बिम्ब को भी कवि ने निदर्शना द्वारा प्रस्तुत किया है।

प्रतिवस्तूपमा

प्रतिवस्तूपमा मे भी सादृश्य द्वारा बिम्बोद्भावन की सामर्थ्य है। कालिदास न शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन के लिये 'सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्य मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मी तनोति' मे बिम्बों की अभिव्यक्ति प्रतिवस्तूपमा द्वारा ही की है। इसी प्रकार 'दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभि' म भी प्रतिवस्तूपमा का ही चमत्कार चित्रित है।

अतिशयोक्ति

पार्वती की मुस्कराहट का वर्णन करने के लिये कवि ने अतिशयोक्ति के आधार पर ही कल्पना की है जो बिम्बाधायिनी है —

पुष्प प्रवालोपहृत यदि स्यान्मुक्ताफल वा स्फुट विद्रुमस्थम्,

आदि श्लोक म 'प्रवाल पर रखा गया पुष्प व 'मू गे पर रखा गया मोती' लाल होठों पर बिखरी स्वच्छ (श्वेत) मुस्कुराहट के लिय रग सादृश्य पर आधारित अनूठे चित्र हैं।

व्यतिरेक

पार्वती के मुख मे चन्द्रमा व कमल दोनो की शोभा को बिम्बित कराया है—

चन्द्र गता पद्मगुणान भुक्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उमामुख तु प्रतिपद्य लोला द्विसश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मी ॥
(कु 1 43)

पार्वती का मुख कमल की कोमलता व चन्द्र की चमकता से युक्त है, ऐसा व्यतिरेक द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। लक्ष्मी 'शोभा' को सचेतन पदार्थ की भांति मूर्त रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

अप्रस्तुत प्रशसा—बिम्ब विधान का सुन्दर माध्यम है। इसी का विकसित रूप आजकल अग्रेजी शब्द ऐलिगरी (Allegory) के समकक्ष अन्योक्ति नाम से प्रचलित है, जिसकी बिम्बात्मकता का हम आगे विवेचन करेंगे। अप्रस्तुतप्रशसा द्वारा कालिदास ने सुन्दर बिम्ब विधान किया है। यथा—

अभिनवमधुलोलुपस्त्व तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्र निर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येना कथम्॥
(अभि 5 1)

---

33 अभि 1/16

यहां एक साथ तीन दृश्य कल्पना में आते है। (1) भ्रमर का आम्रमंजरी को भूलकर कमलमात्र पर निवास (2) दुष्यन्त का हंसपदिका को भूलकर रानी वसुमती में ही आसक्त रहना (3) दुष्यन्त का आमृकली के समान अविवाहित शकुन्तला से प्रेम व्यवहार करके अब उसे सर्वथा वसुमती आदि रानियों के साथ ही मात्र रहना (प्रेम आदि नही यह भी 'वसतिमात्र से ध्वनि होता है।)

अपह्नुति

अपह्नुति में भी सादृश्य द्वारा विम्ब-सृष्टि की जा सकती है। इसमे या तो प्रकृत का निषेध किया जाता है अथवा प्रकृत को किसी 'व्याज' 'मिस' आदि शब्द से छुपाया जाता है। राम के जन्मते ही रावण के मुकुटमणि असगुन स्वरूप पृथ्वी पर गिर पड़े। कवि कल्पना करता है मानो राक्षसों की भाग्यलक्ष्मी के आंसू ही गिर पड़े हों। इस कल्पना को कवि अपह्नुति के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है—

दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुविन्दवः॥ (रघु. 10·35)

रावण के दसों मुकुटों से अनेक मणियां गिरी होंगी, उनमें राक्षस-श्री के गिरते आंसुओं की कल्पना सुन्दर विम्ब की सर्जक है। कवि ने छोटे से श्लोक मे एक संपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है।

अन्योन्य

अन्योन्य निम्न वर्णन में भी सुन्दर विम्ब मिलता है—

कण्ठस्य तस्याः स्तनवन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद्वभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः॥
(कु. 1·42)

पार्वती की गर्दन अत्यन्त सुन्दर है, गले में पड़ा मुक्ताहार भी बड़ा मनोहर है। साधारणतया हार ही गले की शोभा बढाता है लेकिन पार्वती का कण्ठ भी हार की शोभा बढा रहा है। इस प्रकार यहां हार व कण्ठ दोनो एक दूसरे के आभूषण हो रहे हैं। 'भूषणभूष्यभावः' का विम्ब कण्ठ व हार दोनों के सौन्दर्य को और भी मनोहरता प्रदान कर रहा है।

भाविक

'भाविक' अलंकार स्वभावोक्ति का ही एक प्रकार है। स्वभावोक्ति में कवि पूर्वानुभूत या दृष्ट पदार्थों का यथावद् वर्णन करता है। भाविक मे कवि भूतकाल की या भावी वस्तुओ या स्थितियों का प्रत्यक्ष-सा वर्णन करता है। अतः भाविक की परिभाषा में ही विम्ब की संभावना निहित है। 'मेघदूत' में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया की उस स्थिति का वर्णन करता है जिसमें मेघ को यक्षप्रिया मिलेगी। यह वर्णन प्रत्यक्षायमाणता के कारण विम्ब की श्रेणी में आता है—

अलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्य विरहतनु वा भावगम्य लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचना सारिका पंजरस्था
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्व हि तस्य प्रियेति ।।

(उ मे 19)

समासोक्ति

समासोक्ति मे प्रकृत पर अप्रकृत का साधारण विशेषणो के आधार पर आरोप होता है। यह आरोप बिम्ब रूप हो यह आवश्यक नहीं, क्योकि शास्त्रीय व्यवहार के आरोप मे भी आलकारिक समासोक्ति मानते हैं।[34] जो भाव सवलित न होने के कारण बिम्ब नहीं माना जा सकता। समासोक्ति मे जब अचेतन पदार्थ पर चेतन व्यवहार का आरोप किया जाता है तो बहुत सुन्दर बिम्ब बनते हैं। समासोक्ति के इस पक्ष विशेष का विकसित रूप आधुनिक आलोचना के 'मानवीकरण' मे देखा जा सकता है जो अ ग्रेजी आलोचना के (Anthropomorphisation) या (Figure of Pershnification) से प्रभावित है। प्रकृति के अचेतन पदार्थों का भावुक कवि को एक चेतन तत्व दीखा करता है जिसकी व्यजना वह अचेतन पदार्थों को मानवीय विशेषणो क्रियाओ आदि से सयुक्त करके प्रस्तुत करता है अत समासोक्तिमूलक बिम्बो को हम मानवीकरण शीर्षक के अन्तर्गत ही रखना चाहेंगे। कालिदास के काव्य मे इस प्रकार के बिम्बों की अधिकता और विशिष्टता के कारण मानवीकरण को अलकारो से पृथक् शीर्षक मे रखा है।

अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास मे सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न अर्थ मे समर्थन किया जाता है। जहाँ कवि सामान्य लोकसत्यो को प्रस्तुत करता है वहा उसके विचारो की ही मौलिकता अधिक प्रकाशित होती है, भावों की कम। बिम्ब की दृष्टि से वह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। क्योकि बिम्ब विशेष का ही होता है सामान्य का नही। हमारी इन्द्रिया विशेष वस्तु का ही दर्शन कर पाती है सामान्य का स्पष्ट बिम्ब नही ग्रहण किया जा सकता। इसलिये जब सामान्य सत्य का विशेष से समर्थन किया जाता है तो विशेष की दृश्यता मे सामान्य की अदृश्यता भी कुछ मूर्त हो जाती है। इस विशेष के द्वारा समर्थन म बिम्ब रहता है किन्तु जब विशेष अर्थ का सामान्य से समर्थन किया जाता है तो प्रस्तुत विशेष मे यदि मूर्तता है तो वही कुछ और स्पष्ट हो सकती है, अलकार के रूप मे आये सामान्य का कोई बिम्ब नही बनाता। उदाहरणार्थ कालिदास के पूर्वोद्धृत इस प्रसिद्ध श्लोक को ही लें—

---

34 देखें 'रस गगाधर, एक समीक्षात्मक अध्ययन' ले चि मयी माहे, पृ 347

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणा मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ (अभि 1·7)

इस पद्य मे काई से घिरा कमल 'मलिन धब्बे से युक्त चन्द्रमा' 'वल्कल से सुशोभित शकुन्तला' ये तीनो 'विशेष' वस्तुएँ है। जिनके विम्व वनते है। किन्तु 'मधुर आकृतियो के लिये सव कुछ मण्डन ही होता है, इस सामान्य का कोई स्पष्ट विम्व नही वनता, जव मन में मधुर आकृति की कल्पना करें तो एक साथ सभी या अनेक आकृतियाँ नही आ सकती, कोई एक विशेष पुष्प, चन्द्रमा या सुन्दर कन्या ही आ सकती है। हां, इस सामान्य कथन से उपर्युक्त विशेषो का ज्ञान अवश्य स्पष्टतर होता है। इसलिये विम्व के सन्दर्भ मे सामान्य के द्वारा समर्थन की इतनी ही उपयोगिता मानी जा सकती है कि वह पूर्व स्थित विम्व को स्पष्टता प्रदान करता है, अन्यथा अर्थान्तरन्यास अलंकार के रूप में आया सामान्य कथन स्वयं किसी विम्व की सृष्टि नही करता।

जहाँ विशेष द्वारा सामान्य का समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार द्वारा भी विम्व की अभिव्यक्ति मानी जा सकती है। 'विशेष' स्वयं में तो एक विम्व होता ही है सामान्य को स्पष्ट करता है। यहाँ डा. दासगुप्त के कथन का उल्लेख सहायक होगा—'हम तव तक' सामान्य 'तथ्य को स्पष्टतापूर्वक नही समझ पाते, जव तक उसे 'किसी' विशेष' में प्रत्यक्ष न करलें। जो दुर्ज्ञेय, तत्त्व के घने जंगल मे निरुद्ध हो उठता है, वही एक छोटी सी उपमा में उन्मुक्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य 'विशेष' से वियोजित 'सामान्य' पर विचार करने का अभ्यस्त नही है, उस मानसिक वियोजन (Abstraction) में मन के ऊपर एक वल प्रयोग होता है जो साधारण मन के लिये क्लेश-साध्य है। इसीलिये 'सामान्य' से 'विशेष' पर पहुँचकर केवल हमारी जानी हुई वस्तु सहज हो उठती है, ऐसा नही, वोध-क्रिया के सहजत्व के द्वारा एक सुखमयत्व, एक ह्लादजनकता आ जाती है।'[35]

कालिदास के काव्य में उपमा के वाद अर्थान्तरन्यास ही भारतीय आलोचको को आकर्षित कर सका है, किन्तु पाश्चात्यालोचना में काव्य के अन्दर अर्थान्तरन्यास को अधिक महत्त्व नही दिया गया—कारण, वह विचार देकर वुद्धि को ही अधिक सन्तुष्ट करता है, भावों का विशेष उपकारक नही है। कालिदास के काव्य में कहीं-कहीं विम्वों की अभिव्यक्ति अर्थान्तरन्यास के रूप में मिलती है। अनन्तरत्न-

---

35. 'उपमा कालिदासस्य' पृष्ठ 95

प्रभवकारी हिमालय के सौन्दर्य को तुषार नष्ट नहीं करता, क्योंकि बहुत से गुणों में एक दोष दब जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक—

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥

(कु 1 3)

यहाँ बिम्ब का कारण 'इन्दोः किरणेष्विवाङ्कः' विशेष है। 'एको हि दोषो' रूप सामान्य कथन का बिम्ब की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है। इसी प्रकार—

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ॥ (मा 1 6)

यहाँ मालविका के 'मच्छिष्यत्व' की द्वितीय श्लोकार्ध में स्थित 'सीप परयो मोती भयो' का भाव मूर्त रूप प्रदान कर रहा है।

राजा अग्निमित्र कठिन स्थिति में मित्र के महत्त्व को निम्नोक्ति से सिद्ध करते हैं—

अथ सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥ (मा 1 9)

यहाँ भी 'अन्धकार में नेत्रवान् भी दीपक की सहायता से ही पदार्थों को देख सकता है,' इस विशेष से ही गोचरता आई है। अजनन-कवि देखते हैं कि काल मृदु वस्तुओं को मृदुवस्तु द्वारा ही नष्ट करता है। अपने कथन को विशेष के उदाहरण से बिम्बित करते हैं—

अथवा मृदुवस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ॥ (रघु 8 45)

कोमल कमलिनी को तुषारपात ही नष्ट कर देता है।

मैना के अनेक प्रयत्न पार्वती को तप करने के दृढ़ निश्चय से डिगा नहीं पाते। इसके लिये कवि जल की गति का बिम्ब देता है। नीचे बहने वाले जल को विमुख नहीं किया जा सकता—

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् । (कु 5 5)

इसी प्रकार रति को कामदेव के साथ सती होने के निश्चय के समर्थन में अचेतन जगत् से उदाहरण देती है—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥

(कु 4 33)

यहाँ 'चन्द्रमा के साथ चाँदनी का प्रस्थान' व 'मेघ के साथ बिजली का अन्तर्धान' विम्ब बनाते हैं। द्वितीयार्ध का सामान्य कथन इनको स्पष्टता प्रदान करता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास ने अर्थान्तरन्यास अलंकार द्वारा भी विम्बों का सृजन किया है। यद्यपि वे विम्ब, उपमा या रूपक की भाँति प्रभावशाली नहीं हो पाते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि कालिदास ने काव्यशास्त्र में प्रसिद्ध अलंकारों द्वारा सुन्दर विम्ब योजना की है। स्वभावोक्ति द्वारा वे सुन्दर चित्र-निर्माण में सफल हुए हैं। अर्थालंकारों में उनके उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व दृष्टान्त विम्ब-विधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, जिनमें उत्प्रेक्षा में उनकी कल्पना का सर्वश्रेष्ठ रूप मिलता है।

अब आधुनिक आलोचना में प्रचलित उन शैलियों का उल्लेख किया जायगा जिनका उल्लेख (ज्यों की त्यों) संस्कृत काव्यशास्त्र में नहीं है और जो विशेष रूप से भाषा के चित्र धर्म से समन्वित हैं। ये हैं—मानवीकरण, अन्योक्ति, लोकोक्ति व मुहावरे, प्रतीक और विशेषण-विपर्यय आदि।

मानवीकरण

अचेतन जड़ प्रकृति व पदार्थों की चेतन के अनुरूप कल्पना करना मानवीकरण कहा जाता है। जब इसके मूल में सादृश्य रहता है तो प्रायः समासोक्ति का विषय होता है किन्तु जहां सादृश्य की भावना नहीं है प्रकृति को सचेतन मानकर वर्णन किया जाये वहां समासोक्ति के न रहने पर भी मानवीकरण माना जा सकता है। इसलिये समासोक्ति की अपेक्षा मानवीकरण का क्षेत्र व्यापक है।

मानवीकरण द्वारा प्रकृति का वर्णन जहाँ किया जाता है, वहाँ भावपूर्ण विम्ब प्राप्त होते हैं। कालिदास की उच्चकोटि की विम्बात्मकता का एक मूल कारण उनकी प्रकृति पर नरत्वारोप की यह प्रकृति भी है। कालिदास प्रकृति को चेतन मानकर ही चले हैं। यही कारण है कि उन्होंने मेघ को दौत्य-कार्य में नियुक्त किया है।

अति प्राचीन काल से ही देव-देवियों की कल्पना के रूप में परियों एवं जल-कन्या आदि की कल्पना कर मानवीकरण किया जाता था। कालिदास ने भी वनदेवियों की कल्पना कर प्रकृति को संवेदनशील प्राणियों की भाँति उपस्थित किया है। जो शकुन्तला की विदाई के अवसर पर उसके लिये मांगलिक वस्त्र-आभूषण भेंट करती हैं। राम और यक्ष के साथ उनके दुःख में अश्रु बहाती हैं इस प्रकार की कल्पना से प्रकृति का वर्णन विम्बात्मक रूप में उपस्थित होता है।

कवि की रचनाओं में मानवीकरण की प्रवृत्ति का धीरे-धीरे विकास परिलक्षित होता है। 'ऋतुसंहार' में जहाँ कवि प्रकृति के साथ मानव-व्यापारों का आरोप कर रूपक व समासोक्ति बाँधता दिखाई देता है, वहीं 'शाकुन्तलम' व 'मेघदूत' में वह आरोप को हटाकर प्रकृति को सचेत पात्रों के रूप में उपस्थित करने लगता है।

'ऋतुसंहार' में कवि ने वर्षा ऋतु के साथ 'राजा' का रूपक बाँधा है तो शरत् को 'नववधू' के रूप में देखा है। वसन्त तो मानो एक योद्धा है। कुरबक के फूल स्त्रियों के मुख के समान हैं। वसन्त ऋतु में लाल पलाश के जंगलों से ढकी धरती, लाल साड़ी पहने दुलहन सी प्रतीत होती है—

सद्यो वसन्तसमयेन समाचितेय
रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमि ॥ (6 21)

'कुमारसम्भव' में कवि कुछ और आगे बढ़ जाते हैं। वहाँ अर्ध विकसित पलाश की कलियाँ दूज के चन्द्रमा के समान टेढ़ी हैं और उनके लाल रंग के कारण ऐसी लगती हैं मानो वसन्त ने वनस्थलियों के साथ विहार करके उन पर अपने नखों के चिह्न बना दिये हों—

बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥
(कु 3 29)

कवि ने मानवीकरण द्वारा प्रायः शृंगारिक चित्र ही बनाये हैं। उदित होते हुए चन्द्र में प्रवास से लौटते नायक का सुन्दर चित्रण किया गया है। चन्द्रमा अपनी किरणों रूपी उंगलियों से, रजनी के मुख पर बिखरे अन्धकार रूपी केशों को हटाकर, उसका मुख चूम रहा है, और उस चुम्बन के आनन्द में रात्रि ने भी कमलरूपी नेत्र बन्द कर लिये हैं।[36] यह प्रकृति का एक अत्यन्त मनोहर चित्र है।

'रघुवंश' में प्रकृति मानववत् व्यवहार करती है। कहीं वृक्ष राजा दिलीप के पार्श्ववर्ती सेवकों की भाँति 'वनया' विरावै, जयशब्द का उद्घोष करते हैं, तो कहीं वायु अग्निसदृश तेजस्वी राजा के मित्र की भाँति, तपोवन में राजा के स्वागतार्थ, बाल लताओं द्वारा फूलों की वर्षा करवाता है।[37] दुःख में वृक्ष राजा अज के साथ शाखा-रस के रूप में बाष्प विमोचन करते हैं,[38] और राम के साथ

36. कु 8/63
37 र 2/8 व 10
38 वही 8/70

मेघ अविरल अश्रुधारा बहाता है।[39] लक्ष्मण को, गंगा, लहरों के इशारे से सीता को छोड़ने से रोकती है।

प्रकृति की मानव के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर कवि ने सुन्दर बिम्ब प्रदान किये हैं। डा. दास गुप्त के शब्दों में कालिदास के काव्य में प्रकृति का यह मानवीयकरण एवं मनुष्य के साथ उसका जो आन्तरिक योग है, उसने केवल कालिदास के काव्य की विषय वस्तु को ही महिमान्वित नहीं किया, काव्य की अभिव्यंजना को भी चित्र के बाद चित्र द्वारा मधुरतर बना दिया, मनुष्य के जीवन के एक सुकुमार अध्याय को उक्ति की तूलिका से काव्य में अंकित करते समय उन्होंने विश्व-प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं ग्रहण किया—जीवन के सम-पर्याय में रखकर अपने चित्रों में उन्होंने प्रकृति के प्रवाह को ग्रहण किया है।'[40]

'मेघदूत' में मानवीकरण के आधार पर कवि ने अत्यन्त सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। यों तो सारे 'मेघदूत' काव्य को मानवीकरण काव्य कह सकते हैं क्योंकि उसकी कल्पना का आधार ही प्रकृति (मेघ) को चेतन मानकर चलता है, किन्तु यहाँ दिशानिर्देश मात्र के लिये कुछ सुन्दर चित्रों को लेते हैं। मेघ में एक प्रेमी के व्यवहार का आरोप करते हुए कवि कहते हैं—

> वेणीभूतप्रतनुसलिलाऽसावतीतस्य सिन्धुः
> पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः।
> सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
> कार्श्येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः॥ (पू.मे. 31)

यहाँ मेघ को एक प्रेमी एवं नदी को प्रेमिका बताया गया है। मेघ को प्रवास पर गये लगभग एक वर्ष हो चुका है, इस बीच नदी विरह में सूखकर दुबली हो गई है। समीपस्थ वृक्षों के पुराने पीले पत्तों के गिरने से वह पीली-पीली दिखाई दे रही है। (वर्षा ऋतु आते ही मेघ के लौटने पर वह पुनः हरी-भरी हो जाती है।) कवि नदी में एक पतिव्रता नारी की कल्पना करता है, जो पति के परदेश चले जाने पर भी 'पतिनिष्ठ' रहती है और इसके लिये मेघ को बधाई देता है कि मेघ सौभाग्यशाली है। यहाँ एक सुन्दर चित्र द्वारा इस भौगोलिक तथ्य को भी व्यक्त किया गया कि नदियाँ ग्रीष्म में सूख जाती हैं और बरसात में पुनः भर जाती हैं। इस बिम्ब में 'वेणीभूत' विशेषण से शरीर की कृशता को भी सर्वथा दृश्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस चित्र की पृष्ठभूमि के निर्माण के लिये कवि ने निर्विन्ध्या को पहले से ही कामिनी के रूप में रखा है जिसकी लहरों पर चहचहाती

---

39. वही 13/26
40. 'उपमा कालिदासस्य' पृ. 79

पक्षि-पाँत ही करधनी है, जल भँवर ही नाभि है। इस प्रकार उसका हाव-भाव दिखाकर चलना मानो मेघ को आकर्षित करने के लिये ही है।[41] नदी और मेघ का यह सम्बन्ध कवि ने अनेक स्थानों पर प्रदर्शित किया है।[42] अलका नगरी को भी कवि ने कैलास की गोद में बैठी प्रेयसी का बिम्ब दिया है, जिसकी गंगा रूपी साड़ी खिसक गई है।[43] कमलिनी को कवि ने खण्डिता नायिका का रूप दिया है, सूर्य प्रात जिसके आँसू पोंछता है।[44] अलका के भवनों की ऊपरी मंजिलों में वायु के झोंके से प्रविष्ट मेघ चित्रों को जलकणों से दूषित करके धुएँ के समान खिड़कियों से भाग निकलते हैं।[45] यहाँ मेघ को अपराधी का और वायु को अपराधी का प्रेरक बताकर सुन्दर बिम्ब उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार 'शिप्रावात' प्रियतम की भाँति चाटुकारिता में सिद्धहस्त बताया गया है।[46]

'अभिज्ञानशाकुन्तलम' में प्रकृति भी प्रियंवदा व अनसूया की भाँति शकुन्तला की सहेली है, जो उसके साथ हँसती और रोती चित्रित की गई है। तापस कन्याओं के निम्न वार्तालाप में प्रकृति भी एक मूक पात्र बन गई है[47]—

शकु —'एष वातेरितपल्लवांगुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षक ।

प्रियंवदा—'हला शकुन्तले ! अत्रैव तावन्मुहूर्तकं तिष्ठ, यावत्त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति ।'

तथा—अनसूया—'हला शकुन्तले ! इयं स्वयंवरवधू सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका एना विस्मृतवत्यसि ।'

शकुन्तला—'हला ! रमणीये खलु काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः ।

नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना, स्निग्धपल्लवतयोपभोगक्षमः सहकारः ।'

इस वार्तालाप में प्रकृति को कवि ने रक्त मांस के कलेवर सहित हमारे सामने उपस्थित किया है, जिसकी आशा-आकांक्षाएँ सर्वथा मानवीय हैं। यही कारण है कि ये वर्णन सजीव बिम्ब के रूप में पाठक के हृदय पर अमिट प्रभाव अंकित कर जाते हैं।

जिन वृक्ष-लताओं के साथ शकुन्तला का सोदर स्नेह प्रथमांक में वर्णित है, वही लता-वृक्ष चतुर्थांक में उसे सम्बन्धियों की भांति वस्त्राभूषण प्रदान करते हैं,

41 पू मे 30
42 वही 45
43 वही 67
44 वही 43
45 उ मे 8
46 पू मेघ 33
47 अभि प्रथम अंक

रोकर विदा देते हैं और कोकिल कण्ठ द्वारा प्रति वचन भी देते दिखाई देते है। यहीं नही शकुन्तला विधिवत् लताओं के पास जाकर लिपटती दिखाई गई है—

'वनज्योत्स्ने ! चूतसंगतापि मां प्रत्यालिगेतोगताभि: शाखावाहुभि: अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी भविष्यामि ।'

कवि ने प्रकृति के मानवीकरण द्वारा शृंगार के अतिरिक्त वात्सल्य के भी विम्व दिये हैं। छोटे-छोटे पौधे प्रकृति-प्रेमी पात्रो के लिये स्तनन्धय शिशुओं की भाँति है जिन्हे पय: पान कराके पाला-पोसा जाता है। तपस्या करती पार्वती के द्वारा सींच कर बड़े किये गये पौधो को पुत्रों का विम्व दिया गया है—

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्
घटस्तनप्रस्रवर्णैर्व्यवर्धयत् ।
गुहोऽपि येपा प्रथमाप्तजन्मनां
न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ।। (कु. 5·14)

पार्वती का पौधों पर जो पुत्रवत् वात्सल्य भाव जन्म लेता है, वह कुमार कार्तिकेय के जन्म के पश्चात् भी कम नही होता है। 'रघुवंश' में देवदारु वृक्ष को भी पार्वती के पुत्र रूप में ही चित्रित किया गया है। यथा—

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्
वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य ।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच
सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रै: ।। (रघु. 2·37)

जानवर द्वारा वृक्ष की खाल (छाल) के उन्मथित होने का इतना दर्द किस कवि ने महसूस और व्यक्त किया है।

कालिदास का मानवीकरण विम्व-निर्माण का चरम कौशल निम्न उद्धरण मे देखा जा सकता है। दक्षिण वायु का वर्णन करते हुए पुरूरवा कहता है—

निषिञ्चन्माधवीता, लता' कौन्दीं' च नर्तयन् ।
स्नेहदाक्षिण्ययोर्योगात् कामीव प्रतिभाति मे ।। (वि. 2.4)

दक्षिण नायक नयी प्रेमिका में आसक्त होता हुआ भी पूर्व-नायिका के प्रति दाक्षिण्य वश प्रेम-प्रदर्शन करता ही है। दक्षिण से आता वायु एक दक्षिण नायक है, जो प्रिया माधवी का स्नेहवश निषेचन करता है, उसे रस प्रदान करता है, कौन्दी लता के साथ दाक्षिण्य से प्रेरित हो नृत्य कर रहा है। यहां द्वयर्थक पदों से एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है जो थोड़े से शब्दो में ही एक संश्लिष्ट विम्ब का वाहक है। स्वयं पुरूरवा के स्नेह व दाक्षिण्य भाव की भी स्पष्टाभिव्यक्ति है।

संक्षेप में कह सकते है कि कालिदास के काव्य में मानवीकरण विम्ब-विधान की एक प्रमुख शैली रही है, जो प्रकृति के दृष्टिकोण की परिचायक है। श्री के. कृष्णमूर्ति के शब्दों में—

"In the imagination of Kalidasa, every river is bound with the sea in wedlock, every tree and plant awaits a mate the mountains and forests are bosom friends of the cloud, the wind and vernal blooms confederates of love To be blind to this joy is no virtue, and to participate in it no vice" [48]

अन्योक्ति

अन्योक्ति बिम्बो की अभिव्यक्ति का अच्छा साधन है। संस्कृत अलंकार-शास्त्र मे अन्योक्ति को अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार मे अन्तर्भूत कर लिया गया है किन्तु अन्योक्ति का आज की आलोचना में सामान्यतः जो अर्थ लिया जाता है उसमें बिम्ब प्रायः रहता ही है, जबकि अप्रस्तुत प्रशंसा के जो भेद-प्रभेद स्वीकार किये गये हैं, उनमे सब मे बिम्बात्मकता मिलना कठिन है। अतः सुविधा की दृष्टि से यहा अन्योक्ति को अलग रखा गया है।

कालिदास ने अन्योक्तियों के द्वारा अति सक्षेप मे अपने भावो को अभिव्यक्त करने मे सफलता प्राप्त की है। गद्य मे अन्योक्तियो द्वारा वार्तालाप से बिम्बात्मकता व हृदयग्राह्यता का समावेश हुआ है। श्रव्यकाव्यो की अपेक्षा कवि ने दृश्य काव्यो मे अन्योक्तियो का अधिक आश्रय लिया है। 'विक्रमोर्वशीयम' के चतुर्थ अंक मे जहा सवादो का एक प्रकार से अभाव है, अन्योक्तियो द्वारा प्रस्तुत पात्रों के मनोभावो को प्रकट किया गया है। उर्वशी की सखिया उर्वशी को शापवश लता-भाव को प्राप्त हुई जानकर उसके लिये विकल हैं। उनकी व्याकुलता को हंसी-युगल के बिम्ब से प्रस्तुत किया गया है—

सहचरी दुःखालीढं सरोवरे स्निग्धम्।
अविरलबाष्पजलार्द्रं ताम्यति हंसीयुगलम्॥ (4 3)

पुरूरवा के मनोभावों को हंसयुग, गजेन्द्र आदि के अन्योक्तिपरक बिम्बो से अभिव्यक्त किया गया है। गजेन्द्र की अन्योक्ति तो कई बार प्रयुक्त हुई है।[49] यथा—विरह मे क्षीण तन वाला, निरन्तर अश्रुपूरित नेत्रों वाला असहनीय कष्ट से लड़खड़ाता हुआ एक बड़ा सा हाथी जंगल मे भटक रहा है—

प्रियतमाविरहक्लान्तवदनो विरलबाष्पजलाकुलनयनः।
दुःसहदुःखविसंष्ठुलगमनः प्रसृतगुरुतापदीप्ताङ्गः॥
अधिकं दूनमानसः काननं भ्रमति गजेन्द्रः। (4 28)

---

48 'ऋतम्' vol I July, 1969 के P 137 पर प्रकाशित लेख—"Kalidas and Nature" से।

यहां अप्रस्तुत गज की व्याकुलता को विम्ब रूप में प्रस्तुत राजा की विरह-विकलता की व्यंजना की गई है। इसी नाटक में अप्रस्तुत प्रशंसात्मक कथनों से कुछ सुन्दर बिम्बों कि सृष्टि की गई है। यथा—

'ननु प्रथमं मेघराजिर्दृश्यते पश्चाद्विद्युल्लता'- इससे व्यंग्यार्थ है कि पहले चित्रलेखा दिखाई देती है, बाद मे उर्वशी।

अथवा—'न खलु अक्षिदुःखितोऽभिमुखं दीपशिखां सहते'का व्यंग्यार्थ है कि उर्वशी के प्रति अनुरक्त राजा की औशीनरी के प्रति उपेक्षा स्वाभाविक है।

अन्योक्ति द्वारा निर्मित बिम्बो में स्पष्टतया व्यंजना का ही हाथ रहता है। यहा अन्योक्ति, या कहें अप्रस्तुत मे ही बिम्बात्मकता व चारुता अधिक दिखाई देती है 'मालविकाग्निमित्रम्' मे अन्योक्तियों द्वारा सवादों को प्रभावशाली बनाया गया है। रानी धारिणी जब बिना मांगलिक वस्त्राभूषण पहनाए ही मालविका का हाथ राजा को थमाने लगती है तो परिव्राजिका रत्न की अन्योक्ति द्वारा उन्हें सचेत करती है—

> अप्याकरसमुत्पन्नो रत्नजातिपुरस्कृतः ।
> जातरूपेण कल्याणि मणिः संयोगमर्हति ॥ (5·18)

हीरे को भी सोने में जड़वाकर धारण किया जाता है, भले ही मालविका सुन्दर और उच्चकुलोत्पन्न है किन्तु विवाह के अवसर पर मांगलिक साज-सज्जा आवश्यक है। इसी प्रकार निम्न अन्योक्तियों में बिम्बात्मकता देखी जा सकती है—

'न हि कमलिनी' दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतंगजः'। अर्थ है राजा मालविका को देखकर डरावनी कभी नागरागी की चिन्ता भी भूल जाता है।

तथा 'भ्रमरसपातो भविष्यतीति वसन्तावतारसर्वस्वं किं न चूतप्रहवोऽवतंसयितव्यः।' भौंरे के डर मे कोई पुष्पाभूषण धारण करना छोड़ थोड़े ही देता है। बन्धन से छूटी मालविका पर जब इरावती की कुदृष्टि पड़ती है तो विदूषक खेद करता हुआ कहता है – 'बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतो बिडालिकाया आलोके पतितः'। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में भी अन्योक्ति पर आधारित बिम्बों का अभाव नहीं है। 'पताका-स्थानक' वाक्यों में इस प्रकार के बिम्ब द्रष्टव्य हैं। यथा--

> 'लतावलय, सन्तापहारक, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय'।
> 'चक्रवाकवधू, आमंत्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी'।

प्रथम उदाहरण में श्लेष के आधार पर प्रत्यक्ष लताकुंज को सम्बोधित कर अप्रत्यक्ष दुष्यन्त के लिये आमंत्रण है। दूसरे में चकवी व रजनी की अन्योक्ति मे शकुन्तला को गौतमी की ओर से सावधान किया गया है। अन्यत्र भी इस प्रकार के बिम्ब मिलते हैं—

49· श्लोक सं. 5, 14, 19, 23, 28, 35, 64 आदि

किमत्रचित्र यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते' ।
'तेन हि ऋतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम् ।'
'यद्वेतस कुब्जलीला विडम्बयति तत्किमात्मन प्रभावेण ननु नदीवेगस्य ।
'दर्दुरा व्याहरन्तीति किं देव पृथिव्या वर्षितु विरमति ।'
'चूताङ्कुर निचिन्वत्यो पिपीलिकामिदष्टम् ।'

स्पष्ट है कि अन्योक्तियो द्वारा कालिदास ने बिम्बो की कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। शास्त्रीय दृष्टि से यहाँ कवि ने अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार व व्यंजना शक्ति की सहायता ली है।

लोकोक्ति व मुहावरे

लोकोक्तियाँ और मुहावरे जन साधारण के बीच जन्म लेते हैं। सर्वप्रथम मुहावरे व लोकोक्तियाँ (कहावतें) किसी उपदेशात्मक कथा या घटना के रूप में सामने आती हैं जो दृश्य या संवेदनात्मक होती हैं। धीरे-धीरे उन कथाओं व घटनाओं के सूक्ष्म स्वरूप या मूल स्वरूप मुहावरे व कहावतों के रूप में बचे रह जाते हैं। ये मुहावरे व लोकोक्तियाँ सदैव मूलकथा या घटना का स्मरण दिलाकर वर्णन में चमत्कार व रोचकता पैदा करते हैं। ये बिम्ब विधान के सशक्त साधन हैं। मुहावरों व लोकोक्तियों से बिम्बों का सृजन उनकी अन्तर्हित लाक्षणिक क्षमता से होता है। मुहावरे व लोकोक्तियों की बिम्ब-सामर्थ्य को स्पष्ट करते हुए डा दास गुप्त लिखते हैं— 'शब्द समष्टि के भीतर इस चित्र धर्म को साधारणत नाम मिला है —मुहावरा या लोकोक्ति। भाषा में जो प्रयोग मुहावरों के नाम से परिचित हैं, उनमें अधिकांश का ही विश्लेषण करने पर हम देख सकेंगे कि उनमें भाषा का यह चित्र धर्म ही है। हम एक प्रयत्न द्वारा दो कार्य सिद्ध नहीं करते, 'एक ढेले से दो चिड़ियों का शिकार करते हैं। हम अपना काम आप नहीं करते, 'अपने चर्खे में तेल देते हैं। हम पर हठात विपत्ति नहीं पड़ती, 'अकस्मात् वज्राघात' होता है, 'अवश्य ही विपत्ति पड़ना' इस क्रिया के भीतर भी चित्र धर्म है। महामूर्ख व्यक्ति को हम पुकारते हैं 'काठ का उल्लू'। अपात्र व्यक्ति के निकट निष्फल निवेदन नहीं करते, 'अरण्यरोदन' करते हैं। हम मर्म-पीड़ा नहीं पहुँचाते' कलेजा छेद देते हैं।' तिल को ताड़ करना, 'समुद्र में पानी बरसाना' 'दो नावों पर सवार होना' 'हस्तामलकवत् देखना' इन सभी में है चित्र-धर्म'।[50]

कालिदास ने भी बिम्ब योजना के लिए लोकोक्तियों व मुहावरों को माध्यम बनाया है। लोकोक्ति का स्वरूप अर्थान्तरन्यास अलंकारों में देखा जा

---

50 'उपमा कालिदासस्य' पृष्ठ 19-20

सकता है। जहाँ समर्थन के लिये 'विशेष' का प्रयोग किया जाता है वहाँ श्रेष्ठ बिम्ब बनते हैं। कवि के अर्थान्तरन्यास वाक्यों में कुछ तो पूर्व से चली आ रही जन-प्रचलित कहावतें हैं और कुछ कवि के सामान्य अनुभव पर आधारित हैं जो बाद में कहावतें बन गई हैं। आजकल एक कहावत बड़ी प्रचलित है— 'मजबूरी का नाम महात्मा गांधी।' कालिदास ने इसका सुन्दर प्रयोग किया है—

'छिन्नहस्तः मत्स्ये पलायिते धीवरो भणति गच्छ, धर्मो मे भविष्यतीति।' रानी औशीनरी विवश होकर उर्वशी को सपत्नी के रूप में स्वीकार करती है किन्तु इसे 'प्रियानुप्रसादनव्रत' का एक अंग बताती है। तब विदूषक की यह टिप्पणी बड़ी मार्मिक है कि जब हाथ से शिकार बच निकता है तब शिकारी सोचता है 'चलो, मैंने इसे छोड़ दिया, मुझे पुण्य लगेगा।'

'मणिकाचन-योग' कहावत का मूल संभवतः कालिदास की निम्न पंक्तियाँ हैं—

कुलेन कान्त्या वसया नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।
त्वमात्मनस्तुल्यं अमु वृणीष्व रत्नं समागच्छतु कांचनेन॥
(रघु. 6·79)

'मुह में राम बगल में छुरी' की पूर्ववर्ती कहावत कालिदास ने 'इन्दुमती स्वयंवर' में हारे राजाओं के सम्बन्ध से लिख दी है। सरोवर की ऊपरी सतह शान्त व सुन्दर होती है किन्तु अन्दर भयानक क्रूर मगर छिपे रहते हैं, सब राजा भी ऊपर से शान्त दिखाई दे रहे थे किन्तु अन्दर द्वेष से भरे हुए थे—

'ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः'[51]

कवि ने कहावतों के अतिरिक्त मुहावरों से भी सुन्दर बिम्ब रचना की है। दुष्यन्त जब विदूषक के निवेदन पर ध्यान नहीं देता तो विदूषक 'अरण्यरोदन' मुहावरे का प्रयोग करता है—'अरण्ये मया रुदितमासीत्'। यह मुहावरा बिम्ब-धर्मी है। इसी प्रकार 'विपत्ति में विपत्ति' के लिये मुहावरे का प्रयोग किया है—'गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्तः'।

दुष्यन्त जब एक ओर नगर लौटने के लिये माताओं का आदेश पाता है और दूसरी ओर शकुन्तला के कारण आश्रम की ओर भी आकर्षित है तो उसकी 'त्रिशंकु' की सी गति होती है—'त्रिशंकुरिवान्तराले तिष्ठे'। जले पर नमक छिड़कना मुहावरे का प्रयोग भी बिम्बाधायक है—

'क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्य दर्शनम्'।

---

51. रघु. 7-30

'विक्रमोवशीयम्' मे पुरूरवा भोजपत्र पर लिखे उर्वशी के प्रेमपत्र के साथ 'रगे हाथो' पकडा जाता है—'लोप्त्रेण गृहीतस्य कुभीरकस्यास्ति वा प्रतिवचनम्'।

'आँखें मूद लेना' मुहावरा देखी को अनदेखी करने के लिये प्रयुक्त होता है। रानी धारिणी मालविका को राजा की दृष्टि मे लाने की विदूषक व परिव्राजिक की योजना को भाप लेती है। जब परिव्राजिका राजा को भी निर्णायक बनाने का निवेदन करती है तो रानी मन ही मन कहती है—'क्या तुम समझती हो मैं जागती हुई भी आँखें मूद लू।' मूढे परिव्राजिके ! मां जाग्रतीमपि सुप्तामिव करोषि'।

किसी के अभिमान को चूर करने के लिये 'सीग तोडना' मुहावरा बहुत पुराना है, यह निम्न बिम्ब से ज्ञात होता है—

> 'मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवस्त्वं किलानमितपूर्वमक्षणी ।
> तन्निशम्य भवता समर्थय वीयशृ गमिव भग्नमात्मन ॥
>
> (रघु 11 72)

परशुराम, राम द्वारा धनुष के तोडे जाने पर अपने बलवान् होने के यश को नष्ट होता हुआ देख कर 'शृ गमिव भग्नमात्मन ' मुहावरे से अपना अपमानित होना सूचित करते हैं।

उपर्यु क्त सभी मुहावरे वर्ण्य विषय को प्रत्यक्ष कराते हैं अतएव बिम्बाधायक हैं।

प्रतीक

जब उपमान किसी उपमेय के लिये रूढ हो जाते हैं तो वे आधुनिक आलोचना मे प्रतीक कहे जाते हैं। साहित्य मे कुछ प्रतीक तो सामान्य हैं जैसे परस्पर आसक्ति के लिये चकवा-चकवी का प्रेम या अनन्य याचना के लिये चातक का प्रेम, कभी-कभी कवि किसी उपमान का जब एकाधिक बार एक ही उपमेय के लिये प्रयोग करता है तो बाद के स्थलो मे वही उपमान प्रतीक बन जाता है।

कालिदास ने 'चातक' के प्रतीक से कई बार प्रस्तुत विषय को बिम्बायित किया हैं। कौत्स जब 'रघु' को सर्वस्व दान किया हुआ देखते हैं, तो उनसे कुछ मागना अनुचित समझते हैं, क्योकि, चातक भी 'निर्गलिताम्बु शरद्घन' से जलयाचना नही करता।[52] असुरों से त्रस्त देवताओ की शिव से सतानोत्पन्न कराने की याचना वैसी ही है जैसी तृष्णाकुल चातको की मेघ के प्रति रहा करती है।[53] पुरूरवा अन्य रानियो के रहते हुए भी उर्वशी मे आसक्ति के कारण, अन्य रानियो से प्रणय की अभिलाषा नही रखता। तब विदूषक कहता है—

---

52 रघु 5/17
53 कु 6/27

'अतस्त्वया दिव्यरसाभिलाषिणा चातकव्रतं गृहीतम्' ।

यहाँ केवल 'चातकव्रत' इस शब्द से ही प्रतीकात्मक शक्ति से पूरा चित्र सामने आ जाता है कि जैसे चातक अन्य जल मिलने पर भी प्यासा रहता है और केवल स्वातिजल की ही रट लगाए रहता है, उसी प्रकार राजा केवल उर्वशी से ही अपनी प्रेमाभिलाष को पूरी करेगा ।

'विक्रमोर्वशीयम्' के चतुर्थ अंक में कवि ने हंस-हँसी व गज के प्रतीकों से बिम्ब-निर्माण किये है । प्रारम्भ के कुछ पद्यों में सहृदय को सादृश्य मन में लाना पड़ता है कि 'हंसी युगल' सखियों के लिये है या 'गज' का उपमान राजा के लिये है । जब बार बार वे ही उपमान आते हैं तो प्रतीक बन जाते हैं । यथा—

प्राप्तसहचरीसंगमः पुलकप्रसाधितांगः ।
स्वेच्छाप्राप्तविमानो विहरति हंसयुवा ॥

चतुर्थांक के अन्तिम श्लोक में 'हँसयुवा' का यह प्रतीक पुरूरवा के लिये है और उसकी सहचरी उर्वशी है । यहाँ पुरूरवा के विहार का बिम्ब हंसयुवा के प्रतीक से मनोहर हो गया है ।

इसी प्रकार विशेषण—विपर्यय के द्वारा भी कवि ने बिम्ब-विधान किया है, जिसका विवेचन 'लक्षणा' के अन्तर्गत किया जा चुका है ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि कालिदास की बिम्ब-योजना का शैली पक्ष अत्यन्त समृद्ध है । उन्होंने विविध प्रकार की अभिव्यक्तियों द्वारा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । स्वभावोक्ति, सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा व उत्प्रेक्षा, तथा मानवीकरण द्वारा बिम्ब-विधान विशेष रूप से हुआ है । आधुनिक आलोचना में प्रचलित बिम्ब-निर्माण के उपकरण भी उनके काव्य में उपलब्ध हैं ।

7

उपसंहार

पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्त काव्य-बिम्ब के आधार पर कालिदास के काव्य की परीक्षा करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कालिदास भारत के मूर्धन्य कवि हैं। उनकी काव्य-कला की परीक्षा प्राचीन या अर्वाचीन, प्राच्य या पाश्चात्य किसी भी प्रणाली मे करें, वे सर्वथा सर्वोत्तम ठहरते हैं। काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, अलकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि व रस आदि को आधार बनाकर उनके काव्य की आलोचना होती ही रही है और एक मत से उन्हें सस्कृत का सर्वश्रेष्ठ कवि माना गया है। बिम्ब-सिद्धान्त, पाश्चात्य आलोचना से, भारतीय-आलोचना मे, इस शताब्दी के मान्य सिद्धान्त के रूप मे प्रवेश पा चुका है। इस सिद्धान्त के आधार पर भी कालिदास ही भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं।

इस अध्ययन मे हमने सर्वप्रथम बिम्ब सिद्धान्त का स्वरूप विवेचन किया, क्योकि यह सिद्धान्त सस्कृत के सामान्य पाठक के लिये नया है। सस्कृत कवियो का पाश्चात्य-सिद्धान्तो के आधार पर शास्त्रीय ढग से विवेचन अभी तक नही हुआ है। अत सस्कृत साहित्य-शास्त्र के लिये यह विषय नया है।

काव्य-बिम्ब एक व्यापक काव्य-तत्त्व है। बिम्ब मे भावयुक्त वर्णन चित्रो मे किया जाता है। अत एक ओर यह भावपक्ष से और दूसरी ओर कला-पक्ष से जुड़ा रहता है। इस प्रकार यह आलोचना का एक पूर्ण सिद्धान्त माना जा सकता है।

प्राचीन काल से आलोचक काव्य के उस तत्त्व की खोज करते रहे हैं, जो काव्य का प्राण-प्रदाता है, जिसके बिना काव्य, काव्य नही रहता और जो सभी देशो व कालो के काव्य का समान रूप मे अमृत तत्त्व है। भारत मे अलकार, रीति, रस, ध्वनि व वक्रोक्ति आदि सिद्धान्तों का आविर्भाव उसी खोज की उपलब्धि है। पाश्चात्य-आलोचना मे अभिव्यजनावाद, प्रतीकवाद, बिम्बवाद, उदात्त-तत्त्व आदि सामने आए। पाश्चात्य समीक्षको की मान्यता, चाहे वह भाववादी रही हो या

अभिव्यक्ति पर बल देती हो, कल्पना व विम्बविधान के महत्त्व से परिचित है। वहाँ सदैव कल्पना व विम्बविधान को काव्य का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया गया है। यद्यपि भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि में पर्याप्त अन्तर रहा है किन्तु विम्ब की अनिवार्यता दोनों में असदिग्ध है। वस्तुतः विम्ब ही एक ऐसा तत्त्व है, जो देश, काल, भाषा और जाति की सीमाओं के परे काव्य का एक मात्र प्राणतत्त्व कहा जा सकता है। काव्य-प्रवृत्तियाँ बदलती रहती हैं, भाषा-शैली परिवर्तित होती रहती हैं, छन्द बदलते है, छन्दोयुक्त या छन्दोमुक्त, तुकान्त या अतुकान्त का विवाद चलता ही रहता है। आदर्शवाद या प्रयोग ? ये प्रश्न भी परस्पर विरोध के कारण बने रहते है। यहाँ तक कि काव्य की विषयवस्तु भी बदलती रहती है। किन्तु विम्ब सदा रहता है, जो काव्य का प्राण है और कवि-कौशल की कसौटी है।

भारतीय आलोचना-पद्धतियो के आलोक में विम्ब-धारणा पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि विम्ब को सिद्धान्त रूप मे यहाँ मान्यता प्राप्त नही हुई और न इसके महत्त्व का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। 'भारतीय साहित्य-शास्त्र कोश' मे विम्ब का उल्लेख नहीं है[1] किन्तु आलोचक व कवि विम्बात्मकता के तत्त्व से सर्वथा अपरिचित रहे हों ऐसा नही माना जा सकता। वस्तुतः हमारे पास इस तथ्य के लिये पर्याप्त प्रमाण है कि प्राचीनकाल से आलोचना क्षेत्र में प्रचलित 'चित्र' शब्द मे विम्बात्मकता का भाव भी निहित रहा है। 'रसचित्र' 'भावचित्र' आदि शब्दो का प्रयोग आलोचना में सदा होता रहा है। विम्ब प्रतिविम्ब-भाव में भी चित्रात्मकता का महत्त्व स्वीकृत है। 'मानस-साक्षात्कार' में भी विम्ब का अर्थ निहित है।

यह प्रश्न भी सामने आता है कि अलंकार, ध्वनि व रस सिद्धान्तों के रहते हुए विम्बसिद्धान्त का क्या कोई महत्व भी है ? इस विषय में कालिदास के शब्दो में, यही निवेदन है कि—

> पुराणमित्येव न साधु सर्वम्
> न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
> सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
> मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धि ॥

सोलहवीं या सत्रहवी शताब्दी तक, संस्कृत आलोचना में जो कुछ कहा जा चुका है, केवल वही सत्य व अन्तिम है, यह मान लेना संस्कृत-आलोचना में गत्यवरोध का कारण होगा और हमारी दृष्टि को संकीर्ण बना देगा। यह सोचना भी

1. 'भारतीय साहित्य शास्त्र कोश' ले. डा. राजवंश सहाय हीरा, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973, प्रथम संस्करण।

गलत होगा कि भारतीय साहित्य या आलोचना पर पाश्चात्य समालोचना का प्रभाव बुरा अथवा पथ-भ्रमित करने वाला हुआ है। अत विगत दो सौ वर्षों मे अंग्रेजी समालोचना ने क्रान्तिकारी प्रगति की है और कई पुराने तथा आधुनिक साहित्यिक प्रश्नो पर नवीन दृष्टिकोण से विचार हुआ है।

बिम्ब के सन्दर्भ में भारतीय काव्य शास्त्रीय चिन्तन पर विचार करते हुए लेखिका का यह विनम्र मत है कि ध्वनि सिद्धान्त को संस्कृत मे अनावश्यक या आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है और दृश्य तत्त्व की अवहेलना की गई है।

वस्तुत काव्य मे सर्वोपरि स्थान रस या भाव का ही है, जैसा कि ध्वनिकार भी स्वीकार करते हैं। रस व भाव की प्रभावशाली अभिव्यक्ति काव्य म बिम्ब-तत्त्व से ही सम्भव है। नाटक मे तो रंगमंच पर कथा को इन्द्रियग्राह्य रूप मे ही प्रस्तुत किया जाता है। दृश्य काव्य की उत्तमता भी उसके दृश्य तत्त्व के कारण ही मानी गई है। यही दृश्यता श्रव्य-काव्य मे बिम्ब विधान द्वारा सम्भव हो सकती है। नाटक जैसी बिम्बात्मकता होने से ही श्रव्य-काव्य मे रस की अनुभूति होती है। इस प्रकार रसानुभूति मे मुख्य कारण बिम्ब-योजना ही है।

दूसरी बात यह है कि जब रस-भाव ही काव्य के मुख्य प्रतिपाद्य है तो इस बात महत्त्व बहुत कम है कि वे किस प्रकार व्यक्त किये जाते हैं। ध्वनिकार सदा उन्हे ध्वनि का विषय या व्यंग्य ही मानते हैं जबकि हमारे मत म रस और भाव की अभिव्यक्ति के प्रभावशाली साधन बिम्ब व चित्र हैं। व्यंजनापूर्ण कथन मात्र कई बार अपेक्षित सरलता का सृजन कर भी नही पाता है, जबकि सुन्दर बिम्ब पाठक को रस-भाव मे मग्न कर देता है।

इसी प्रकार जब काव्य मे रस ही सर्वोपरि है तो व्यंग्यार्थ को ही किसी कविता की उत्तमता की कसौटी मानने म क्या औचित्य है? ध्वनि की इस अनावश्यक महत्त्व-स्वकृति से संस्कृत काव्य-शास्त्र मे दृश्य-तत्त्व की बहुत उपेक्षा हुई है। जैसा कि हम देख चुके हैं, इस सम्प्रदाय के गतानुगतिक प्रभाववश 'चित्रकाव्य' (अर्थचित्र) को अधमकाव्य कहकर उसकी उपेक्षा की गई। जबकि 'अर्थचित्र' मे सुन्दर बिम्ब-काव्य के उदाहरण देखे जा सकते हैं। वस्तुत रस व भाव को मूर्त रूप म उपस्थित करना ही काव्य का मुख्य उद्देश्य है और यह कार्य बिम्ब-विधान द्वारा ही सम्भव है। अत केवल व्यंग्य का अभाव होने से ही, चित्रकाव्य एव सुन्दर अभिधात्मक वर्णन को अवर-काव्य मानना सर्वथा अनुचित होगा। यदि काव्य म भाव है और चित्रवत्ता है तो वह काव्य उत्तम ही होगा, ध्वनि या व्यंग्य का होना महत्त्व नहीं रखता। अत, एक इतर देशवासी विवेचक ने ही सही, काव्यबिम्ब के रूप मे, यदि

दृश्य तत्त्व के महत्त्व को स्थापित कर दिया है तो इससे लाभ उठाना ही हमारे लिये उपयोगी होगा।

कालिदास की बिम्ब-योजना का विवेचन हमारा प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। सर्वप्रथम स्रोतो के आधार पर कालिदास के बिम्बो का विश्लेषण करने पर हम देखते है कि कवि का बिम्बचयनक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। प्रकृति और मानव-जगत् के सभी क्षेत्रो के बिम्ब कवि ने दिये हैं। प्रकृति का तो कोई कोना ऐसा नही जो कवि से अछूता रह गया हो। प्रकृति के बिम्बो में कवि ने कई शैलियो का अवलम्बन लिया है।

स्वाभाविक सहज वर्णन में प्रथम, 'रेखांकन शैली' है। कथानक के प्रवाह में प्रसग के अनुसार देश-काल की पार्श्वभूमि उपस्थित करने के लिये कवि प्रकृति का चित्रण केवल रेखाचित्रो में करता हुआ रंग भरने का कार्य पाठक पर छोडता चलता है। दूसरी शैली 'सश्लिष्ट शैली' है। इसमें कवि रागात्मकता के साथ चित्र को पूर्ण और प्रत्यक्ष बनाने मे सचेष्टता प्रदर्शित करता है। कालिदास के काव्य मे सहज (अलंकार-मुक्त) सश्लिष्ट बिम्बो की योजना अधिकता से मिलती है। तपोवन के वर्णन, प्रातः मध्याह्न के वर्णन इसी प्रकार के है। ये स्वाभाविक दृश्य भास के स्वाभाविक सश्लिष्ट बिम्बो मे तुलनीय हैं।

प्रस्तुत चित्र को सदृश्य चित्र द्वारा आलकारिक शैली मे प्रस्तुत करनेमें कवि की विशेष रुचि रही है। इनमे कुछ चित्र स्वतः सम्भवी कल्पना पर आधारित है और कुछ प्रौढ़ोक्ति सभव है। एक ओर कवि की प्रतिभा दो समतुल्य स्वतः संभव चित्रो की योजना में मुक्त विचरण करती दिखाई देती है तो दूसरी ओर अपनी व्यक्तिगत कल्पना मे नवीन स्थितियों व सयोगो को उपस्थित कर कलात्मकता का सृजन करती है। प्रौढोक्ति क्षेत्र में कालिदास के साथ किसी अन्य कवि को नही रखा जा सकता। विशेषकर उत्प्रेक्षाओं द्वारा कवि ने इस शैली के सुन्दर बिम्ब उपस्थित किये हैं।

प्रकृति-बिम्बों में एक अन्यतम शैली 'भावात्मक शैली' है। प्रकृति मे मानव भावों के आरोप से कवि ने अति सरस व भावपूर्ण बिम्बों की योजना की है।

मानव-जगत मे गृहीत बिम्बों में कवि ने सुन्दर रूपचित्र दिये हैं। नायिका व नायक दोनो के ही रूप-चित्र व विभिन्न अवस्थाओं के मुद्रा-चित्र इतने स्वाभाविक व सूक्ष्मता से अंकित है कि यह कहने में बिल्कुल संकोच नही होता कि कालिदास एक कुशल चित्रकार भी रहे होंगे। सभ्य व सुखी समाज, राजसी वातावरण व आश्रम-जीवन को कवि ने पाठकों के मानस मे अमिट रूप मे छाप दिया है।

बिम्ब-विवेचन का दूसरा आधार ऐन्द्रियता का रहा है। कालिदास जगत् के रूप, रंग, गन्ध व शब्द आदि के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हैं। उनके काव्य में

स्वाभाविक दृश्य-बिम्बो की अधिकता है। वस्तुओ के रूप रेखा, रग, आकार व गति के चित्रण के प्रति वे सचेष्ट रहते हैं। स्पर्श गन्ध, शब्द स्वाद की भी सफल अभिव्यक्ति उनके काव्य मे बिम्बित हुई है। सूक्ष्म से सूक्ष्म गन्ध व शब्द को वे मुखरित करने मे समर्थ हैं।

कवि के भाव-प्रधान बिम्बो का अध्ययन उनके 'रस सिद्ध' विरुद्ध को सार्थक करता है। भावो को चित्र रूप मे प्रस्तुत करने म वे परम-प्रवीण हैं, विशेषकर सयोग व वियोग वात्सल्य तथा करुण भावो के बिम्ब बडे मार्मिक व प्रभावशाली हैं।

बिम्ब-विवेचन मे अन्तिम आधार शैली पक्ष है। भाषा की दृष्टि मे कालिदास ने बिम्ब-योजना प्राय पूर्ण वाक्यो मे की है। कही-कही वे एक ही सज्ञा, क्रिया, विशेषण पद से बिम्ब योजना मे सफल हुए हैं। कवि की प्रकृति बिम्बो मे मूर्तता की ओर रही है। कभी वे मूर्त की मूर्त म तुलना करते हैं और कभी मूर्त की अमूर्त से। जटिल मे जटिल व अमूर्त मानसिक अवस्था को मूर्त बिम्बो मे प्रत्यक्ष करने मे उन्होने असाधारण कुशलता प्रदर्शित की है। कालिदास ने बिम्ब निर्माण मे शैलीगत अनेक साधनो का अवलम्बन लिया है। अभिधा, लक्षणा, अलकार, मानवीकरण, मुहावरे, विशेषण-विपर्यय आदि अनेक प्राचीन व सर्वथा नवीन शैलियाँ भी उनके काव्य म प्रयुक्त हुई हैं। वे स्वभावोक्ति उपमा, उत्प्रेक्षा व मानवीकरण मे विशेष सिद्धहस्त हैं।

इस प्रकार हम कह सकते है कि कालिदास की कविता बिम्ब की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। उन्होने भावो को प्रेषणीय बनाने के लिये, वस्तुओ के यथार्थ चित्रण के लिये, देश-काल को सजीव करने के लिये, चरित्रो को उदात्त व स्पष्ट रूप प्रदान करने के लिये, अमूर्त को मूर्त रूप देन के लिये व विशेषकर अर्थ को स्पष्ट करने के लिये बिम्बो का आश्रय लिया है। उनकी बिम्ब-योजना के निम्नलिखित मुख्य गुण उभर कर हमारे सामने आते हैं—

1 सश्लिष्टता—वे वस्तुओ के आस-पास के समस्त वातावरण को लेकर बिम्ब प्रस्तुत करते हैं और सूक्ष्म से सूक्ष्म अग के रूप-रग को स्पष्ट करते हैं, जिससे पूरा दृश्य मानस म प्रत्यक्ष हो जाता है।

2 मौलिकता व नवीनता—कालिदास ने परम्परा व रूढि का ध्यान रखते हुए भी उसका अन्धानुकरण नही किया। उसके बिम्ब सर्वथा मौलिक, नवीन व निजी अनुभव पर आधारित होते हैं। विशेषकर अप्रस्तुत चित्रों मे रूढ, उपमानो को भी कवि सदा नए और मौलिक रूप व स्थिति म प्रयुक्त करता है।

सहजता व परिचितता—कालिदास के बिम्बो मे एक सहज स्वाभाविकता है। वे दूर की कोडी लाने का प्रयास नहीं करते। कथा व पात्रों के अनुसार बिम्बों का चयन करते हैं, जिससे पाठक का रागात्मक सम्बन्ध बना रहता है।

4. औचित्य—कालिदास बिम्बो में औचित्य का विशेष ध्याक रखते हैं। वे आकृति साम्य लिंग साम्य व धर्म व प्रभाव साम्य का पूर्ण ध्यान रखते हैं।

5. सरलता—कवि ने बिम्ब विधान में भाषा की सरलता का विशेष ध्यान रखा है। वे श्लेष, यमक व दीर्घ समास आदि पाण्डित्य-प्रदर्शन में विश्वास नहीं रखते क्योंकि भाषागत चमत्कार बिम्ब-ग्रहण मे बाधक होता है।

इसके अतिरिक्त सरसता, रमणीयता, व्यंजकता, यथार्थता आदि अन्य गुण है, जो उनके बिम्बों में देखने को मिलते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि बिम्ब-योजना कालिदास की स्वाभाविक काव्य शैली है। वे शब्दो के चित्रकार हैं। काव्यालोचना के मापदण्ड भले ही बदलते रहे, वे प्राचीनकाल में जिस उच्चतम आसन पर विराजमान है, उसी पर विराजमान रहेंगे।

सहायक ग्रन्थ-सूची

सन्दर्भ-ग्रन्थ

कालिदास के काव्य

1	रघुवश	मल्लिनाथ कृत सजीवनी टीका व श्री हरगोविन्द शास्त्री कृत हिन्दी टीका से समन्वित, चौखम्भा सस्कृत पुस्तकालय, बनारस—1, 1953
2	कुमारसभव	मल्लिनाथ कृत सजीवनी टीका एव श्री सीताराम कृत टीका से समन्वित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1955
3	मेघदूत	स डा ससारचन्द्र तथा प मोहनदेव पन्तशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1968
4	ऋतु-सहार	श्री एम आर काले की अग्रेजी टीका से समन्वित, वामन यशवन्त एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1916
5	अभिज्ञान शकुन्तलम्	स डा चन्द्रराम त्रिपाठी, रतन प्रकाशन मन्दिर आगरा, चतुर्थ सस्करण
6.	विक्रमोर्वशीयम्	श्री एम आर काले द्वारा अग्रेजी टीका सहित सम्पादित, वामन यशवन्त एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1922
7	मालविकाग्निमित्रम्	स श्री मोहनदेव पन्त

अलकार शास्त्र के मूल सस्कृत-ग्रन्थ

1	नाट्यशास्त्र	भरत	सपा केदार नाथ, काव्यमाला 42 निर्णय सागर प्रेस, मुबई, 1943
2.	काव्यालकार	भामह	सपा पं बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय, काशी सस्कृत सीरीज 61, चौखम्भा प्रकाशन, बनारस

3.	काव्यादर्श	दण्डी	सं. पं रंगाचार्य शास्त्री, भण्डारकर रिसर्च इन्सटीट्यूट, 1938
4.	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति	वामन	सं. नारायणनाथ कुलकर्णी, ओरियेन्टल बुक एजेन्सी, पूजा, 1927
5.	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन	लोचन टीका सहित व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल ग्रन्थमाला 97, वाराणसी संवत् 2028
6.	वक्रोक्तिजीवित	कुन्तक	व्याख्याकार राधेश्याम मिश्र, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी–1, 1967
7.	औचित्यविचारचर्चा	क्षेमेन्द्र	हरिदास संस्कृत सीरीज, 25, चौखम्भा प्रकाशन, बनारस, 1933
8.	काव्यप्रकाश	मम्मट	टीकाकार डा. सत्यव्रतसिंह, विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला 15, चौखम्भा प्रकाशन, बनारस, 1955
9.	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	स. डा. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भण्डार, मेरठ, 19 74
10.	चित्रमीमांसा	अप्पयदीक्षित	सं. जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1971
11.	रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ	नागेश भट्ट एवं मथुरानाथ शास्त्री की टीकाओं से समन्वित, निर्णय सागर प्रेस, मुंम्बई, 1947
12.	दशरूपक	धनंजय	संपा. डा. गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, 1956
13.	काव्यमीमांसा	राजशेखर	अनु. पं. केदारनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1954
14.	सरस्वतीकण्ठाभरण	भोज	काव्यमाला 94, निर्णय सागर प्रेस मुम्बई, 1934

अन्य ग्रन्थ

1.	कालिदास की अमर कृतियां	प्रो. वी. पी. भास्कर शास्त्री, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली
2.	कालिदास	डा. वी. वी. मिराशी, पापूलर प्रकाशन, बम्बई, 1967

3.	कालिदास के सुभाषित	डा भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
4	कालिदास का भारत	,,
5	कालिदास नमामि	,,
6,	कालिदास कवि और काव्य	,,
7	कालिदास की लालित्य योजना	डा हजारीलाल द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, 1965
8	साहित्य का मर्म	,,
9	उपमा कालिदासस्य	डा शशिभूषणदास गुप्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962
10	महाकवि कालिदास	प्रो रमाशकर तिवारी, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी 1961
11	महाकवि कालिदास	डा रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर, स 2023
12	कालिदास के काव्य मे ध्वनि तत्त्व	डा मजुला जायसवाल सजय प्रकाशन इलाहाबाद, 1976
13	भारतीय-राजनीति-कोष 'कालिदास खण्ड'	म वेंकटेश शास्त्री जोशी, राजनीति कोष मण्डल, पुणे—2, 1954
14	कालिदास का प्राकृतिक-चित्रण	डा निर्मला उपाध्याय,, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
15	कालिदास की कला और संस्कृति	डा. देवीदत्त शर्मा
16	रसमीमासा	डा रामचन्द्र शुक्ल
17	चिन्तामणि (भाग प्रथम व भाग द्वितीय)	डा रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन्स, 1965
18	काव्य बिम्ब	डा नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1967
19	भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा	,, ,, 1963
20	काव्य-शास्त्र	डा भगीरथमिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1966
21	रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र	डा निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962
22	संस्कृत-आलोचना	डा बलदेव उपाध्याय, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1957

23.	संस्कृत साहित्य में सादृश्य-मूलक अलंकारों का विकास	डा. ब्रह्मानन्द शर्मा, लेखक व प्रकाशक—गवर्नमैन्ट कालेज, अजमेर सन 1964
24.	संस्कृत काव्यों में पशु-पक्षी	डा. रामदत्त शर्मा, देवनागर प्रकाशन, जयपुर, 1971
25.	काव्यात्मक बिम्ब	प्रो. अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद, ज्ञानालोक, अशोक राज पथ, पटना, 1965
26.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान	डा. केदारनाथसिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1971
27.	आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र-विधान	डा. रामयतनसिंह भ्रमर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1965
28.	जायसी की बिम्ब-योजना	डा. सुधा सक्सेना, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 1966
29.	तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना	डा. सुशीला शर्मा, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली. 1972
30.	भारतीय साहित्य-शास्त्र कोष	डा. राजवंश सहाय 'हीरा' बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973
31.	शोध-प्रविधि	डा. विनय मोहन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973
32.	अमरुक-शतकम्	सं कमलेश दत्त त्रिपाठी, मित्र प्रकाशन प्रा. लि. इलाहाबाद, 1961
33.	गाथा-सप्तशती	सं. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, चौखम्भा विद्याभवन. वाराणसी, 1961
34.	आर्या-सप्तशती	सं. रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1961
35.	कादम्बरी	सं. तारिणीश झा, रामनारायण वेणीमाधव, इलाहाबाद, 1971
36.	किरातार्जुनीयम्	भारवि
37.	नैषध	श्री हर्ष
38.	शिशुपालवध	माघ
39.	उत्तररामचरित	भवभूति
40.	स्वप्नवासवदत्तम्	भास
41.	वाल्मिकि रामायण	

English

1	Bowra, C M	Romantic Imagination (Geoffrey Cambridge, Oxford University Press, London, 1950)
2	*Clemen*, W H	The Develoment of Shakes peare's *Imagery* (Methuen and Co, Ltd London, 36 Essex, Street Strand London W C. 2, 1953)
3	Lewis, C D	The Poetic Image (Jonathan Cape, Thirty Bedford Square Londan, 1968)
4	Spurgeon, C F	Shakespeare's Imagery and what it tells us (Cambridge at University Press 1966 Edition)
5	*Pound, Ezra*	*Make it New*
6	Richards, I A	Principles of Literary Criticism
7	Whalley, G	Poetic Process
8	Webster	New *World Dictionary of* American Language
9	Wells, H W	Poetic Imagery
10	Encyclopaedia *Brittanica*	*Vol* 12, 14, 18, 21
11	Jha, Kalanath	(Figurative Poetry in Sanskrit Literature (*Motilal Banarsidas, Delhi, 1975*)
12	Bhandare, L S	Imagery of Kalidasa (Popular Prakashan, Bombay-34, 1968)
13	Pillai, K C	Similies in Kalidasa (Viswabharti Studies No 7, Vidva Bhawn)
14	Kane, P V	History of Sanskrit Poetics (Motilal Banrasidas, Delhi 1961)

15. Yadav, B. R. : A Critical Study of the sources of Kalidasa (Bhavana Prakashan, Delhi: Aligarh, 1974)

16- Banerjee, S. C. : Kalidasa-Kosa (Chowkhambha Shaskrit Series office, Varanasi, 1968)

17. Chaitanya, Krishana : Sanskrit poetics (Asia Publishing House, Bombay)

18. Ghosh, Aurobindo : Kalidasa (Araya Sahitay Bhavan, 1929)

19. Jhala, G. S. : Kalidasa, A study

20. Ramaswami, K. S. : Kalidasa-His period, Personality and Poetry (Sri Vani Vilas Press, 1933)

21. De, S. K. : History of Sanskrit Poetics, Calcutta Oriental Press, Calcutta, 1925

22. Principles of Literary Criticism in Sanskrit'— Papers of a Seminar, Edited by Dr. R. C. Dwivedi (Motilal Banarasidas, 1969)

23. Raghavan, V. : Use and Abuse of Alankara in Sanskrit

24. Pandey. K. C. : Comparative Aesthetics (Chowkhambha Sankrit Series Banaras, 1950

25. Shastri, S. Kuppuswami : Highways and Byways of Sanskrit Criticism (The Kuppuswami Shastri Research Institute, Madras, 1945

26. Brown, Stephen, J. : The world of Imagery

27. Krishnamoorti, Dr. K. : Essays in Sanskrit Criticism Karnatak University, Dharwar, 1974

पत्र-पत्रिकाएं

1 J G H R I, 25
2 Triveni, Vol 37, April '68
3 ,, Vol 21 July '68
4 Organiser, Vol 21, October '67
5 Indian Studies past and present, Vol 9, 1961
6 Rtam, Vol I, July, 1969
7 विश्वम्भरा, (नागरी भण्डार, बीकानेर) अंक 3 व 4, 1970
8 सप्त सिन्धु (भाषा विभाग, हरियाणा) जून 1971
9 ,, ,, अप्रैल, 1977 व जून, 1977
10 सागरिका (सागर विश्वविद्यालय, सागरम्) षोडशवर्षे तृतीयोऽङ्क 2034 विक्रमसंवत्सरे
11 सम्मेलन पत्रिका (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) रजत जयन्ती विशेषांक